पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. की उपाधि केलिये ~~प्रस्तुत~~ स्वीकृत —

श्री

गुरु नानक-काव्य के दार्शनिक-तत्त्व

(एक विश्लेषणात्मक प्रबन्ध)

सचहु ओरे सभु को, ऊपरि सचि आचारु ॥

प्रस्तुत-कर्त्ता

मनमोहन सहगल,

एम. ए. (दर्शन-शास्त्र तथा हिन्दी)

गुरु नानक-काव्य के दार्शनिक-तत्व

तू ठाकुरु तू साहिबो तू है मेरा मीरा, तुधु भावै तेरी बंदगी तू गुणी गहीरा.
आपे हरि इक रंगु है आपे बहुरंगी, जो तिसु भावै नानका साई गल चंगी.
(गुरु-ग्रन्थ, तिलंग)

प्रबन्ध - परिचय

भारत की महान् वैदिक संस्कृति तथा समय समय पर चल निकले वाले भिन्न भिन्न भक्ति-आन्दोलनों के प्रभावानुरूप, गुरु-काल की धाराओं के जगत में ढलकर, समय की पुकार पर आधारित नवनिर्माण की एक स्वतन्त्र परम्परा मध्यकाल में "सन्त-धारा" के नाम से प्रसिद्ध हुई. विदेशी और स्वदेशी (ब्राह्मण-समाज) अत्याचारों से पीड़ित, सामान्य जन-समाज की डगमगाती नैया को पतवार मिल गई. हिन्दू और मुसलमानों में सामंजस्य स्थापित करने तथा तत्कालीन दिग्भ्रमित समाज को अनेकेश्वरवाद के "गोरख-धंधे" से निकाल कर "सत्यनाम" पर अवलम्बित होने की प्रेरणा देने हेतु सन्तधारा के प्रयत्न आरम्भ हुए. "संसार से वैराग्य लें", (वे संसार त्यागते नहीं थे, केवल मोह-माया के बन्धनों की उपेक्षा करते थे) परम-सत्य के अनुभव में अपनी सर्वांगीण शक्तियाँ अर्पण करने वाले उन्नत-चेता व्यक्ति, जो सच्चे ज्ञान की ज्योति के प्रकाश में परब्रह्म की वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करते थे, सन्त कहलाते थे. संसृति उनके लिये सत्य होते हुए भी मिथ्या थी; क्योंकि वे उस आवरण (माया) को पहचानते थे, जो जादूगर के तमाशे की भाँति झूठ में भी सच का रूप दिखा कर हमें वाहवाही को मजबूर कर देता है. जन-साधारण को सन्मार्ग पर लाने और तथ्य-ज्ञान देने के लिये सन्तजन लिखित और मौखिक रूप में उपदेश देते थे, कथा-कीर्तन भी करते थे, और प्रायः लोगों में आध्यात्मिक-प्रवृत्तियों को जगाने में कटिबद्ध रहते थे. उनके लिखित उपदेश तत्कालीन "हिन्दी" में आज भी अमूल्य साहित्य के रूप में वर्तमान हैं.

इस सन्त-परम्परा में पंजाब के भक्ति-आन्दोलन का विशिष्ट स्थान है. आन्दोलन के प्रवर्तक गुरु नानक देव थे. उन्होंने ~~१०~~ १५वीं सदी के उत्तरार्ध में मनुष्य की धार्मिक-वृत्तियों को न केवल उद्बुद्ध ही किया, प्रत्युत उन्हें विकास का अवसर प्रदान करने के लिये अपनी स्वतन्त्र विचारधारा पर एक सुव्यवस्थित और परिमार्जित परम्परा की नींव रखी. यह परम्परा, एक के पश्चात् दूसरा, दस महान सन्तों तक अग्रसर रही, और अन्ततः समय की भयंकर बाढ़ों और अदृश्य मार्गों के कारण, अपनी वाणी को यथार्थ-पूर्ति के लिये छोड़ कर, स्वयं विलीन हो गई. ब्रह्मानुभव करने वाले ये सन्त, प्रकाश के पुंज होते थे. अज्ञान का अन्धकार दूर करने की क्षमता रखने के कारण वे गुरु (अन्धकार को दूर करने वाला) कहलाते थे. प्रस्तुत परम्परा आरम्भ से ही अपनी विचार-बोध की वायु पर पनपने वाले प्राणियों को "गुरु के

"शिष्य" कहलाते थे, क्योंकि अपभ्रंश में "सिक्ख" और दसवें गुरु के समय में "खालसा" नाम से प्रसिद्ध हुए.

~~उपरि~~ ऊपरी लिखित दस गुरुओं का जीवन और उपदेश इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि सिक्ख-धर्म गृहस्थियों को सदाचार पूर्ण और सात्विक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देने की एक परम्परा थी, जिसे केवल गृहस्थियों का धर्म (रिलिजन ऑफ हाउस-होल्डर्स) कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी. योगी, बैरागी, उदासी तथा तपस्वी तो ब्रह्म की वास्तविकता का अनुभव करने और जीवन-मरण से बचकर के मुक्ति पाने हेतु से आजन्म जंगलों, पहाड़ों, तीर्थों और निर्जनों में चले जाते थे. तपस्या में अपने शरीर को कष्ट-पहुँचा कर स्वात्मत्व के मूल्य पर वे ईश्वर को खरीदना चाहते थे. लेकिन सिक्ख-गुरु गृहस्थियों के लिये सहज-भेष का सुगम-मार्ग प्रदर्शित करते थे, जिसमें वैराग्य नहीं, श्रद्धा की अपेक्षा थी. श्रद्धा और गुरु-ज्ञान-प्रतीति पर आश्रित यह धर्म "व्यावहारिक मानववाद" का प्रतीक बन गया.

गुरुओं ने अपने शिष्यगण के मार्ग-प्रदर्शन हेतु समय-समय पर आध्यात्मिक-साहित्य ~~—~~ की रचना की. यह साहित्य हिन्दी में भक्ति-कालीन निर्गुण-साहित्य का एक अंग बना. इसमें मानव के लिये मानवोपकरण का आधार, श्रद्धा और प्रेम, भक्ति, कर्म, मन-माया, नाम और हुकम, जीवात्मा-परमात्मा, सदाचार व सात्विक-जीवन, गुरु-गुण, गुरु-ज्ञान, गुरुभक्ति, शिष्य और उसके कर्तव्य, प्रभृति रहस्यों का विश्लेषण करने का उपक्रम किया गया है. सिक्ख-गुरुओं की विचारधारा, जिसपर दशमेश के समय सिक्ख-धर्म की विधिवत् नींव रखी गई थी, प्रस्तुत साहित्य में बालू में स्वर्ण-कणों की भाँति बिखरी पड़ी है. इस कृति "गुरु नानक-काव्य के दार्शनिक तत्त्व" में केवल प्रथम गुरु श्री नानक देव की रचनाओं, वाणियों और पदों के आधार पर मैंने उक्त स्वर्ण-कणों को बालू से पृथक कर, ज्ञान की कुठाली में तपा, सत्य के मानदण्ड पर उनके खरे-खोटे होने की पहचान प्रस्तुत की है. इसी लिये गुरु नानक विचार-धारा के सार-भागों "गुरु की सहायता से हउमै का नाश", "नाम-रहस्य की जानकारी", "नाम-जाप द्वारा "नामी" में विलीनता", की पुनरावृत्ति मुझे अनेक स्थानों पर स्थिति-अनुसार भिन्न भिन्न रूपों में करनी पड़ी है.

रचना में मुख्यतः उद्धरण गुरु नानक वाणी से ही, जो कि प्रमाणिक रूप में गुरु ग्रंथ साहिब (प्र० शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर; अगस्त १९५१ संस्करण)
हिन्दी लिपि

में संगृहीत है, लिये गये हैं. अतः पाद-टिप्पणियों में उनके साथ "महला १ (श्लोक) या "गुरु ग्रंथ साहिब" लिखना अनिवार्य नहीं समझा गया. परन्तु राग-रागिनियों का नाम, शब्दों की क्रम-संख्या, पद का नम्बर और ग्रंथ-साहिब के उपर्युक्त संस्करण की पृष्ठ-संख्या मात्र दी गई है. जहाँ तुलना या प्रमाण रूप में गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, या गुरु तेगबहादुर का कोई पद उद्धृत किया गया है, वहाँ उनके लिये क्रमशः महला २, ३, ४, ५, तथा ९ का सांकेतिक संकेत भी दिया गया है. क्योंकि इनकी वाणियाँ भी उसी ग्रंथ में सम्मिलित हैं, अतः पुस्तक का नाम यहाँ भी नहीं लिखा गया. केवल गुरु गोविन्द सिंह सम्बन्धी ग्रंथों तथा अन्य वे ग्रंथ जिनकी सहायता की अपेक्षा यथास्थान लेखक को रही है, ग्रंथकार एवं पृष्ठ-संख्या सहित उद्धृत किये गये हैं. अभिप्राय यह कि पाद-टिप्पणी में ग्रंथ का नाम न होना "गुरु ग्रंथ साहिब" तथा "महला संख्या" का न होना "गुरु नानक-वाणी" का संकेत है. पदों के साथ जो आँकड़े लिखे गये हैं, वे पद और शब्द-संख्या के द्योतक हैं. यदि वे आँकड़े दो हैं, तो उनमें पहला पद-संख्या तथा दूसरा शब्द-संख्या है, और तीन होने की स्थिति में पहले दो पद-संख्याओं का ही संकेत करते हैं.

प्रबन्ध में कुछ शब्दों का माधुर्य-रस बनाये रखने के लिये उनके लिखने गुरु-काव्य के अनुसार ही प्रस्तुत किये गये हैं—यथा

प्रयुक्त-शब्द	शुद्ध-शब्द	प्रयुक्त-शब्द	शुद्ध-शब्द
सतपुरुष	सत्पुरुष	गुरमुख	गुरुमुख
सतगुरु या सतिगुरु	सद्गुरु	हउमै	अहम् (भाव)
तमोगुण	तमगुण या तमस्	रजोगुण	रजगुण या रजस्
सतोगुण	सत्गुण	सिमरण	स्मरण
करतार	कर्तार	सतिसंग या सतसंग	सत्संग

देवनागरी लिपि अनुसार जिन शब्दों पर चन्द्र-बिन्दु देने की आवश्यकता थी, टाइप-राइटर में चन्द्र-बिन्दु न दिये जा सकने की असुविधा को सम्मुख रखते हुये, केवल (अनुनासिक) बिन्दु दिया गया है. की-बोर्ड की अक्षर-सुविधा के अनुसार शब्द बनाये गये हैं; विराम-चिन्हों का आधार भी यही है.

प्रबन्ध की तैयारी में जिन विद्वानों, सन्तों, महात्माओं और मुस्लिम-फकीरों की कृतियों तथा वाणियों से मुझे सहायता मिली, मैं उनका अतीव आभारी हूँ, और नतमस्तक उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करता हूँ. पंजाब में प्रस्तुत-विषय के निष्पक्ष-पंडित

स्वनाम धन्य भाई साहब [illegible] जी, जिनके यौद्धिक निरीक्षण में यह प्रबन्ध पूर्ण हुआ, मेरी श्रद्धा के विशेष पात्र हैं. अपने अतीव-व्यस्त जीवन में भी अनेक बार अनेक महत्वपूर्ण कार्यों की उपेक्षा कर वे मुझे अमूल्य समय देते रहे. उनके सुझावों तथा पथ-प्रदर्शन के प्रति मैं आजीवन ऋणी रहूंगा. प्राध्यापक बी.बी.व्यास, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, शामलदास कॉलेज, भावनगर, को, जो भारतीय- दर्शन सम्बन्धी चर्चा करने के लिये प्रायः मुझे समय देते रहे, मैं धन्यवाद देता हूं. उन सबका भी मैं आभार स्वीकार करता हूं, जो पिछले चार वर्षों से परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रस्तुत शोध में मेरी सहायता करते रहे.

(मनमोहन सहगल)

प्राध्यापक,
शामलदास (सरकारी) कॉलेज,
गुजरात राज्य,
भावनगर.

ता० सितम्बर, १९६०.

विषय - अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१- प्रवेश	-	१ से ५४.
	दर्शन	१.
	दार्शनिक तत्व : भक्तिवाद	२.
	भारत में भक्ति-परम्परा	४.
	उपनिषदों में भक्ति	५.
	षड्दर्शनों में भक्ति	७.
	सूत्रों में भक्ति	७.
	तन्त्रों में भक्ति	८.
	पुराणों में भक्ति	१०.
	श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति	११.
	रामायण-युग तथा महाभारत-युग में भक्ति	१२.
	दार्शनिक-विवेचन का कारण	१३.
	शंकराचार्य का अद्वैतवाद	१५.
	रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद	१७.
	वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद	१९.
	बौद्ध-तांत्रिक	२०.
	नाथ-पंथ	२१.
	महाराष्ट्र में भक्ति	२२.
	सूफी भक्ति	२४.
	कबीर और निर्गुण-सम्प्रदाय की भक्ति	२७.
	पंजाब में भक्ति-आन्दोलन का उदय	२८.
	पंजाब की संत-सम्प्रदाय	२९.
	सिक्ख-गुरुओं की संक्षिप्त जीवनियाँ व विशेषताएँ	३४.
	उनकी दार्शनिक-पृष्ठभूमि में भक्ति.	५२.
२- गुरु और गुरमुख	-	५५ से ८४.
	गुरु	५५.
	गुरु कौन?	५७.
	गुरु का महत्व : प्रभु-मिलन	५८.
	मोक्ष-दाता	६०.
	गुरु सत्य-ज्योति प्रकाता है	६३.
	भवसागर से पार करता है	६५.
	नाम का दाता	६६.

....चालू.

अनुभाग	विषय	पृष्ठ
२ (दो)	गुरु हरि-नाम का रसपान करवाता है .	६७.
	गुरु दुःख और आनन्द का कारण है .	६७.
	गुरु मनुष्य में कठिनाइयों को पैदा करता है	६९.
	सतगुरु की पहचान	७०.
	गुरु-भक्ति . .	७१.
	अवगुण का त्याग . .	७३.
	भक्ति का अधिकारी कौन ? .	७३.
	गुरु-भक्ति या सेवा से क्या प्राप्त होता है?	७५.
	आत्म-विश्वास और गुरु .	७७.
	गुरुमुख कौन? . .	७८.
	गुरुमुख की पहचान . .	७९.
३-अकाल-पुरुष (ब्रह्म)	—	८२ से १२०.
	परिचय .	८३.
	१-पुरुष-विवेक . .	८७.
	२-काल और अकाल . .	८९.
	३-अकाल-पुरुष का स्वरूप . .	९१.
	क-नाद-बिन्दु . .	९२.
	ख-अद्वैत : निर्गुण ब्रह्म .	९३.
	ग-सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान .	९५.
	घ-सर्वज्ञता : सर्वदृष्टता .	९८.
	ङ- अवैरता .	९९.
	च- स्वयंभू और अनादि .	१००.
	छ- महानता . .	१०१.
	ज- सत्य-स्वरूप . .	१०२.
	झ- सत्य शिवम् . .	१०४.
	ञ- सत्य सुन्दरम् . .	१०५.
	ट- अलौकिक . .	१०७.
	ठ- उसका वास्तविक स्वरूप-ज्ञान .	१०८.
	४-अकाल-पुरुष का ज्ञान .	११०.
	५-सिक्ख में ब्रह्म का निरूपण : गुरु .	११५.
	क- जीव और ब्रह्म में सम्बन्ध .	११६.
	ख- गुरु और ब्रह्म में भेद .	११८.
	६-ब्रह्म का जीव से सम्बन्ध : विचार .	११८.
	क- रचयिता-रचना सम्बन्ध (जीव ब्रह्म का अंश है)	११९.
	ख- शरीर का भेद . .	१२०.

....(शेष)

अध्याय	विषय	पृष्ठ
३(शेष)	ग–दोनों में तत्त्व-भेद कोई नहीं .	१४०.
	घ–पति-पत्नी सम्बन्ध (उदाहरण) .	१४१.
	ङ–जीव और ब्रह्म की पृथकता : कारण	१४२.
	४– विवेक . .	१४३.
	क– विकारों को जीत .	१४४.
	ख– गुरु की सहायता : ज्ञान-प्राप्ति एवं ब्रह्म की जानकारी	१४५.
	ग– नाम-स्मरण . .	१४६.
	घ– सेवा, भक्ति और पूजा .	१४८.
	ङ–सफलता : ईश्वर-कृपा से .	१४८.
	च–जीवन-कालमें ही और ... ज्ञान १४९.	
	छ– जीवन-मुक्त ऐसे जीवित रहना	१४९.
	ज– ...	१४९.
४–जीवात्मा	–	१४६ से १६१.
	जीव क्या है . .	१४६.
	जीव का मोक्ष-साध्य — आत्म-साक्षात्कार : ...	१४५.
	साध्य-सिद्धि के साधन .	१४६.
	क–इन्द्रियों का संयम .	१४७.
	ख– नाम-स्मरण .	१४८.
	ग– गुरु-उपदेश .	१४९.
	घ– ईश्वर-कृपा . .	१६१.
५– माया	–	१६४ से १९५.
	१–माया अथवा भ्रम	१६४.
	२– माया का स्वरूप . .	१६५.
	क–ब्रह्म की त्रिगुणात्मक	१६८.
	ख–माया अज्ञानावरण के रूप में .	१७१.
	ग– त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणातीत .	१७५.
	घ– रूपकों द्वारा माया का स्वरूप-चित्रण.	१७७.
	३– मन और माया . .	१७८.
	४– माया की वास्तविकता की पहचान और गुरु का उपयोग. .	१९१.
	५– माया से मुक्ति .	१९२.
	क– गुरु-कृपा . .	१९४.

....(क्रमशः)

अध्याय	विषय			पृष्ठ
५ (क्रमशः)	७- गुरु-महिमा	.	.	१६४.
	८- नाम-जाप	.	.	१६५.
६-गुरु नानक का दार्शनिक-आधार		–		१६६ से १९७.
	१- धर्म और दर्शन	.	.	१६६.
	२. धर्म-दर्शन : समस्या का उदय		.	१७०.
	३- धर्म-दर्शन का आधार-भेद		.	१७१.
	४- गुरु नानक का दार्शनिक-आधार और उसकी विशेषता		.	१७४.
	५- अध्यात्म-विद्या के मुख्य आधार, विश्वास और प्रेम		.	१७५.
	६. अध्यात्म-विद्या के अन्य आधार और उनकी व्याख्या		.	१८३.
	७. वैदिक-दर्शन और गुरु नानक		.	१८६.
	८. मानवतावाद-विद्या और ईश्वर-अद्वैतवाद.		.	१९३.
७-गुरु नानक द्वारा अध्यात्म-विद्या के अन्य दार्शनिक-आधार		–		१९८ से २६४.
	गुरु नानक द्वारा योग	.		१९८.
	हठयोग : प्राणायाम और स्वरूप	.		२०८.
	नाम का महत्व	.		२११.
	ज्ञानयोग	.		२१६.
	ज्ञान : आत्मा का स्वरूप	.		२१७.
	ज्ञानी की महत्वपूर्णताएँ	.		२२२.
	भक्ति-योग	.	.	२२३.
	भक्ति के अंग	.	.	२२३.
	भक्ति के विभिन्न रूप और साधन		.	२३०.
	भक्त की अवस्थाएँ	.	.	२३४.
	भक्त के लक्षण	.	.	२४०.
	कर्मयोग	.	.	२४३.
	कर्मयोग और सदाचार	.	.	२४४.
	दान, सेवा और कर्म	.	.	२५०.
	गुरु नानक का विचार	.	.	२५२.
	नर-नारी : सहयोगी जीवन		.	२५७.
	गुरु नानक के ज्योति-ज्योति		.	२५८.

....(शेष)

~~विषय~~

अध्याय	विषय	पृष्ठ
८– उपसंहार	–	२५० से २६२.
	गुरु नानक : एक समन्वयवादी विचारक	२५४.
	प्रस्तुत विचारधारा— धर्म अथवा दर्शन की अपेक्षा जीवन-कला का- पुष्टि	२५७.
	गुरु नानक और मानववाद .	२६०.
	उपसंहार . .	२६१.
परिशिष्ट-१. गुरु नानक की जीवन-यात्रा	–	१(क) से १९(घ)
	जन्म और माता-पिता .	१(क)
	बचपन और शिक्षा .	२(ख)
	सुल्तानपुर व दौलतखाँ .	९(ग)
	उदासी—प्रथम . .	९(ग)
	दूसरी . .	११(ग)
	तीसरी . .	१४(ग)
	चौथी . .	१५(घ)
	पाँचवीं . .	१६(घ)
	आश्रम-जीवन . .	१७(घ)
	उत्तराधिकारी की नियुक्ति एवं ज्योति-जोत समाना .	१८(घ)
	रचनायें और उपदेश .	१९(घ)
परिशिष्ट-२ चित्र	गुरु नानक की यात्रायें	
ग्रंथावली	सहायक-ग्रंथ सूची (हिन्दी)	
	सहायक-ग्रंथ सूची (पंजाबी)	
	सहायक-ग्रंथ सूची (अंग्रेजी)	

१

प्रवेश

तूं आपे दाता, आपे भुगता, हउ तुध बिनु अवर न जाणा.
तूं पारब्रह्म बेअंतुजी, तेरे किआ गुण आखि वखाणा.
([illegible], आसा)

प्रथम अध्याय

प्रवेश

दर्शन

किसी विशेष अध्ययन को परिभाषा की सीमा में बाँधना प्रायः असम्भव-सा होता है. न जाने उसका संश्लेषण या विश्लेषण करते समय उक्त परिभाषा की सीमा-रेखाओं का उल्लंघन कहाँ कहाँ और कितनी बार करना पड़े; और फिर मानव की अनन्त और सतत विचार-शक्ति से उसकी विश्व की चमत्कार-पूर्ण दैनिक नवलता किस रूप में प्रसारित होगी, यह भी कल्पनातीत बात है. दर्शन सरीखे गम्भीर विषय का स्वरूप-ज्ञान कुछ ऐसी ही समस्याओं का अखाड़ा है. सम्पूर्ण मानवता अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण तथा विचारधारा के कारण उत्थान-पतन कोटी [illegible] स्थितियों में लिपटी जीवन की वास्तविकता खोज रही है. प्रयत्न भिन्न हैं, शक्तियाँ जुदा हैं और वातावरण प्रान्तरित है. ऐसे में "अन्धे और हाथी" की कहावत चरितार्थ हो रही है. जो भी जिसके हाथ लगा, वही उसकी यथार्थता बन गया. सम्भव है कोई दूर, ऐसे अलौकिक वास्तविकताओं को दर्शन की परिभाषा में बाँधने के स्वप्न देखते रहें, लेकिन पूर्ण को अपूर्ण की परिधि में बाँधना दुष्कर ही नहीं, असम्भव प्रमाणित हुआ. अलौकिक जीवन तथा विश्व-विरचना की अधूरी व्याख्या का परिज्ञान अपनी अक्षमता पर बार बार झुँझलाता रहा और अन्ततः मानव-मस्तिष्क निजी असमर्थता को छिपाने वाली परिभाषा-अवधि में सर्व-पूर्ण-सम्पन्नता का लेश विवरण न दे सका. परिभाषा ऐसी बनी, जिसमें जीवन और लोक की सम्पूर्णता का ध्यान था, तथा प्रत्येक [illegible] प्रयत्न उसमें कहीं न कहीं अवस्थित किया जा सकता था. दर्शन को सम्पूर्ण जीवन तथा विश्व-प्रकृति की व्याख्या और मूल्यांकन का अनुष्ठान कहा जाने लगा. अब ही वास्तविकता का यथातथ्य स्वरूप (Ontology) परलौकिक विचारधारा (Metaphysics) सभी और प्रत्येक का दर्शन के अन्तर्गत [illegible]. जीव की विविधता हो या सन्देह का दृष्टिकोण, व्यवहारिक-व्याख्या हो या ज्ञान-अर्जन की कामना, आत्मा-परमात्मा-रहस्यों से परिचय हो या मृत्यु को समझने और जीतने की तृष्णा, सबने "दर्शन" में स्थान खोज निकाला. ऐसी स्थिति भी आई कि लोग दर्शन शब्द [illegible] (देखना अर्थात् अवलोकन या मनन करना—सत्य का) को भुलाकर, मात्र [illegible] समस्याओं को जन्म देना ही अपनी [illegible] समझने लगे और प्रत्येक [illegible] या [illegible] दर्शन बन बैठी. [illegible] दर्शन का यह [illegible] (दर्शन) अपनी [illegible] को [illegible], परन्तु [illegible]. जीवन की सर्वांगीणता तथा प्रकृति की [illegible] से सम्बन्धित प्रत्येक नव-[illegible] दर्शन के [illegible] में [illegible] से [illegible] करती रही. दर्शन, अर्थात् (जीव की, प्राणी की, और उसकी [illegible] और रहस्य-[illegible]) के [illegible], [illegible] और [illegible] करता रहा है और रहेगा, [illegible]

इसकी सार्थकता है. अनेक महानुभावों ने दर्शन को वरदान दिये. विवेक-सम्पन्न-विचारकों, धार्मिक-नेताओं, महान-वैज्ञानिकों, योगियों, धर्म-संस्थापकों, साहित्यकों, महात्माओं प्रभृति ने प्रकृति और जीवन ~~--~~ की, जड़ और चेतन अवस्थाओं के अनेक समाधान प्रस्तुत किये. इन समाधानों की पृष्ठभूमि संस्कृति वातावरण, विचार-शैली भेद, बौद्धिक उपादानों की भिन्नता के कारण स्वरूप-भेद लिये हुये मिलते हैं तो भी जहाँ तक दर्शन के तत्त्वों का प्रश्न है, वे समस्या की एकरूपता में प्रायः सब जगह एक-से ही रहे हैं. हाँ, भारतीय और पाश्चात्य ~~का~~ वातावरण और दृष्टिकोण के अन्तर से उनके समाधान निःसन्देह भिन्न हो गये हैं. वस्तुतः,

<u>दार्शनिक-तत्त्व : आत्मवाद</u>

मनुष्य में स्वत्व और अपनत्व, केवल दो ही मुख्य भाव रहते हैं. इन्हीं से प्रेरित होकर उसके सम्मुख प्रायः सब दो दार्शनिक-समस्यायें आती हैं. "अपनत्व" के आश्रय पर "विश्व क्या है?", "विश्व का आधार-तत्त्व क्या है?", आदि जानना चाहता है. उसकी व्यापकता की पराभौतिक-व्याख्या करना चाहता है और अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ यहीं नियुक्त कर आयु-भर किसी रहस्यात्मक-तत्त्व की खोज करता रह जाता है. दूसरी ओर "स्वत्व" का सहारा ले वह अपने लिये भी सोचता रहता है, "यह स्वयं क्या है?", "उसके अन्तर में मन क्यों है?", "मन और शरीर का क्या सम्बन्ध है?", "आत्मा कौन है?", "उसका स्वरूप क्या है?" आदि प्रश्न दूसरी समस्या को जगाते हैं. जो रीति से इन्हें मानव-स्वरूप सम्बन्धी मानवीय-समस्यायें कहा है. ऐसी समस्यायें उसकी विचारक विचार-धारा को आधार बनाती हैं. इन्हीं से प्रेरित हो पश्चिम में आत्मा, मन, पदार्थ और ईश्वर के अस्तित्व-अनस्तित्व का संघर्ष चलता रहा है, और पूर्व की जीव, ब्रह्म और सृष्टि पर मिलने वाली धारणाओं का प्रतिस्थापन भी यहीं स्वत्व और अपनत्व की स्वरूप ही है.

पूर्व में, विशेषकर भारतीय-विचारधारा धर्मविकासोन्मुख रही है. आर्य-जाति को कुछ परिस्थितियों, वाह्य-आक्रमणों और भयंकर आन्तरिक अव्यवस्था का सामना करना पड़ा है. ऐसी परिस्थितियों में जनता को सामाजिक सेवा की विशुद्धता-स्थिति प्रदान करने के लिये तत्कालीन लोक-नायकों ने काल और स्थिति को परखते हुये, जो नियम-सिद्धान्त स्थापित किये, जिन्हें आज की शब्दीय परिभाषा में धर्म कहा जाता है. वास्तव में यह धर्म उखड़े हुये हृदयों और उजड़ी भावनाओं को पुनः-संस्थापित करने के लिये तथा समाज की अव्यवस्था का प्रभाव रूप से सामना करने हेतु कल्पना किया गया था. परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ साथ धार्मिक-सिद्धान्तों में भी परिवर्तन आते रहे और सामाजिक-व्यवस्था के आश्रय से आर्य-धर्म, जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म, पुनः आर्य-धर्म (हिन्दू-धर्म), मुस्लिम-धर्म, सिक्ख-धर्म, ईसाई-धर्म, पारसी-धर्म आदि उदित, प्रचारित और प्रसारित हुये. इन धर्मों से जनता की भावनात्मकता को सम्बल मिलता था. किसी विशेष धर्म को स्वीकार करने या उसके नियमों के अनुसार जीवन-यापन करने में भी

[illegible]—काल, धार्मिक और राजनीतिक [illegible] जीवन को प्रमुख [illegible] था. नाथ साहित्य के योगी द्वारा बौद्ध-धर्म का [illegible] स्तर पर [illegible], हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम-धर्म अपनाया जाना धार्मिक एवं राजनैतिक [illegible] के प्रतीक हैं. [illegible] ही धर्म किसी को धीरज बंधाने, प्रोत्साहन या प्रेरणा देने और उबारने [illegible] कुछ [illegible] न रहते थे. जनता अपनी मानसिक-शान्ति बनाये रखने तथा अपने अनुभवजन्य को [illegible] उद्गार करने [illegible] नहीं पा रही थी. [illegible] से वे निम्न-[illegible] (जातियाँ) जनता का [illegible] थे [illegible] पर [illegible] पहुँचाने वालों से जनता [illegible] करती थी. यही मुस्लिमों [illegible] मुख्य कारण था. रक्षण की इन परिस्थितियों में [illegible] जागरण की आवश्यकता हुई, जो नेताओं ने भक्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया; परन्तु ऐसे निराश [illegible] से टूटे [illegible] के बाद लोगों को [illegible] और तपस्या—योग और वैराग्य के सिद्धान्त स्थापित किये गये; बौद्ध-धर्मावलम्बियों के विरुद्ध धर्म-भेद में [illegible] की अपेक्षा हुई [illegible] और [illegible] का [illegible] हुआ तथा राजनीतिक दुर्व्यवस्था में मुसलमानों द्वारा अपने धर्म पर प्रहार [illegible] देख [illegible] पहले [illegible] द्वैतवादी नाथपंथ तथा [illegible] ने "[illegible]" सिद्धान्त को जन्म दिया था. मुसलमानों द्वारा [illegible] के [illegible] से अपनी भी [illegible] न देखने से [illegible] हिन्दुओं ने "[illegible]" की [illegible] की कल्पना में खोज कर [illegible] सिद्धान्तों को उबारा. [illegible] निराशा में [illegible] भी [illegible] प्रतीत [illegible] सिद्धान्तों पर धीरे धीरे [illegible] का रंग चढ़ता गया और [illegible] विचारकों ने [illegible] में [illegible] की पुट देकर निर्गुण-[illegible] भावनायें प्रस्तुत कीं. ऐसी [illegible] भावना-भक्ति कहलाईं.

[illegible] की [illegible] में [illegible] निराशाजनक था. [illegible] का [illegible] जनता ([illegible]) दो मुख्य भागों में बटा हुआ था— [illegible] जातियाँ और निम्न जातियाँ. मुसलमानों से [illegible] उच्च-जातियाँ धर्म-भेद में मुसलमानों से [illegible] हुई और [illegible] धर्म-[illegible] नहीं थीं. निम्न-जातियाँ को [illegible] समझी जाती थीं, अपने [illegible] समाज ([illegible]) को निज का [illegible] करता देख रही थीं. [illegible] था. [illegible] भारत की [illegible]-जातियों में [illegible] के [illegible] हुई थी. [illegible] उत्तर-भारत में [illegible] था, [illegible] की कहीं आशा न थी, असहाय-निरुपाय जनता "[illegible] पुकार पर [illegible] वाले भगवान को देखते देखते [illegible] हो चुकी थी. [illegible] थी [illegible], जो हिन्दुओं और मुसलमानों के [illegible] का [illegible] सामना करता हुआ, दोनों [illegible] [illegible] में [illegible] प्रस्तुत कर, उनको [illegible] कर सकता है. उत्तर-प्रदेश में [illegible] [illegible] में ऐसी [illegible] का उदय हुआ. पंजाबी जनता की दशा और भी शोचनीय थी. [illegible]

होने के कारण, इस प्रकार से उसका पतन हो रहा था. यहाँ भी कबीर जैसे लोक-पुरुष की अपेक्षा थी. गुरु नानक के अवतरित होने से यह पूरी हुई. धार्मिक नई लेकर जन-धर्म का आह्वान गुरु नानक ने भक्ति आवरण में अद्वैत-स्थापना के माध्यम से किया. जनता की विवशता को किसी रहस्यमयी शक्ति के उक्ति में, धीरज बँधाने वाली ही अतः गुरु नानक ने "हुक्म" की सिद्धान्त को जन्म दिया।[1] "एक ओंकार सतिनाम करता पुरख, निरभउ, निरवैर, अकाल-मूरति, अजूनी, सैभं, गुरु प्रसादि" के महामंत्र में जनता को श्रद्धा प्राप्त कर उसे सुखमानिक मानसिक-शान्ति का वरदान दिया. प्रस्तुत विचार-धारा के परिप्रेक्ष्य में भी उपर्युक्त जीव, ब्रह्म और सृष्टि-निर्माण सरीखे आधारों को पृष्ठभूमि बनाया गया. आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों में पति-पत्नी के शृंगारिक स्वरूप को पुष्ट देकर गुरु नानक ने अपनी धारणा के आधारों को और भी आकर्षक बना दिया तथा सिद्धान्तों में गार्हस्थ्य-अनुकूलता का विशेष ध्यान रखा. सृष्टि-निर्माण में माया की कल्पना की और इस अज्ञान-तिमिरान्ध को विदीर्ण करने की शक्ति गुरु में अवस्थित रखी गई. अतः माया का आवरण हटा कर ईश्वर को निरंजन में अभिन्न करने का भार मात्र गुरु ने स्वीकार कर लिया गया. मोक्ष-प्राप्ति का साधन गुरु होने से, उसकी प्रसन्नता और कृपा पाने के हेतु श्रद्धापूर्ण गुरु-भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान स्वाभाविक ही था. अतः, जीव, माया, गुरु, अकाल-पुरुष आदि गुरु नानक की "हुक्म" सिद्धान्त के आधार बने, और इसी भी ऊपर नाम-जाप तथा गुरु-भक्ति "सचखण्ड" की स्थिति तक पहुँचने के सोपान कहलाये.

किस किस रूप से होती हुई भक्ति गुरु नानक तक पहुँची थी, यहाँ यह जान लेना भी अप्रासंगिक न होगा.

भा र त में भ क्ति प र म्प रा

भारतीय संस्कृति धर्माधारित मानी जाती है. इसी भक्ति का आन्दोलन किसी एक विशेष समय या अवधि में आरम्भ हुआ स्वीकार करना वस्तुतः वास्तविकता की उपेक्षा करना होगा. "धर्म ही मानव समाज के परिवर्तन का कारण होता है", अतः हो सकता है कि भक्ति के स्वरूप, भावना तथा उद्देश्य में काफी अन्तर आया हो और यही भी गाड़ी खिसकती रही, लड़खड़ाती, परन्तु कभी बढ़ती, कहीं रुकती, कहीं धारा रूप प्रवाहित करती पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के स्वर्ण काल तक पहुँची थी. मार्ग में श्रद्धा, भक्ति ज्ञान और कर्म, योग, तंत्र तथा पाखण्ड प्रभृति अनेक तरंगों का सामना करना पड़ा हो तो क्या अचम्भा. यद्यपि यह एक तथ्य है कि भक्ति के बीज वैदिक-ऋचाओं और उपनिषदों में भी वर्तमान थे. "वैदिक-सूक्तों देवताओं की उपासना में भक्ति और श्रद्धा की भावनाओं के

---

१. किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि,
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि. जपुजी.

संकुल है....आरण्यक का उपासना-काण्ड तथा उपनिषद्, विश्वास और उपासना के पथ भक्ति-मार्ग की नींव कहे जा सकते हैं।[1]

किन्तु विचारधारा के अनुक्रम में धर्म का जो संकुल, विचारों की जो परम्परा का विश्वास और श्रद्धा का भी अवश्य स्रोत बहता मिलता है, उसका श्रीगणेश वैदिक-काल में ही हो गया था. वेदों में निःसन्देह अनेकेश्वरवाद का दिग्दर्शन होता है, प्रकृति के प्रत्येक तत्व को देवी-देवता के रूप में स्वीकारा गया है, उनके धर्मोपासन हेतु स्तुति-पाठ तथा प्रार्थना वैयक्तिक-विधान रचा जाता रहा है, तथापि प्रकृति के इन रूपों और विविध व्यापारों — की पृष्ठभूमि में किसी अनुपम और रहस्यमयी शक्ति की सत्ता भी स्वीकार की गई है. इस स्वीकृति को चरम-विकास तक पहुंचाने का श्रेय निःसंदेह उपनिषदों को दिया जायेगा. आरण्यक के उपासना-काण्ड का उसे आधार दिया जा चुका है. ब्राह्मण ग्रंथ भी उसी रहस्यमयी शक्ति का गुणगान करते प्रतीत होते हैं. जैसा विश्वास "ब्राह्मणों" को मिली विभूति है, कि उस शक्तिशाली पंक्ति पर अखण्ड विश्वास रखने, उचित रीति और नीति से यज्ञादि रचने तथा नैतिक आचरणों में भी यथासामर्थ्य शुद्ध हृदय से पुकारे जाने पर, वह मानवीय-मनोकामनाओं की पूर्ति करती है. दैव रहस्य बनी रहने पर भी वह शक्ति प्रत्यक्ष [illegible] होती है, यही वह विश्वास है, जिसकी पूर्णता में हमने इस उपनिषद् प्रतिपादित किये हैं.

<u>उपनिषदों में भक्ति</u>

भक्ति अथवा ईश्वर में एक-निष्ठ निष्ठा का विशुद्ध-स्वरूप उपनिषदों में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।[2] "भक्ति" का शब्द उत्तर-कालीन उपनिषदों में ही प्रयुक्त हुआ है।[3] मुण्डकोपनिषद् में [illegible] अवतरण स्पष्ट रूप में मिलता [illegible] है— "परमात्मन् का ज्ञान वेदाध्ययन, बुद्धि का मन्थन-चिन्तन और श्रवण से प्राप्त नहीं हो सकता, केवल वही आत्मप्रतीति महापुरुष जिसपर उसकी कृपा होती है, और जिसका [illegible] जिसके [illegible] ग्रहण करने की भावना करता है, वही परमात्मन् को [illegible] करता है, दूसरा कोई नहीं।[4]

1. The Vedic Hymn are replete with sentiments of piety and reverence in the worship of the Gods.... The Upasnakanda of Aranyakas and Upanishads lay the foundations of the Bhakti-marga, way of devotion and faith.
x. 'The Cultural Heritage of India Vol.ii p.4..
2. The Doctrine of Bhakti or Single-minded devotion to God is clearly evident in later Upanishads. The Cult of Bhakti by Jadunath Sinha.
3. The 'word Bhakti' occurs for the first time, in the Upanishads. Ibid.
4. Mundaka iii, 2,3.

उसके आत्मस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर उपासना रूप बल से रहित मनुष्य द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकते. समस्त भोगों की आशा छोड़कर निष्काम परमात्मा की ही उत्कट अभिलाषा रखते हुये निरन्तर विशुद्ध भाव से अपने इष्टदेव का चिन्तन करना—यही उपासना रूपी बल का संचय करना है. ऐसे बल से रहित पुरुष को वे नहीं मिलते.——जो बुद्धिमान प्रमाद-रहित होकर उत्कट अभिलाषा से निरन्तर परमात्मा की उपासना करता है, उसकी आत्मा परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में प्रविष्ट हो जाती है. (मुण्डक तृतीय २:४.)[1] इसी प्रकार "जो उस परम शोभित ब्रह्म को पहचानता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है. उसका सम्पूर्ण कुल ब्रह्मज्ञ होता, वह शोक-पापविमुक्त होता, वासना पर अधिकार पाता और अमर-पद को प्राप्त करता है.[2] तैत्तिरीय और बृहदारण्यक में ब्रह्म को परम-आनन्द का स्वरूप तथा मानवीय-जीवन का आधार माना गया है. श्री महेन्द्रनाथ सरकार उपनिषदों को विचारों का ऐसा विकसित रूप स्वीकार करते हैं, जो अपने ही तक सीमित हो.[3] निस्सन्देह इन विचार-धाराओं के बीज वेदों में भी मिल चुके थे, परन्तु अनुभूति के सम्बन्ध में दोनों दृष्टिकोणों (वेदों और उपनिषदों) में अन्तर है. एक का दृष्टिकोण अन्तर्मुखी है, दूसरे का बहिर्मुखी. एक आत्मा की गहराइयों में पैठकर अनुसन्धान करता है, दूसरा प्रकृति से प्रभावित हुआ है हमारे. "स्पष्ट है कि वेदों में पाये जाने वाले भाव के आरोपित का विकास उपनिषदों में प्रकट रूप से हुआ. आगे चलकर षड्दर्शनों ने भी ईश्वरवाद का प्रचार प्रसार [illegible] किया, परन्तु वे मुख्यतः ज्ञानपूर्ण ही रहे, भावना की भीतिकता नहीं बने. सृष्टि के रूप निर्माण की सांख्य-पूर्णात्मा उनका प्रतिनिधित्व रहा. इनमें भी सांख्य-दर्शन, जो अचेतन प्रकृति तथा चेतन निष्क्रिय पुरुष की त्रिगुणात्मक क्रीड़ा से विश्वात्मता का सार्वभौम सम्बन्ध जोड़ता है, अनीश्वरवाद होते हुए भी, उपनिषदों के साथ साथ, सम्प्रदाय तैयार करता रहा है. "कहा गया है कि उपनिषदों में वैदिक और पौराणिक विचारों का सम्बन्ध हुआ और सांख्य के पुराने विचार वेदान्त के "अद्वैत" व उपनिषदों के "ब्रह्मवाद" के सहायक हुए. ——उपनिषदें सांख्य के पुरुष व त्रिगुणात्मक प्रकृति के विचारों के पूर्वरूप को सुरक्षित रखती हैं और वे यह भी बतलाती हैं कि किस प्रकार सांख्यमत की नींव पर अनीश्वरवाद का निर्माण शनैः शनैः दार्शनिकों द्वारा किया जा रहा था."[4]

---

१. मुण्डक तृतीय २:४.

२. Mysticism in Bhagavadgita p.37.

३. डॉ० कृष्णमोहन गुप्त द्वारा "हिन्दी नाटक की रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ" में उद्धृत—महेन्द्र नाथ सरकार की पुस्तक "हिन्दू मिस्टिसिज्म" से. पृ० ४.

४. भारतीय ईश्वरवाद—आचार्य रामावतार शर्मा.

षड्दर्शनों में भक्ति

षड्दर्शनों में योग-दर्शन भक्ति के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है. उसका परम-लक्ष्य है, जीव को निजी स्वरूप की पहचान. वह रहस्यवादियों की भाँति इस स्वरूप को भावात्मक न बना कर बौद्धिक-वैज्ञानिक रूप में स्वीकार करता है.¹ यह भी सच है कि योग-दर्शन के दृष्टिकोण का लक्ष्य विकसित रूप है. (अनुभूति के क्षेत्र में प्रायः चार स्थितियाँ स्वीकार की जाती हैं— भौतिक-अनुभूति, मानसिक-अनुभूति, बौद्धिक-अनुभूति तथा आत्मानुभूति. भक्ति के क्षेत्र में सामान्य प्रथम दोनों प्रकार की अनुभूतियों को निम्न स्थिति से ऊपर उठ कर दोनों उत्तरानुभूतियों को प्राप्त करने में सहायता करता है. [illegible] साधन है मन, जो कि मनुष्य की दसों इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ) का स्वामी है, केवल [illegible] है. मन के पश्चात् बुद्धि, अहंकार और सर्वोपरि आत्मा के नाम लिये जाते हैं. आत्मा सबसे ऊपर होने के कारण [illegible] इन्द्रिय-बन्धनों से मुक्त भी हो सकती है. यही आत्मसाक्षात्कार है. (वास्तव में आत्मा स्वयं प्रकाशित होने के कारण उसे निःकलंक ज्योतिर्मय अनुभूति है, परन्तु मन के आवरण में अपनी वास्तविकता को खो बैठती है. मन की वृत्तियाँ ही उसका आवरण है, अतः इन्हीं वृत्तियों के निरोध का नाम "योग" है.² प्रस्तुत स्वरूप-सिद्धि हेतु योगी भक्ति का आश्रय लेता है. पतंजलि ने [illegible] को अपनाने योग्य कई भेद बताये गये हैं, जिनमें ईश्वरप्रणिधान भी एक है. ध्यान रहे वह ईश्वरप्रणिधान को अपने में साध्य नहीं मानता, केवल स्वरूप-प्राप्ति अर्थात् मनःशुद्धि का साधन मानता है.³)

पूर्व-युग में भक्ति

पूर्वयुग में लगभग सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व में मनु-संहिता की रचना हुई. मनु के मत में सृष्टि का निर्माण तामसिक-प्रकृति में परमात्मन् द्वारा उत्क्रान्ति लाने से हुआ. (परमात्मन्-गर्भ में प्रकृति के [illegible] से महद्, अहंकार तथा पाँच सूक्ष्म तत्वों की निर्मिति हुई. पाँच तन्मात्राओं से पंचमहाभूत बने. परन्तु विश्व की रचना से पूर्व यह सब कर्म-गर्भ में ही था, जिसमें परमात्मन् ने निर्जीव और सजीव, सब प्रकार की उत्पत्ति के लिए हिरण्यगर्भ की सनातन सृष्टि का बीज रख छोड़ा था. उसीसे कालक्रमानुसार धीरे धीरे

---

१. '[illegible]' is the seeing of things by the Intellect, [illegible], '[illegible]' is the seeing of the same only by emotions.
१. भारतीय दर्शन—हिन्दी [illegible] पृष्ठ [illegible]
२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः . पतंजलि योग सूत्र १:२.
३. [illegible] Introduction [illegible] by [illegible] page.

और ~~नीतिशास्त्र~~ निर्मिति में आई.[1]) मनु भी आत्मज्ञान को प्रत्येक में उच्चतम स्थान स्वीकार करते हैं और वेद आदि द्वारा शरीर और मन की पवित्रता से आत्मिक उन्नति स्वीकार करते हैं. (वर्णाश्रम धर्म की कल्पना समाज के सम्यक् संचालन के ही लिए की गई थी. दूसरी ओर कर्मयोग, जो ज्ञान-प्रधान बताया गया था, आसक्तिहीन होने के कारण मनुष्य को प्रवृत्ति से निवृत्ति तक ले जाने में सार्थक था. मनु के अनुसार मोक्ष का साधन भी ज्ञान ही था; उसी द्वारा कर्म-क्षेत्र में निष्काम-कर्म की प्रेरणा सम्भव थी, जो कि उच्चतम सद्गुण माना जाता था.) ईश्वरवाद की विचारधारा मनु के समय पर्याप्त प्रबल उठी. वेदों की भाँति उसने भी जीवन को ज्ञान और उपासना पर ही आश्रित रखा.

<u>तन्त्रों में भक्ति</u>

उपनिषदों के जिन आदर्शों का विश्लेषण सैद्धान्तिक रूप में किया था, अब उन तक पहुँचने के लिये साधन की अपेक्षा हुई. पतंजलि योग द्वारा आत्म-ज्ञान का मार्ग पहले ही बता चुके थे, परन्तु तत्कालीन समाज इस कठिन और दुष्कर साधन को अपनाने में सम्भवतः असमर्थ रहा था. कुछ आत्म-संयमी तथा विवेकी योगी ही इस क्षेत्र में अधिकारी हो सके, जन-साधारण के लिये यह बोझ-सा बन गया. अतः समाज में किसी ऐसे मध्य-सिद्धान्त का पथ निकलना, जो जनता को अधिक आकर्षित कर सकता हो, स्वाभाविक भी था और आवश्यक भी. सम्भवतः इन्हीं परिस्थितियों से पराभूत होकर भारत में योगवाद के निषेधात्मक मार्गों के उपरान्त तान्त्रिक साधनों की प्रतिष्ठा बढ़ गई. लक्ष्य दोनों का एक था, परन्तु मार्ग विरोधी—दोनों स्वानुभूति के आकांक्षी थे, परन्तु एक निवृत्ति-मार्ग पर चलने वाला तो दूसरा प्रवृत्ति पर; एक आत्मा और परमात्मा के बीच के पर्दे को विदीर्ण करने में आस्था रखने वाला, तो दूसरा उस पर्दे को मिलन का साधन बनाने की कल्पना ~~करने~~ करने वाला.

तान्त्रिक विचारधारा हिन्दुओं और बौद्धों दोनों में प्रचलित हुई. बौद्ध तो पहले से ही प्रवृत्ति-मार्ग पर बढ़ रहे थे, अतः बौद्ध-तान्त्रिकों का उदय पूर्व-भाव में आने वाली गिरावट के कारण भी माना जाना चाहिये. हिन्दु तान्त्रिक एक साधना को दूसरी साधनाओं में विकसित करने के स्वप्न ले रहे थे. वे अपने भिन्न सम्प्रदायों और विचार-पद्धतियों को किसी सर्वोपरि एक ही लक्ष्य सच्चिदानन्द की प्राप्ति या पूर्ण-शिव में मिल जाने के भिन्न साधन ढूँढ रहे थे. सम्भवतः इसीलिये प्रमथनाथ मुखोपाध्याय ने तान्त्रिक-पद्धति के विषय में 'एकमात्र सार्थकता और मोटी निरर्थकता' शब्द प्रयोग किये हैं.[2]

---

1. Kumudranjan Ray--Evolution of Gita. p.70.
2. Tantra as a way of Realisation--The Cultural Heritage of India.

हिन्दू तन्त्रों की चार शाखायें हैं— शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य तथा सौर. इनमें भी शैव और शाक्त की गणना मुख्य तंत्रों में होती है. समय समय पर स्वार्थी विचारकों द्वारा इनकी भी विचारधारा में भी विकलांगता तथा अनाचरण-कार्यों का मिश्रण हो जाता है, यदि उसकी अवहेलना करते हुये देखा जाये तो तन्त्र भी उपनिषदों की रहस्यमयी अनुभव सत्ता की ओर संकेत करते दीख पड़ते हैं. यह सत्ता तांत्रिक-भाषा में सच्चिदानन्द कहाती[1], जिसके दो पक्ष, शिव और शक्ति हैं. यहाँ शिव की निकटता, सूर्य से पुष्प की तरह, शक्ति कोटि में स्थित है. डॉ॰ कालीकिन गुप्त द्वारा उद्धृत शब्दों में ये दोनों रूप अविभेद और अविभाज्य हैं. तन्त्र में शिव को परम-सत्य माना गया है और शक्ति को उसकी सत्ता का मूलाधार. इनमें द्वैत का भाव नहीं, वरन् अनन्यता है, अभिन्नता है.[2] सचराचर संसार की उत्पत्ति मूल-प्रकृति या पराशक्ति माया द्वारा नाद और बिन्दु (अर्ध-केन्द्र) की रचना के पश्चात्, विकसित होती चली जाती है. तदनुसार जीव पशु है और संसार के पाश में बँधा है. उसे शिव बनना है, और वह कुण्डलिनी-मार्ग से ही सम्भव है. सारी वासनायें जब उद्धतावस्थित हो अन्तर्मुखी हो जाती हैं तो मनुष्य के लिये ब्रह्मपद का मार्ग खुलता है. याद रहे कि तंत्र प्रत्येक प्रकार की मनुष्य-कोटियों को एक ही मार्ग पर चलने का उपदेश नहीं देता. तंत्र में मनुष्यों की तीन कोटियाँ मानी गई हैं — पशु, वीर तथा दिव्य. पशु सबसे निकृष्ट है, उसमें भौतिक-प्रवृत्तियों की प्रधानता रहती है. वीर की प्रवृत्तियाँ राजसी और दिव्य की सात्विक होती हैं. तीनों प्रकार के मनुष्य क्रमशः साधना, उद्धार और चैतन्य के आश्रय साधक बन सकते हैं. माया के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने के हेतु साधक को अपने अन्तर में कुण्डलिनी जाग्रत कर उसको उत्थान की ओर ले जाना चाहिये. तभी ही शब्द-ब्रह्म का अनुभव होगा. मूलाधार से उत्पन्न होने वाला नाद षट्-चक्रों के भेदन से सिद्ध होता है. कुण्डलिनी-शक्ति क्रमशः छः चक्रों से उठती हुई मस्तिष्क के सहस्रदल-कमल सहस्रार-पद्म (ब्रह्म-रन्ध्र) तक पहुँचती है, जिससे साधक को मुक्ति प्राप्त होती है, जो कि शिव-ब्रह्म का मिलन है. तांत्रिकों ने साधना के इस मार्ग को सम्यक् रीति से अपनाने के लिये गुरु की परम-महत्ता स्वीकार की है. गुरु चरण में आत्म-समर्पण तथा उसकी शिक्षा-प्रणाली और अनुशासन के बिना यह मार्ग अपने द्वारा अन्धेरे में नक्षत्र को खोजने के बराबर है. यही कारण है कि तन्त्र-शास्त्र में गुरु-भक्ति, ज्ञान और कर्म, तीनों का ऊँचा स्थान है. गुरु-भक्ति मार्ग बताने वाली, ज्ञान उसे समझाने वाली और कर्म उसमें प्रवृत्त होने वाली. उपर्युक्त वर्णन हिन्दू तांत्रिकों का है, किन्तु समय सूत्र से देखा जाय तो ईसापूर्व से लेकर [illegible] ई०पू० तक

---

१. कल्याण साधनांक— पं० गोपीनाथ कविराज पृ० ३८१.
२. दि रैवोल्यूशन ऑफ़ गीता— सुदरंजन राय पृ० १२४.

माना भी जाता है. बौद्ध-जातक [illegible] का [illegible] हुआ है, और उनका [illegible]-
आठवीं शताब्दी में हुआ. अतः उससे पहले [illegible] होगा. [illegible] को [illegible]-
[illegible] रचना [illegible] तथा बुद्ध से भी [illegible] शताब्दी पूर्व [illegible] को
[illegible] पौराणिक-रचनायें [illegible]-भावना का [illegible] जाती है, और [illegible]
[illegible] है [illegible] नारद [illegible]-सूत्र. [illegible] है.)

पुराणों में भक्ति

भक्ति मानव-मन की वह अनुभावना है जिसकी उत्पत्ति श्रद्धा और प्रेम से [illegible] से होती है. जिससे प्रीति या श्रद्धा रखते हैं, उसके गुण-श्रवण में ही आनन्द मिलता है, उसकी बातों में प्रसन्नता होती है, उसके दर्शनों से सुख और उसके स्पर्शों से प्यार होता है. उसकी [illegible], [illegible], सुन्दरता और गुण की भी बोध, हमारे मन में उसी के [illegible] विश्वास होता है और फिर वह उसके प्रेम का आलम्ब होता है, जो भक्ति [illegible] ही बन जाता है. वह अपनी प्रेम-भाव [illegible] की [illegible], उसी के [illegible] देता है और उसके प्रेम [illegible] में धीरे धीरे [illegible] रह जाता है, [illegible] ही प्रेममय होकर [illegible] का [illegible] धारण कर लेता है. इस प्रकार [illegible] भक्ति का प्रथम स्थिति में अपने [illegible] विरह में [illegible] है, दूसरी स्थिति में प्रेम के [illegible] में [illegible] है और [illegible] परम-स्थिति में [illegible], [illegible] होता है. [illegible] है कि भक्ति की प्रथम स्थिति [illegible] के कारण उसे पूर्व भाव-[illegible] है, दूसरी में [illegible] रहता है और तीसरी स्थिति में [illegible] होता है. यही भक्ति का परम-[illegible] है.

[illegible] प्रकार की भक्ति के बीज [illegible] में, [illegible] में [illegible] में [illegible] हुए हैं. [illegible] पुराणों और [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible]. यह [illegible] भारतीय [illegible] में [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]. पौराणिक [illegible] है [illegible], उस में [illegible] है. [illegible] पुराणों में [illegible] है. [illegible] प्रकार [illegible] पूर्णतात्विक [illegible] और [illegible] [illegible]. [illegible]

दूसरे भागों को वैकुण्ठ-निवास की प्राप्ति की प्रेरणा दी गई. हरि-भक्ति को सर्वोच्च धर्म मानना और उसी में अखण्ड श्रद्धा तथा अनन्य-विश्वास की कामना की. गीता कहती है ~~कि~~ आत्मा-परमात्मा के मिलन (मुक्ति) की जो धारणा रही, वह सायुज्य तथा सारूप्य कहलाई. मारकण्डेय ऋषि ने नारायण के शरीर में, अर्जुन की भांति, त्रिलोक, खण्ड, ब्रह्माण्ड आदि देख लिया था, अतः उनके पुराण में सब कुछ नारायण के अन्तर्गत होने की विचारधारा पाई जाती है. उसी में यह तो भगवान् ने बताया हुआ है ही, केवल जागृति की आवश्यकता है.

~~पौराणिक-भक्ति कई प्रकार से अपनाई जाती है. यही मुक्तिका सोपान मानी है. स्पष्ट है कि भक्त से मुक्ति पाने के लिये कर्म-मार्ग पर चलना भी अनिवार्य है (कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते). उचित रीति से कर्म और फल के अपनाने का विचार ही पुराणों में मनु के वर्णाश्रम धर्म की सार्थकता स्वीकार कर लिया है. प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति अपनी अपनी सीमा में फल कर्म करने का अधिकार रखता है और इस प्रकार सामाजिक-नियमों में बन्धे न रहने के कारण उच्छृंखलता की कहीं कल्पना भी नहीं की जा सकी. भक्ति के दृष्टिकोण विषय हो जाने के कारण ईश्वरवाद और अवतारवाद की नींव रखी गई, जो आगे चलकर गीता के रूप में दोनों ओर से लागू होने लगी. ब्रह्मा द्वारा विष्णु पुराण में दिखाया जाने वाला विश्वरूप वर्णन, गीता के विश्वरूप के दर्शन का मूल बना. एक ग्रन्थ में प्रेमी भक्ति का कारण बना तो दूसरा उसी विश्वरूप और अद्भुत का कारण—एक में ईश्वर मातृरूप दिखा तो दूसरे (गीता) में ऐश्वर्यमय?~~

<u>श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति</u>

"श्रीमद्भगवद्गीता की रचना के समय दो प्रकार की साधनायें प्रायः प्रचलित थीं, जिनमें एक ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग, थे. इनमें से प्रथम का मूल मुख्यतः 'आत्मोपासना' का था, जिसके अनुसार मनुष्य का कर्तव्य अपने चित्त को सभी सांसारिक बन्धनों से हटा कर नित्य, शुद्ध एवं ज्ञानमय आत्मा की ओर उन्मुख कर पूर्ण-आत्मज्ञान को उपलब्ध करना और दूसरे का मूल इसी प्रकार "कर्मोपासना" का था, जिसके अनुसार सब व्यक्ति को चाहिये कि अपने कर्म-जन्य व्यापारों का निर्वाह ~~उन्~~ उन्हें यज्ञ या कर्तव्य मान करके, जिससे आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति हो. ये दोनों मार्ग क्रमशः "निवृत्ति मार्ग" व "प्रवृत्ति मार्ग" भी कहलाते थे और श्रीकृष्ण ने उन दोनों को समन्वित कर अपना "ज्ञान-कर्म-भक्ति समुच्चय"

---

१. मैथोलॉजी ऑफ गीता— सुदर्शन राय पृ०१०८.
२. " " " पृ० १०५.

—— १९.

[illegible] युग में [illegible] ज्ञान और कर्म योग [illegible] गीता में श्रीकृष्ण ने भक्ति और योग का समन्वय कर दिया. भागवत-धर्म में गीता की पूर्ववर्ती [illegible] [illegible] हुआ था. वैदिक पारलौकिकवादियों [illegible] भक्ति कर रखी थी. इसी प्रकार से कर्म-काण्डों में रुचि [illegible] [illegible] थे [illegible] [illegible] ईश्वरवाद का भी तिरस्कार कर रहे थे, उनकी [illegible] कर्म-नीति की [illegible] और [illegible] जनता की [illegible] के लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत्कालीन [illegible] में [illegible] में ही निहित थी. अतः गीता में श्रीकृष्ण ने [illegible] ईश्वरवाद के रूप में [illegible] परमात्मा की देन [illegible]—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय.
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः गीता अध्याय १२, श्लोक ८.

(अर्थात् हे अर्जुन, तू मेरे में [illegible] मन को लगा, मुझ में ही अपनी बुद्धि को [illegible] कर, तब तू निःसन्देह मुझ में ही [illegible] जायेगा)

[illegible] ईश्वर की भक्ति का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ईश्वर की कोई [illegible] [illegible] (मन द्वारा [illegible]) है और [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] उसके चरणों में समर्पित कर देता है. [illegible] [illegible] बताया गया है [illegible] [illegible] कर्म-काण्डों और [illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] थी, और वह [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] नहीं हो सकता था. [illegible] और [illegible] को अपनाने [illegible] [illegible] + [illegible] नहीं, [illegible] जाता था, और वह [illegible] श्रीकृष्ण ने उन्हें दिया, [illegible] की [illegible] हुई है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज.
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः १८:६६.

(अर्थात् सब धर्मों को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सच्चिदानन्द वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सब पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर)

१. [illegible] की [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] पृ० १९.
२. [illegible] [illegible] [illegible] में श्री [illegible] [illegible] द्वारा उद्धृत.

इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण माया जाल में रहे जीव को मुक्ति—मार्ग भी [illegible] निश्चय कर चुके हैं— [illegible] जीव उनकी [illegible] आवे, [illegible]—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया.

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते. गीता ७:१४.

[illegible] चतुर्विध [illegible] (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी) भी माया [illegible] हैं; परन्तु जो युक्त मेरे [illegible] निरन्तर [illegible] हैं, वे [illegible] माया को उल्लंघन कर जाते हैं, [illegible] से तर जाते हैं. [illegible] गीता में भक्त का [illegible] स्थान [illegible] है. [illegible] भक्त [illegible] कारण बना है. [illegible] गीता में [illegible] आधिक्य भी हुआ है. [illegible]—

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन. गीता ६:४६.

"[illegible] योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और [illegible] श्रेष्ठ है, [illegible] इसलिए तू [illegible] योगी हो!"

[illegible] नहीं, यहाँ भी [illegible] और [illegible] की श्रेष्ठता को [illegible] नहीं हुई. [illegible] में स्पष्ट कर दिया—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना.

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः. गीता ६:४७.

[illegible] योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मेरे को निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है.

शाण्डिल्य—सूत्र तथा नारद—सूत्र में भक्ति

गीता की [illegible] शाण्डिल्य [illegible]—सूत्र तथा नारद [illegible] सूत्रों में और भी [illegible]. शाण्डिल्य ने भक्ति को ईश्वर के प्रति [illegible] [illegible] की भावना स्वीकार किया है. ईश्वर के प्रति [illegible] [illegible] में [illegible], [illegible], निरन्तर [illegible] [illegible], [illegible]

१. श्रीमद्भगवद्गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर.
२. थीइज़्म इन मेडीवल इण्डिया—कार्पेन्टर.

उसके उदयमात्र होने का ज्ञान, तथा उसके प्रति विरोध का अभाव सच्ची भक्ति के चिह्न हैं।
श्रीकृष्ण ने गीता में ज्ञानयोग तथा भक्त को अत्यन्त उत्तम अवस्था में रखकर ज्ञान और भक्ति को समन्वय कर दिया है. परन्तु शाण्डिल्य ने स्पष्टतः भक्ति को ज्ञान-प्रधान का न मान कर भावात्मक-वृत्ति रूप में स्वीकार किया है. भक्ति के उदय से ज्ञान का अवसान होता, भक्ति का रागानुभूति स्वीकार किया जाता, पुनः उसीको निम्न भूमिकाओं में भी ज्ञान का पाया जाता और पूर्णतः अपरोक्ष-[illegible] जीवों को भी केवल भक्ति द्वारा मुक्त हो जाती, [illegible] प्रमाण हैं, जो इसी उपाय अपने कथन की पुष्टि में प्रस्तुत करते हैं. जीव मरण का पद भी अज्ञानता के कारण नहीं पाता, शाण्डिल्य के मत में उसका कारण भी भक्ति का अभाव है. भक्ति-भाव के उदय होते ही जीव इस पद से मुक्त हो सकता है.

नारद भक्ति-सूत्र पूर्वोक्त दोनों शास्त्रों से अनूठा और भक्ति का स्वरूप देते हैं. भक्ति की परिभाषा में नारद ने भी परम-प्रेम को बहुत ऊँचा स्थान दिया है. "परम" शब्द यहाँ तीन मुख्य बातों को बताता है; १.भक्ति अनिर्वचनीय: अलौकिक है; यह ईश्वर से अनिर्वचनीय रूप से नाता जोड़ती है. २. कर्म या ज्ञान इसे कभी प्रभावित नहीं कर सकते. यह अपने में स्वतंत्र है, साधन नहीं. ३. यह कामना या निष्काम नहीं—अपने आप वचन, कर्म और मनोविकारों से इसका प्रकटीकरण होता रहता है। नारद के मतानुसार भक्ति सर्व-सुलभ-सम्पन्न साधन है, सन्तों की कृपा, विचार और आदर्शों में परमादर्श है. दुनिया की आसक्ति का त्याग करना, ईश्वर-नाम की उपासना करना तथा भक्ति को "भावना" में ओत-प्रोत रखना पुष्टि तथा प्रवृत्ति का लक्षण और तरीका माने है. भक्ति कई प्रकार से बताई जा सकती है, पुनः इसके नौ रूप हैं, जो भी नौ रूप-विभूति का आधार बनकर रहता है—श्रवण,गान,स्मरण,प्रणाम,पूजन, वन्दना,दास्य,सख्य,आत्म-निवेदन.

<u>दार्शनिक-चिन्तन का कारण</u>

भक्ति की उत्तरोत्तर तरंगों के पश्चात् देश में [illegible] श्रीकृष्ण की पूजा चलने लगी. उस देश की अवस्था, राजपूत-वंशों के युद्ध में [illegible] और यहां का मुख्य पुजारी [illegible] धार्मिक उदारता का [illegible] आक्रमणों से प्रभावित, बुद्ध-धर्म के विकास में अतीव सहायक हुये. पुनः [illegible] का वातावरण, न उनमें [illegible], न उनमें ज्ञान-[illegible] या [illegible], [illegible] भावों को अपनाये भक्ति पर आधारित [illegible]. महात्मा-बुद्ध

---

१. गीता अध्याय-१८ [illegible].
२."भक्ति-सूत्र" और "नारद" [illegible] [illegible] में उद्धृत.

पुजारी कुमारिल भट्ट प्रभृति, मीमांसा-कर्मानुयायियों के अधीन थे, जिन्हें बलि करने में कठिनाई नहीं हुई और पुजारी और धनिक अन्धविश्वासों पर जीवन-यापन करता, यह था कर्म-काण्ड से कहीं बढ़ गया. यह फिर क्या था, ब्राह्मणों की संस्कृत भाषा से तंग और यज्ञ-कर्मों से तंग आकर देशवासी भगवान बुद्ध के अहिंसा के उपदेश की ओर बढ़े. हिन्दू धर्म की नींव हिल गई, शास्त्रों-विद्वानों को [illegible] अन्धकार में ठोकर लगी. हो सकता था कि बौद्ध-धर्म में ही सब कुछ हो जाता, परन्तु बुद्ध के अनुयायी आपस में बिखरते चले जाते, इनकी मृत्यु के भी कुछ [illegible] समय [illegible] अनुचित. बौद्ध-धर्म में भी विकृति आई. वज्रयान सरीखी अवतारी [illegible] हो गई और वे अपनी ही [illegible] पर [illegible] बैठे. इसी प्रकार [illegible] की [illegible]-परम्परा ने नाथ-योगियों ने उनकी कुरीतियों का विरोध किया और अपने [illegible] में हिन्दुत्व की ओर पुनः झुक गये. परन्तु बौद्ध-धर्म की [illegible] सामाजिक-कुरीतियों से बुद्धों ने [illegible] उठाया. हिन्दू-मतावलम्बियों और ब्राह्मण-नेताओं ने धर्म की [illegible] के लिए [illegible] उनको दार्शनिक-सिद्धान्त की पुष्टि करनी आरम्भ की तथा धर्म-पद्धति को [illegible] कर बौद्धों की कुरीतियों का विरोध करते और लोगों को अपनी ओर पुनरावर्तित करने में बहुत कुछ सफल हो गये. इतिहास इसे हिन्दू-धर्म का पुनर्जीवन करकर पुकारता है.

शंकराचार्य का अद्वैतवाद

इसके दार्शनिक [illegible] का [illegible] कारण भी है. हिन्दू-धर्म-[illegible] के [illegible], [illegible] और [illegible] तब की [illegible] पर [illegible] हुए थे [illegible] उनका [illegible] हो गया था. ऐसे ही समय [illegible] वाले विद्वान-दार्शनिक अपनी [illegible] कल्पना और विचार की पारदर्शिता [illegible] बैठे, उपनिषदों, शास्त्रों, गीता आदि धर्म-ग्रन्थों पर विस्तृत भाष्य लिखे, टीका करते, और धर्म-प्रचारों से अपनी मान्यताओं की स्थापना करने का प्रयास करते. ऐसे विद्वानों में शंकराचार्य, जिनका जन्म संवत् ८४५ से संवत् ८८० है, सर्वप्रथम [illegible] कहे जा सकते हैं. शंकर ने परम-तत्व को ब्रह्म का नाम दिया, जो कि "सत्-चित्" अथवा "आनन्द" और "[illegible]" का प्रतीक है. यह ब्रह्म अपनी [illegible] माया का मूलाधार है [illegible] होता है जो शुद्ध, [illegible] या [illegible] अथवा ईश्वर कहलाता है. जब यह ईश्वर का स्वरूप, [illegible] तथा [illegible] बन बैठता है, यह उसका [illegible] है. शंकर माया को

---

१. [illegible] — [illegible], [illegible].

कोई भ्रम नहीं जागेगा. इसकी वास्तविकता अनिर्वचनीय और अलौकिक है. इसको शून्यात्मक नहीं, क्योंकि यह विशेषता ब्रह्म और केवल ब्रह्म की है; यह अनात्मक भी नहीं, क्योंकि यह ब्रह्म के साक्षात्कार का कारण बनती है; इसे आत्मक तथा अनात्मक दोनों की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि यह स्वयं भ्रमात्मक है. यहां इसे मिथ्या कहना अधिक उचित है. जो शंकराचार्य के शब्दों में यह [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] अनुभाविक भी नहीं नहीं, यह अद्भुत है.¹ (उदाहरणतः, किसी मंच पर जादूगर तमाशा दिखाता है. वह अपनी अद्भुत क्रियाओं से रुपये बनाता, टोपी से कबूतर पैदा करता और कुछ वस्तुएं अदृश्य करता, पुनः प्रस्तुत करता है. दर्शकगण विस्मय में आ जाते हैं, और उसकी उन वस्तु-क्रियाओं को वास्तविक समझने लगते हैं. इसका कारण है दर्शकों की अविद्या या अज्ञान. यदि उनमें कोई ऐसा व्यक्ति भी हो जो जादूगर के हाथ की सफाई से परिचित और उत्पाद्य वस्तुओं के प्रकृत स्वरूप का जानकार हो, तो उसके लिए जादूगर का यह तमाशा मनोरंजक [illegible] के सिवा और कुछ नहीं रह जाता. प्रस्तुत उदाहरण में जादूगर की उत्पादित वस्तुओं और वास्तविक पदार्थों में समानता का सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वे दीर्घजीवी नहीं होतीं; असमानता का सम्बन्ध भी नहीं हो सकता, क्योंकि दर्शक उन्हें ठीक वास्तविक पदार्थ की तरह ही देखता है; फिर भी उभय दोनों सम्बन्धों का प्रश्न ही नहीं उठता—इस प्रकार के सम्बन्ध को तादात्म्य कहा जाता है है. ध्यान रहे इस तादात्म्य के कारण जो भ्रम पैदा हुआ वह मिथ्या है, अनात्मक नहीं. यदि इसे अनात्मक मान लिया जाये तो भ्रम का आधार भी मिथ्या भ्रमात्मक होगा, अर्थात् जादूगर का अस्तित्व भी न रहेगा. इसी प्रकार यह दृश्य-जगत मिथ्या है, जादूगर-ब्रह्म की माया है, भ्रम है. भ्रम का आधार स्वयं ब्रह्म है, जो सत्य है. यथा जादूगर की भ्रमात्मक—क्रियाओं को जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता थी, उसी प्रकार माया के मिथ्यात्व का ज्ञान रखने वाला ब्रह्म की वास्तविकता का परिचय प्राप्त कर लेता है और यहीं वह आनन्दस्वरूप (ब्रह्म) में ही लीन हो जाता है. स्पष्ट है कि माया ब्रह्म की [illegible] है, [illegible] हमारी धारणाओं के बन्धन में [illegible] है. यह अनिर्वचनीय, अलौकिक और अदृष्ट है. यह संसार में ऐसी स्थितियां पैदा करती है, जो प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन में ही भिन्न-भिन्न हो जाती है.) जीव जब तक अज्ञानाछन्न है, वह ब्रह्म की इस पदार्थ-सृष्टि (माया) को वास्तविक समझता है, अज्ञान का आवरण हटते ही माया का भ्रम भी दूर हो जाता है और मिथ्या —[illegible] ईश्वर की "[illegible]" का भ्रम भी. ईश्वर ने माया की [illegible] दूर कर प्रस्तुत की है—उपनिषदों ने [illegible] [illegible]

---

१. "[illegible]"— शंकराचार्य, [illegible] [illegible].

[illegible] से [illegible] हो गये हैं.

और [illegible] में जीवरी [illegible] है. और उसे ब्रह्म से पृथक नहीं मानता, वह उसी ब्रह्म है; केवल [illegible] का अज्ञान के कारण [illegible] में पड़ी वह [illegible] अपने को परम-[illegible] से पृथक समझता है. [illegible] है कि [illegible] में [illegible] कुछ [illegible] ही नहीं. जीव [illegible] अज्ञान-वश अपने को बन्धन में जकड़ता और कर्मों का कर्ता और भोक्ता बनता है. कारण? [illegible] ब्रह्म के बीच माया [illegible] है, [illegible] जीव कर्तापन का दर्शन करता है और अपने में [illegible] का अनुभव करता है. [illegible] होता है, तब [illegible] का [illegible] है.

रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद

ब्रह्म, जीव और माया का जो स्वरूप शंकर [illegible] से [illegible] था, वह [illegible] को [illegible] था, परन्तु [illegible]. [illegible] अनुभव किया, और शंकर के अद्वैत को [illegible] के साँचे में ढालकर विशिष्टाद्वैत का बेल फैलाया. उन्होंने ईश्वर को [illegible], चित् और अचित् कहा. उनकी उपासना और [illegible] है. [illegible] "[illegible]" को "[illegible]" का [illegible] नहीं. ([illegible] पदार्थ, [illegible], [illegible] आदि भी [illegible] हैं, वे [illegible] हैं, परन्तु ईश्वर [illegible] नहीं करता. ईश्वर [illegible] है.) रामानुज ने जीव और पदार्थों की पृथक सत्ता स्वीकार की है, परन्तु [illegible] अस्तित्व [illegible] ईश्वर [illegible] है. [illegible] रामानुज ने जीव और पदार्थों को परमात्मा [illegible] स्वीकार किया है, जैसे गुण वस्तु के साथ, जैसे [illegible] पूर्ण के साथ, या जैसे शरीर आत्मा के साथ—[illegible] अधिकार रखते हैं. वे (जीव व पदार्थ) [illegible] हैं तो ईश्वर प्रकारी; वे [illegible] हैं, ईश्वर [illegible]; वे [illegible] हैं, ईश्वर [illegible]. वे [illegible] हैं, [illegible] ब्रह्म के आधीन हैं. [illegible] ही रामानुज द्वारा

---

१. [illegible]

२. 'Souls and matter are comprehended within the Unity of the Lord's essence and are related to the Supreme, as attributes to a substance, as parts to whole, or as body to the soul. which animates it'.
Indian Philosophy Vol.II. p.6[illegible]4. Radhakrishnan.

3. Ibid p. [illegible]5.

[illegible] ईश्वर की कृपा [illegible] में एक अटल [illegible] पाते हैं, (२) ईश्वर परम सत्य है, (३) वह स्रष्टा है और [illegible] का गुण-कर्म मुक्त हो जाना चाहिये, (४) ईश्वर संपूर्ण सृष्टि का नियंता है तथा पदार्थ और आत्मन् उसी के अधीन हैं। (और ईश्वर के अधीन होते हुए भी अपने में स्वतंत्र है। अपने कर्मों का वह पूरा पूरा उत्तरदायी है, यही कारण है कि कर्म-बंधन में पड़ा वह जन्म-मरण के चक्कर में पड़ता है। जैसे मुक्त हो [illegible] जाता है, जिससे वह प्रभु [illegible] से दूर हो सकता है। मुक्ति-प्राप्त जीव मुक्त हो जाता है और ईश्वर में निवास करता है। वह ईश्वर जैसा हो, उसके अपने गुणों को ग्रहण कर लेता है —यद्यपि [illegible] को ईश्वर जैसी उत्पत्ति, [illegible] तथा [illegible] पर प्रभुत्व आदि ईश्वरीय गुण नहीं आ पाते। वह ईश्वर में मिल कर भी [illegible] निर्गत नहीं हो जाता। [illegible] वह भी मुक्ति के उपरान्त भी अपना ईश्वर से पृथक् अस्तित्व रखता है।)

([illegible] मुक्त आत्मा [illegible] कोई अन्तर नहीं।) रामानुज भक्ति को ही मुक्ति का पहला और मुख्य आधार स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार ईश्वर कृपालु है; जब कोई उसे अनन्य-चित्त से स्मरण करता है, उसके विरह में दुःखी होता और उससे मिलने के लिये तड़पता है, उसकी आराधना करता और उपासना में तन्मय रहता है, तो स्वयं ईश्वर उसकी सहायता के लिये [illegible] कृपा करते हैं और उसे अपने में लीन करने को तत्पर होते हैं। (जैसे पिता [illegible] प्यार से [illegible] पुत्र को गोद में उठा लिया जाता है, वैसे ही भगवान् की कृपा पाने वाला भक्त धन्य हो जाता है। "भक्ति मुक्ति का ही एक साधन मात्र है, अतः वह स्वयं में अपना साध्य भी है।)"[1] रामानुज भक्ति के क्षेत्र में भी "आत्मसमर्पण" भाव को भक्ति की श्रेष्ठ मानते हैं। उन्होंने इसे "प्रपत्ति" कह कर पुकारा है। (उनका विचार है कि भक्ति के जो मार्ग [illegible] कठिन [illegible] नहीं अपनाये जा सकते, और आत्मसमर्पण ही एक ऐसा मार्ग है जो बिना किसी भेदभाव के सारी जनता [illegible] ग्रहण हो सकता है। इसकी सफलता भी अवश्यम्भावी है, क्योंकि भगवान् के गुण [illegible] हैं, और उनमें भी दया का स्थान प्रथम है।

---

१. [illegible] — चन्द्रधर शर्मा.

२. हिन्दी साहित्य की रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ — डॉ० [illegible] गुप्त.

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त दशाब्द में कृष्णभक्ति के प्रचारकों के लौकिक जनता जीवन की ओर में जन्म-मरण की अपेक्षा रखते थे. शंकर तथा रामानुज के निर्गुण-सगुण जनता को इसकी सेवा को स्वीकार करने में असमर्थ थे. लोगों को ऐसे भगवान् की आवश्यकता थी जो जन-सुलभ हो, जब जी चाहे दौड़ पड़ें, जो इनके प्रति भी उतरे तो गोवर्धन-धारी बन जावे और ब्रज में कुंज वन बाग में विहार कर स्नेह बल प्रकट करे. जनता को आवश्यकता थी उस भगवान् की जो भक्त पर आई आपत्ति देख सुदर्शन ले चल दौड़े, जब ये स्वयं का गुरु और भक्त के भक्तों का वरदान बन कर रहे. जनता की इस मांग का अनुमान वल्लभाचार्य ने किया, और अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत के समक्ष जनवादी पर शुद्धाद्वैत की स्थापना की. वल्लभ ने ईश्वर को शुद्ध माना, जिसका तात्पर्य वासुदेव श्रीकृष्ण में अवतरित है. वे परम दयालु हैं, वे जनता की पुकार पर अवतार लेकर दौड़ते तथा भक्त के वश में रहते आते हैं. माया उनकी शक्ति-स्वरूप है, लेकिन किसी भी रूप में उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है. उसका आविर्भाव तथा तिरोभाव ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है. यदि ईश्वर चाहे तो स्वयं कृपा कर दोषयुक्त जीव को शुद्ध कर माया का प्रभाव उससे हटा सकता है. ईश्वर सगुण है, उसमें अलौकिक और अगणित गुण हैं. "सत्" "चित्" और "आनन्द" उसके प्रधान गुण हैं, इसीलिये उसे सच्चिदानन्द भी कहा जाता है.

जीव भी शुद्ध है, परन्तु उसमें आनन्द का गुण नहीं होता. इसीलिये वह आनन्द गुण को ईश्वर में ढूँढ़-ढूँढ़ कर प्राप्त करता है. यदि ईश्वर कृपा से उसे आनन्द भी मिल जाये, तो वह आनन्दमय हो जाता है, और ब्रह्मवत् शुद्ध हो स्वयं शुद्ध भी हो जाता है, यही मुक्ति है.(जड़ पदार्थों में आनन्द और चित् के दोनों गुणों का अभाव होता है. वल्लभ के मतानुसार वे मिथ्या नहीं. "सत्" का गुण उनमें सदैव विद्यमान है, यद्यपि उनका अस्तित्व बना ही रहता है. प्रलय के समय, जब ईश्वर अपनी इच्छा से जग कुछ तिरोहित करता है, केवल तब ही जड़ जगत् से "सत्" के तत्व का तिरोभाव होता है.)

वल्लभ ने जगत् का प्रपंच और संसार में स्पष्ट अन्तर प्रकट किया है. उनके मतानुसार जगत् भगवान् की वास्तविक सृष्टि है, किन्तु संसार का जन्म-मरण का चक्र आत्मा की अविद्याजनित कल्पना है. अविद्या के पांच अंग हैं — क. आत्मा की मौलिकता का अज्ञान, ख. शरीर से उसकी मिथ्या एकात्मता, ग. ज्ञानेन्द्रियों से झूठा सम्बन्ध, घ. स्वार्थ-भावनाओं में उसकी कल्पना, ङ. और अन्तःकरण से उसका अवास्तविक सम्बन्ध. जब वास्तविकता का ज्ञान होता है, तो अविद्या का विनाश होता है, और उसके साथ ही

संसार का अन्त हो जाता है. परन्तु अक्षर, क्योंकि ईश्वर का यथार्थ दृष्टि है, सृष्टि का सदा बना रहता है! वल्लभ का मत है कि ईश्वर जब अकेले रहते ऊब गया, तभी उसने अपनी इच्छानुसार अपने ही में से जीवों का, और सृष्टि का निर्माण किया. सृष्टि भी, क्योंकि जीव और सृष्टि ईश्वर या ब्रह्म का अंश है, वे सत्य ही होंगे. ब्रह्म में से जीवों का आविर्भाव, आकुल से स्फुलिंगों की भाँति होता रहता है! इसे सृष्टि का विकास-क्रम कभी लोप नहीं पड़ता. वल्लभाचार्य मुक्ति-प्राप्ति का एकमात्र साधन ईश्वर-कृपा को मानते हैं, जिसे वल्लभीय-भाषा में "पुष्टि" कहा जाता है. इसीसे लोग शुद्धाद्वैतवाद को "पुष्टिमार्ग" भी बोलते हैं. ध्यान रहे, पुष्टि की प्राप्ति भगवद्भक्ति में ही होती है. पुष्टिमार्गी का उद्देश्य केवल मुक्ति नहीं, प्रत्युत श्रीकृष्ण की सेवा और उपासना देता है, जिससे जीव श्रीकृष्ण के वृन्दावन-विहार में भाग लेकर परमानन्द प्राप्त करता है!

बौद्ध तांत्रिक

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, भारत में सातवीं-आठवीं शताब्दी में बुद्ध-धर्म का रूप विकृत होने लगा था. इन बौद्ध-तांत्रिकों की वज्रयान शाखा भारत के पूर्व में अपना पूर्ण प्रभाव जमाये थी. इन दिनों देश में ऐसे प्रवृत्ति बहुत जगह थे पर [illegible] उनकी प्रतिक्रिया भी पैदा हो गई थी, वे वेदों को भी तुच्छ मानते थे.) सातवीं-आठवीं सदी के तांत्रिकों में वेद-विरुद्ध आचार को हेय घोषित करने की प्रवृत्ति बहुत तीव्र रही. वे लोग सात प्रकार के आचार मानते थे, जिनका उत्तरोत्तर श्रेष्ठ क्रम इस प्रकार है—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार, और कौलाचार! कौलाचारी किसी भी नियम को स्वीकार नहीं करते. वामाचारी तो नारी-भोग को ही मुक्ति का मार्ग मानते थे. पूर्व की ओर जिन वज्रयानी तांत्रिकों का प्रभाव था, वे वामाचारी ढंग के ही थे और सिद्ध कहलाते थे. जनता उनसे अत्यन्त भयभीत रहती, क्योंकि वे ऋद्धि-सिद्धियों से परिचित थे और जनता का विश्वास था कि वे अलौकिक शक्ति-सम्पन्न थे. "बिहार के नालन्दा और विक्रमशिला नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ इनके अड्डे थे. बख्तियार खिलजी ने जब इन स्थानों को उजाड़ा तो ये लोग तितर-बितर हो गये. बहुत से भोटादि अन्य देशों को चले गये."[५]

---

१. इण्डियन फिलॉसफी—चन्द्रधर शर्मा. २. हिन्दी काव्य की कलात्मक प्रवृत्तियाँ—डॉ० कृष्णमोहन गुप्त. ३. इण्डियन फिलासफी—राधाकृष्णन पृ० ७५०.
४. मध्यकालीन धर्म-साधना—हजारी प्रसाद द्विवेदी. पृ० ३६-४०.
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास.—रामचन्द्र शुक्ल.

दसवीं शताब्दी तक आते न आते हिन्दू-धर्म पर्याप्त सुदृढ़ता को पुनः प्राप्त कर चुका था. परन्तु बौद्ध धर्म में टोने-टोटके की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी. भारत में मुसलमानों के आगमन से समाज में एक महद् क्रान्ति आ रही थी. हिन्दू जाति को एक और प्रभावोत्पादक और स्वच्छ विचार-धारा को धार्मिक जाति का सामना करना पड़ रहा था. भारत में हिन्दुओं द्वारा हेय समझे जाने वाले सब के सब समुदाय मुस्लिम-समाज का अंग बना लिये जा सकते थे. वहाँ ऊँच-नीच का भेद-भाव न था. यही कारण है कि उस समय बंगाल के अनेक वेद-विरोधी धर्म-सम्प्रदाय मुसलमान हो गये. पंजाब में नाथों, निरंजनों और पाशुपतों की अनेक शाखायें मुसलमान हो गईं. उस युग में अनेक ऐसे बौद्ध, शैव या शाक्त सम्प्रदाय थे, जो मुसलमान न थे; और न ही हिन्दू कहलाते थे. उनमें शैव और शाक्त बृहत्तर ब्राह्मण समाज में मिल गये, कुछ लोग मुसलमान हो गये.[1] इस प्रकार भारत में हिन्दू और मुसलमान, दो दल बन गये. दोनों में आत्म-रक्षा की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई, और दोनों अपने समाज की नित-नवीन किला-बन्दियाँ करने लगे.

नाथ पन्थ

नाथ-पंथी योगी भी वज्रयान सिद्धों की ही एक शाखा है, किन्तु उनसे छूट कर अपनी साधना और साहित्य को परिष्कृत करने में ही श्रेय पाते रहे हैं. जहाँ वज्रयान योनि-व्यापार और मद्य-सेवन में ही अपनी करामातों की महानता समझते थे, वहाँ नाथ-योगियों ने ब्रह्मचर्य द्वारा शारीरिक योग की साधना और ईश्वर-प्राप्ति के परम-लक्ष्य को शुद्ध रूप में अपनाया. गोरख नाथ (दसवीं शताब्दी) ऐसे प्रथम पुरुष सिद्ध हैं, जिन्होंने अपने मत का खुले आम प्रचार किया और हठ-योग तथा मनोविकार की क्रियाओं की शिक्षा दी. गोरख ने अजपा-जाप द्वारा केवल मन को स्थिर कर ब्रह्मरन्ध्र महारस या योगानुभूति उपलब्धि की विधि बताई. —श्वास-क्रिया की धौंकनी के सहारे ही रस जगाकर उक्त कार्य सम्पन्न किया जाता है.[2] वज्रयान से अपना सम्बन्ध तोड़ने के साथ साथ नाथ-योगियों ने अपना क्षेत्र भी अलग चुना. जबकि पूर्ववर्ती सिद्ध भारत के पूरब में अड्डा बनाये थे, नाथ-योगियों ने भारत के उत्तर-पूर्व को अपना प्रचार-क्षेत्र चुना. गोरखनाथ का तो जन्म भी कहीं पंजाब में ही माना जाता है. निस्सन्देह उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों का मतैक्य नहीं. कुछ विद्वान उनका जन्म पेशावर या जालन्धर(पंजाब) में मानते हैं; कुछ

---

१. मध्य कालीन धर्म-साधना—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ०४८-४९.

२. गोरख बानी (हिन्दी सा० सम्मेलन, प्रयाग)पृ०११-१२,पद ६. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा उद्धृत.

ऐसे भी हैं जो बंगाल के बाकरगंज जिले, या दक्षिण में गोदावरी नदी के समीप चन्द्रगिरी नगर को उनका जन्मस्थान मानते हैं. यद्यपि आजकल पंजाब को ही अधिक मत प्राप्त है. उनका प्रचार क्षेत्र अधिकतर नेपाल, उत्तरी-भारत, महाराष्ट्र, सिंध तथा पंजाब रहा है.[1] पंजाब में "बालनाथ का टीला" सम्भवतः उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है. गोरख के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ कहे जाते हैं. जो कि सम्भवतः असम के रहने वाले थे. उनके गुरु का नाम चर्पटीपा कहा है, जो कि सिद्ध है. अन्य प्रसिद्ध नाथ जालन्धरनाथ का लिया जाता है, जिन्हें आदिनाथ भी कहते हैं. ऐसा प्रतीत होता है कि नाथ-पंथ आदिनाथ जालन्धर के समय ही ब्रज्रयानियों से जुदा हो गया था. जालन्धर नाथ पंजाब में पर्याप्त समय रहे होंगे, या उन्होंने वहाँ प्रचार किया होगा, जिसका प्रतीक वहाँ का प्रसिद्ध नगर जालन्धर है. वहाँ की जनता की जन-श्रुतियों के अनुसार जालन्धरनाथ ही नहीं, गोरख नाथ ने वहाँ बहुत देर अपना अड्डा रखा है, और उन्होंने ही अपने दादा-गुरु के नाम पर उस नगर को बसाया और नाम दिया. नाथ-सम्प्रदाय और विशेषकर गोरखनाथ का प्रभाव १५वीं शताब्दी में जगने वाले पंजाब के भक्ति-आन्दोलन पर परिलक्षित पड़ता है. ठीक है कि परिस्थितियों के बदल जाने के कारण वह ~~भक्ति~~ आन्दोलन हठ-योग को न अपना सहज-योग अपना कर चला, परन्तु नाथ-प्रभाव से वह अछूता न रहा.

नाथ-पंथ में जाति-पाँति का कोई बन्धन नहीं था, अतः निम्न जाति के लोगों ने इस सम्प्रदाय को ~~लेकर~~ ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक आश्रय दिया. क्योंकि नाथ-पंथ एकेश्वरवाद को लेकर चला था, इसलिये मुसलमानों के लिये भी उसमें आकर्षण था. अतः इस पंथ को अपनाने वाले हिन्दु-मुसलमान दोनों थे.—स्पष्ट है हिन्दु-मुसलमानों को समान व्यवहार और एक भक्ति-मार्ग देने में नाथ-पंथ ही सर्व-प्रथम ठहरता है. यहीं से निर्गुणवाद का उदय होता है.

महाराष्ट्र में भक्ति

गोरख नाथ ने महाराष्ट्र में भी प्रचार किया था. यहाँ के प्रसिद्ध ज्ञानदेव जी (ज्ञानेश्वर) ने अपने को गोरख की शिष्य-परम्परा में स्वीकार किया है—जालन्धरनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ-ज्ञानेश्वर. ज्ञानेश्वर के समकालीन महाराष्ट्र में प्रसिद्ध महात्मा नामदेव हुये हैं. वे जाति के छीपी थे. कहते हैं कि जब परशुराम ने

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—राम चन्द्र शुक्ल.

क्षत्रियों का नाश करने का बीड़ा उठाया, उस समय अपने को बचाने के लिये इनके पूर्वजों ने अपनी जाति छिपा ली थी, अन्यथा वे भी मूलतः क्षत्रीय थे. बाद में जाति छिपाने के कारण ये छीपी कहलाने लगे. (इनका जन्म महाराष्ट्र के सितारा जिले के किसी नरसी-बमनी गाँव में संवत् १३२७-२८ के आस पास हुआ था. आचार्य राम चन्द्र शुक्ल इनका समय सं०१३२८ से १४०८ तक मानते हैं, जबकि कुछ अन्य आचार्य इनका जन्म १३२६ तथा कुछ १३२० में मानते हैं; मृत्यु भी सं०१४०० में ठहराई जाती है.[1] सन्त नामदेव के पिता दर्जी का काम करते थे, और विट्ठल के भक्त होने के कारण प्रतिवर्ष पंढरपुर की यात्रा करते थे. नामदेव स्वयं भी विट्ठल के भक्त थे, परन्तु स्वतन्त्र विचारों के कारण जाति-भेदों में न पड़ कर हिन्दु-मुसलमानों को समान समझते थे. उन्होंने दोनों के लिये सामान्य भक्ति-मार्ग का आभास भी दिया है. ज्ञानदेव और इनमें स्वाभाविक प्रेम था. ज्ञानदेव पर नाथपंथ का प्रभाव होने के कारण वे प्रायः नामदेव को समझाया करते कि उनकी भक्ति एकांगी है. केवल विट्ठल के मन्दिर में ही भगवान नहीं, वे तो सब जगह व्याप्त हैं. परन्तु नामदेव पर इस का कोई विशेष प्रभाव कभी न होता. ज्ञानदेव उन्हें गुरु की खोज की प्रेरणा देते, परन्तु वे अपनी विट्ठलोपासना में मग्न रहते.) कहते हैं कि एक बार ज्ञानदेव उनको (नामदेव) लेकर तीर्थ-यात्रा को गये. वहाँ एक रात सब सन्त महात्मा-जन मिल कर बैठे, तो किसी के इस प्रस्ताव पर कि बताओ कि कौन पक्का है, मेज़बान महात्मा ने, जोकि कुम्हार थे, अपनी मिट्टी ठोकने वाली थापी से सब के सिर पर चोट लगानी शुरु की और जब नामदेव की बारी आई, तो वे चिढ़ कर उठे और कच्चे घोषित कर दिये गये.[2] इस घटना के बाद नामदेव ने गुरु की खोज की. (ध्यान रहे, यहाँ से निर्गुण परम्परा की "गुरु बिन गति नहीं होय" का श्री-गणेश हो जाता है) एक दिन मन्दिर में उन्होंने एक वृद्ध व्यक्ति को विट्ठल की मूर्ति पर पैर रखे लेटे देखा. मूर्ति का अपमान न सह सके, झुंझला के उस वृद्ध व्यक्ति के पैरों को घसीट कर दूसरी ओर कर दिया. देखते क्या हैं, कि मूर्ति भी साथ ही घूम गई. फिर क्या था, खोजी को गुरु मिल गया. नामदेव उसके चरणों में गिर पड़े और उससे दीक्षा ली. उस वृद्ध का नाम था-विसोबा खेचर. सन्त नामदेव ने मधुरभक्ति के अनेक पदों की रचना मराठी और

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल.

२. इस घटना का वर्णन बहुत से आचार्यों ने किया है—यथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा में, और विनय मोहन शर्मा ने महाराष्ट्रीय सन्तों की हिन्दी को देन में.

रचनाओं में भी है. इनके कुछ पद "गुरु ग्रन्थ साहिब" में भी संकलित हैं. भारत की संत-परम्परा में इनका नाम सगुण और निर्गुण धाराओं के चौराहे पर आता है. वस्तुतः ये पहले सगुण थे [illegible] हिन्दू-मुसलमान ऐक्य, [illegible] जीवन में गुरु के महत्व [illegible] निर्गुणी मुक्ति युक्त बातों का प्रतिपादन अनुभव प्रदान किया और आगे चलकर "निर्गुण-धारा" का मार्ग प्रशस्त किया. हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में समानता की भावनाओं को बहु [illegible] भी नामदेव से ही आरम्भ हो गई थी, बाद में कबीर ने इसी का प्रतिपादन किया.¹

<u>सूफी-मत</u>

संत नामदेव से बहुत पहले भारतवर्ष में मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो चुके थे. मुसलमान [illegible] पठानों ने भारत में अपना राज्य जमाना शुरू किया, तो उनके साथ [illegible] मुसलमान-संत भी भारत में पैदा हुए, [illegible] चर्चा पहले की जा चुकी है. ग्यारहवीं शताब्दी में मुसलमान [illegible] की कुछ टोलियां रमते जोगियों की भांति सूफी-फकीरी भारत में आईं. इनमें मुख्यतः टोली चिश्तिया टोली [illegible] है; इन्होंने सर्वप्रथम भारत में अपने विचारों का प्रचार किया. इसके प्रणेता शेख-मुईनुद्दीन [illegible] [illegible] चिश्ती [illegible]. इन्हीं की [illegible] परम्परा में कुतुबुद्दीन [illegible], ([illegible]) [illegible] में आये और लाहौर ([illegible]) में [illegible] ([illegible] [illegible] बख्तियार काकी, [illegible] सूफी) फकीर भी [illegible] है; ये [illegible] से पहले [illegible] थे परन्तु प्रचार का वास्तविक क्रम कुतुबुद्दीन से ही आरम्भ होता है.) [illegible]. यहाँ से [illegible] में ये अजमेर चले गये, और यहाँ से अपने मत का प्रचार करते रहे. आज भी [illegible] ([illegible]) अजमेर में "[illegible]" नाम से प्रसिद्ध है, और हर वर्ष [illegible] यहाँ [illegible] मेला लगता है.

[illegible] सूफियों की ये विशेषताएँ देखी जायें, [illegible] प्राचीन भारत की [illegible] [illegible] में [illegible] वाले ~~[illegible]~~ निर्गुण-धारा पर [illegible], [illegible] "सूफी" शब्द और सूफियों [illegible] [illegible] बहुत ऐसा [illegible] नहीं [illegible]. सूफी शब्द की उत्पत्ति के विषय में बहुत से [illegible] हैं. भिन्न विद्वानों ने "सूफी" शब्द की भिन्न [illegible] [illegible] प्रस्तुत की है. [illegible] में [illegible] के [illegible] के चबूतरे ([illegible]) पर बैठ कर कुछ [illegible] [illegible] में [illegible] रहते थे. उन्हीं की परम्परा [illegible] "सुफा" पर बैठने के कारण सूफी [illegible]. [illegible] [illegible] मतानुसार [illegible] शब्द की उत्पत्ति "[illegible]" ([illegible]) शब्द से हुई.

---

१. हिन्दू [illegible], तुरक [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].
हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमान मसीत, नामे सोई सेविया जह देहुरा न मसीत.
— राम [illegible], नामदेव की वाणी, पृ [illegible].

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

૪. [illegible]

---

૧. [illegible]

૨. [illegible]

[illegible]

साफल

[illegible]

न्दुओं, आनन्दकंद श्रीकृष्ण की उपासना का रहस्य जनता को दिया. (पीछे इसका वर्णन हो चुका है) भक्तमाल की टीका में रामानन्द का मृत्यु-समय संवत् १५०५ बताया गया है और कबीर के जन्म-सम्बन्धी विवाद का निचोड़-बिन्दु संवत् १४५५ ठहरता है. अतः कबीर और रामानन्द का मिलाप बड़ा स्वाभाविक है. कबीर-पंथियों में प्रचलित यह पद

भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द.
प्रगट किया कबीर ने, सप्तदीप नवखण्ड.

सिद्ध करता है कि रामानुजी परम्परा से कबीर ने बहुत कुछ पाया. यह सब रामानन्द के ही संसर्ग से पाया, यह विवादास्पद विषय है. रामानन्द विष्णु के अवतार राम के भक्त थे, परन्तु कबीर अवतारवाद को स्वीकार ही नहीं करते. कबीर के द्वारा राम-नाम का जाप, या रामोपासना कहीं यह सिद्ध नहीं करती कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम, दशरथ-सुत राम के भक्त थे. ऐसे पद के अनुसार, जो कि कबीर का लिखा बताया जाता है, राम चार प्रकार के गिने गये हैं...

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट घट में बैठा.
एक राम का सकल पसारा, एक राम सब से न्यारा.

इनमें दशरथ-सुत राम को तो प्रथम का अधिकारी माना ही नहीं गया. बहुत सम्भव है कि कबीर सब से न्यारे राम के भक्त रहे हों. दूसरी बात जो कबीर और रामानन्द के शिष्यत्व और गुरुत्व में विवाद बन रही है, वह है रामानन्द का कट्टर ब्राह्मण होना. किन्तु इतिहास और भक्त-ग्रंथों में यह देखने को मिलता है कि रामानन्द बड़े स्वतन्त्र विचारों के महापुरुष थे और उनके शिष्यों में बहुत से निम्न-जाति के लोग थे; परन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं. और फिर कबीर तो मुसलमान घराने में पलने के कारण मुसलमान गिने जाते थे. रामानन्द ने चाहे नीची जाति के लोगों को दीक्षा दी भी होगी, तो वे हिन्दु थे, मुसलमान नहीं. फिर भी कबीर ने [illegible] में [illegible] गाये, रामानन्द [illegible] [illegible] बनी है. कबीर बचपन से ही ईश्वर-प्रेमी और [illegible] थे. वे साधु-संगत और कथोपदेश में बड़ा रस लेते थे. इसीसे समय समय पर, कभी वेदान्तियों और कभी नाथ-योगियों; कभी सूफियों और कभी वैष्णवों के सम्पर्क में आने के कारण उन्होंने बहुत कुछ सीखा था. वेदान्तियों से उसे जीव और ब्रह्म के ऐक्य का विचार, नाथयोगियों से [illegible], सूफियों से प्रेम और गुरु-भक्ति, और वैष्णवों से अहिंसा तथा प्रपत्ति के

विचार मिले थे. उसने निराकार ईश्वर सम्बन्धी भारतीय वेदान्त का पल्ला पकड़ा और उसकी भक्ति के लिये सूफियों का प्रेम-तत्व अपनाया.[1] हिन्दू-मुसलमानों की एकता की भाव भी उसे नाथ-पंथियों से मिल चुका था—जाति-पाँति और ऊँच-नीच की उपेक्षा सिद्धों की देन थी. इतनी सब विचार वीथियों से होता हुआ कबीर मत निर्गुण तक पहुँचा था और "पहुँचा हुआ" कहलाता था. इसी "पहुँचपन" के कारण वह सब प्रकार की ढोंग-ढकोसला त्याग कर लोगों को अशुद्ध-मार्ग पर जाते देख टोकता था, फटकारता था और सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देता था. यह क्रम पर्याप्त समय तक चलता रहा, परन्तु बाद में लोग उस पर निगुरा (गुरु-विहीन) होने का आक्षेप लगाने लगे. विचित्र बात थी, कबीर जैसे आत्म-गुरु पर निगुरा होने का आरोप. अस्तु, कबीर ने गुरु की खोज की. उस युग में कबीर को ऐसा कोई न दिखा, जो उस कोटि में गुरु-पद ग्रहण करे. रामानन्द का समाज में पर्याप्त मान था. सोचा कि उन्हें ही गुरु-स्थान की रिक्तता का पूरक बनाया जाये, परन्तु रामानन्द किसी मुसलमान को शिष्य बनाने को कभी तैयार न थे. कबीर-पंथियों में प्रचलित जन-श्रुति[2] के अनुसार कबीर एक बार पंच-गंगा की सीढ़ियों के उस घाट पर जा लेटे, जहाँ रामानन्द स्नान को प्रतिदिन आते थे. अँधेरे में ज्यों उनके पैर की ठोकर कबीर को लगी और वे अकस्मात् "राम, राम" कह उठे. बस फिर क्या था, कबीर ने घोषणा कर दी कि रामानन्द उनके गुरु हैं. रामानन्द से जब पूछा गया कि उन्होंने कबीर को दीक्षा कब दी तो उन्होंने इन्कार किया. भेंट होने पर कबीर द्वारा घाट वाली घटना याद दिलाने पर भी रामानन्द ने उसे शिष्य स्वीकार नहीं किया, परन्तु कबीर उस दिन से अपने को रामानन्द के शिष्य ही कहते रहे. यही उपरोक्त उक्ति का कारण भी है, जो प्रमाण रूप में उन विद्वानों द्वारा जुटाई जाती है, जो कबीर को रामानन्द का शिष्य स्वीकार करते हैं.

कुछ आचार्य शेख तकी को भी कबीर का गुरु मानते हैं, यह भी कुछ जँचता नहीं. कबीर की इस उक्ति— "घट घट है अविनाशी सुनहु तकी तुम शेख" से तो कबीर ही शेख तकी को उपदेश देते जान पड़ते हैं. अतः डॉ॰ रामकुमार वर्मा के इस कथन "कबीर शेख तकी के सत्संग में कभी रहे होंगे या उनका कुछ पारस्परिक व्यवहार होगा" से अंशतः सहमत हैं.[3]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६४.
२. कबीर-वचनावली—अ० हरिऔध, में भी ऐसा वर्णन उपलब्ध है.
३. कबीर का रहस्यवाद—रामकुमार वर्मा, पृ० २८९.

यह प्रश्न उठता है कि जब कबीर का अपना गुरु कोई नहीं था, तो वे गुरु विष-[illegible] नहीं [illegible] की भावना से गुरु को ईश्वर से भी बड़ा मानने तथा उनकी गुरु की सेवा करने और उनकी शरण में रहने का उपदेश देते का [illegible] [illegible] कर [illegible] [illegible] [illegible] है—परिस्थितियाँ व्यक्ति को बनाती हैं, व्यक्ति परिस्थितियों को नहीं. भारत की विकसित परिस्थितियों ने कबीर को एक ऐसे [illegible] में पैदा किया था, जो भक्ति की पुष्टि में ज्ञान—भक्ति [illegible] कर भगवान् एवं उसी ज्ञान—बाद को देते [illegible] है. परिस्थितियों ने कबीर ऐसे [illegible] द्वारा उस धर्म की पुनःस्थापना [illegible] [illegible] की थी. उसे गीता [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible], [illegible]—[illegible] मिला था, जो [illegible] [illegible] की प्राप्ति नहीं मिल सकता. किन्तु कहीं भी, या मुसलमान, सभी ईश्वर—प्रदत्त अपौरुषे-यता की सत्ता को स्वीकार करते हैं. गीता भी कहती है[1]—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत.
>
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्.

तथा [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] (पाप और अत्याचार) को मिटाने और सही मार्ग दिखाने [illegible] ईश्वर—रूप से किसी महान् संत, ईश्वरदूत, नबी, पैगम्बर अथवा [illegible] का आविर्भाव होता है[2] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को स्वीकार करता है कि जब [illegible] में [illegible] [illegible] को [illegible] है, तो [illegible] [illegible] [illegible] को उसे [illegible] [illegible] है. कबीर को कहीं ईश्वर—[illegible] [illegible] मिली थी, अतः गुरु के न होते हुए भी वे [illegible] [illegible] से [illegible] दूसरों से गुरु होने के [illegible] थे. उनके द्वारा [illegible] उनके गुरु की महत्ता स्थापित करना, वास्तव में [illegible] [illegible] है. वे दूसरों को [illegible] मार्ग दिखाना चाहते हैं, जिस पर चलता हुआ हर एक मनुष्य उस परम-[illegible] तक पहुँच [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] को [illegible] [illegible] सकता है. गुरु मार्ग-दर्शक है, वह अज्ञानान्धकार में भटकते जीव को प्रकाश दिखाता और सन्मार्ग पर [illegible] है. [illegible] जीव को वह [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] न हो, [illegible] [illegible] जीवन में [illegible] रहते हुए [illegible] कर [illegible] [illegible] है. गुरु की [illegible] [illegible] से [illegible] नहीं [illegible] जा [illegible], और [illegible] कारण से कबीर उसे गुरु [illegible] और उसकी [illegible] को ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं. कबीर न होते [illegible] [illegible] में कबीर [illegible]; परन्तु [illegible] [illegible], गुरु—[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] में मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक ७, अध्याय ४.
2. [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible], —श्री [illegible] [illegible].
3. [illegible] [illegible] [illegible] पाद—टिप्पणी में देखें.

अराजकता, बौद्धधर्म के प्रभाव में उत्पन्न सिद्धों तथा नाथ-पंथीय योगियों के पाखंडों का त्याग, और सर्वोपरि मुसलमानों का एकेश्वरवाद तथा वैष्णवों की अहिंसा-भावना, इन सबने मिल कर "निर्गुण-सन्त-परम्परा" के अनुकूल है. थोड़े में यह कहा जा सकता है कि कबीर द्वारा प्रवर्तित यह सन्त-परम्परा, जो साहित्य-क्षेत्र में निर्गुण-भक्ति-मार्ग कहलाई, युग की प्रतिकूल परिस्थितियों के फल स्वरूप उदित हुई थी. देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था विषम हो चुकी थी. समाज में जाति-भेद के कारण छल-कपट, द्वेष, कटुता और हिंसा का बोलबाला था. नीची जातियों पर अत्याचार हो रहे थे. मुसलमानों और हिन्दुओं में घृणा बढ़ रही थी. धर्म के नाम पर रक्त बहाया जा रहा था. हिन्दुओं ने वेदों के उपदेशों और मुसलमानों ने [illegible] की बातों को भुला दिया था. पण्डित और मुल्ला दोनों धर्म-ग्रन्थ [illegible] में पड़े थे और [illegible] की तरह [illegible] रहे थे. तरह तरह के पाखण्डों से समाज व्यथित हो गया था, चारों ओर स्वार्थ का बोलबाला था. राजनीति में क्रूरता और कुटिलता, अनीति और अव्यवस्था घर कर रही थी. मुसलमान शासक नहीं चाहते थे कि हिन्दू प्रजा भी मुसलमानों के [illegible] घोड़े पर चढ़े [illegible] के सामने [illegible], [illegible], [illegible] पर [illegible], [illegible] थे. हिन्दुओं का बहु-देववादी [illegible] पर मुसलमानों की [illegible] जा रही थी, [illegible] न था. देवालय [illegible] किये जाते, मूर्तियाँ तोड़ी जातीं, [illegible] और [illegible] की नींव रखी जाती. [illegible] और [illegible] ही रहा था. हिन्दू और मुसलमान दोनों [illegible] रोते थे. [illegible] थी. [illegible] का [illegible] करता था. कोई ऐसा [illegible] था, जो [illegible] करने वाले को टोक सके, रोक सके और [illegible] दिखा सके. [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] की परवाह न हो—ऐसी [illegible] में [illegible] "[illegible]" की [illegible] जनता को [illegible] कर सकता था, [illegible] बन कर [illegible] था. यह काम कबीर ने किया. निर्गुण-[illegible] के रूप में, [illegible] परम्परा के [illegible] को [illegible], [illegible] से [illegible] को [illegible], [illegible], अत्याचार तथा धार्मिक [illegible] के [illegible] की [illegible], [illegible] हुई. [illegible] ने [illegible] का [illegible] किया और एक नये सम्प्रदाय की नींव रखी, जो [illegible] था और [illegible] कहलाती. यही वह सम्प्रदाय है, [illegible] में [illegible]-परम्परा का [illegible] किया.

[illegible] में [illegible] की पृष्ठभूमि——

[illegible] के [illegible] शताब्दी [illegible], धार्मिक और राजनीतिक [illegible]
[illegible] है, [illegible] भारत
[illegible] था. और [illegible] पंजाब, [illegible], [illegible] मुसलमान
[illegible] हुआ था, [illegible] और [illegible] मुसलमान [illegible]
है [illegible] पड़ी, [illegible] में [illegible] और [illegible] भागे
[illegible]. [illegible] पंजाब में मुसलमानों [illegible] था, परन्तु
[illegible] और [illegible] में [illegible] मुसलमानों के [illegible] को
[illegible]. [illegible] है [illegible]
[illegible] पड़ता है, [illegible] पड़ता है, [illegible]
[illegible] नहीं. [illegible] पंजाब [illegible] हुए. पंजाब, मुसलमानों
के [illegible] गया. [illegible] थी, और
[illegible] में [illegible] रहे. [illegible] और [illegible]
के [illegible] दोनों के [illegible] हुए थे. [illegible] के द्वारा
[illegible] थीं, [illegible] पर [illegible] थी,
परन्तु [illegible] में [illegible] अपनी [illegible] में [illegible]. [illegible] में [illegible] की
[illegible] है [illegible] पंजाब में [illegible] रहा था. [illegible] की उपेक्षा
[illegible] रही थी. [illegible] नाथों [illegible] रहे
परन्तु [illegible] में [illegible] थे. [illegible]
[illegible], [illegible] मुसलमानों [illegible] थे. [illegible]
([illegible]) [illegible] की [illegible] और [illegible]
[illegible] हुआ [illegible] मुसलमान [illegible] के [illegible] को
[illegible]. हिन्दु [illegible] हुए [illegible] में [illegible] की
[illegible] में [illegible]. [illegible] और [illegible] के [illegible]
[illegible] और [illegible] में [illegible] था. मुसलमानों के [illegible]
[illegible] था, [illegible] थी, [illegible] था और [illegible]. हिन्दु [illegible] थी,
[illegible] थी, [illegible] और [illegible] था [illegible]. [illegible] के [illegible] में
मुसलमान [illegible] रहा था, और [illegible] मुसलमान [illegible] की
[illegible] रही थी. हिन्दुओं में [illegible] राज्य [illegible]

[illegible] था, वे [illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible]
की [illegible] में [illegible] करते थे. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] था, राजूप-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] की रक्षा करते [illegible] था. [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] रहे थे. [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] है! [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] हुए थे, वे [illegible] में [illegible] रहते थे. [illegible]
[illegible] पर [illegible] था. परन्तु [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] हुई, वे [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible]
[illegible] है और [illegible] रहा जाता है. [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे,
[illegible] [illegible] दोनों [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] "[illegible]" की [illegible] में [illegible] हुई. [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible], परन्तु [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१. [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible], [illegible], पृ XVIII .

—— [illegible].

की रक्षा वैदिक [illegible] हुआ, ब्राह्मणों [illegible] ने [illegible] की [illegible] [illegible] करने से इंकार किया. बुद्ध की स्पष्ट-वादी और [illegible] [illegible]. परन्तु [illegible] को [illegible] न पहुँचा, बुद्ध [illegible]. [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] की कुरीतियों, कुप्रथाओं, और कुरीतियों के विरोध में, [illegible] धर्म का [illegible] [illegible] हुआ बुद्ध प्रोटेस्टेंट धर्म पैदा हो गया था, ठीक [illegible] प्रकार ब्राह्मणों और पुरोहितों के [illegible], [illegible], दुर्नीति और [illegible] के विरुद्ध [illegible] ने [illegible] पूर्ण [illegible] (हिन्दू-प्रोटेस्टेंट) स्थापित कर दिया.

[illegible] आन्दोलन [illegible] बुद्ध, [illegible] और [illegible] था. [illegible] की [illegible] की भावना में है. [illegible] [illegible] का उदय हुआ और [illegible] [illegible]. विरोध का [illegible] कोई भी [illegible] [illegible] पंजाब-[illegible]-आन्दोलन ने किया. पंजाब [illegible] छोटे से [illegible] में [illegible] में अपना [illegible] है. [illegible] आन्दोलन को और [illegible], वह [illegible] [illegible] में [illegible] जीवित है, और [illegible] रहेगा.

<u>पंजाब का [illegible]</u>

[illegible] बुद्ध की [illegible] विद्वानों द्वारा [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] है. [illegible] पुस्तकें [illegible] [illegible] तक [illegible] है. [illegible] [illegible] माना है. [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] बहुत पहले [illegible] हुआ था, और [illegible] [illegible] था. [illegible] [illegible] पहुँचा [illegible] थे. परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था. [illegible].

(१) [illegible] है, [illegible]

अध्याय ११. श्लोक ८

(ख) [illegible] और राम [illegible], दूसरा [illegible]

(ग) [illegible] प्रगति [illegible], दुख राम [illegible]

[illegible] नहीं, [illegible]

[illegible] विद्यापति [illegible] है [illegible] पूर्ण है. [illegible] [illegible] नाटक [illegible] हैं. [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]. बाद में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] नहीं होता. [illegible] [illegible] होता. [illegible] ([illegible]) [illegible] है. [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हैं. [illegible] और [illegible]. [illegible] में [illegible] [illegible]. [illegible] में रहते थे, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] में [illegible] रहते थे, [illegible] और [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] थे. [illegible] में रहते [illegible] और [illegible] [illegible] को [illegible] करते थे. [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] करते हुए [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] है. [illegible] है, [illegible] [illegible] है, [illegible] व्यक्ति [illegible] और [illegible] नहीं होता,

---

[illegible] [illegible]—[illegible].

[illegible] [illegible]—[illegible] [illegible].

[illegible] और [illegible] विद्यापति ने [illegible] है—[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] और [illegible] गया है.

यह विशुद्ध-चिन्तन से व्यापक और गहन प्रेरणा से संचालित होता है। सिख पंथ में इस प्रकार का प्रेम भी सुन्दर स्पष्ट हो जाये, यही शिवदीप-ज्योति [illegible] बताइये. ईश्वर अपने आप को [illegible] रूप में ही स्पष्ट करता है। [illegible] की [illegible] को आकार मानने में कोई विवाद नहीं हो सकता। [illegible] यहीं [illegible] मालूम है, जो प्यार से कहते हैं—

मित्तरां, [illegible], [illegible] तेरी नै. [illegible] नूं प्यारा रहे......[illegible] कुत्तों की [illegible] से ही रंग में रंगा जाये.

[illegible] के [illegible] पर मुगलों और पठानों के [illegible] [illegible] के [illegible] का भी पूरा प्रभाव था, कबीर की ही तरह उन्होंने [illegible] को अपनाया है। [illegible] [illegible] में [illegible] "[illegible] [illegible] हूं नहीं कोय, हार [illegible] [illegible] के [illegible] को [illegible]. [illegible] गुरु नानक, जो [illegible] [illegible] होने के नाते [illegible] से [illegible] नहीं थे। [illegible] गुरु [illegible], जो [illegible] गुरु [illegible] रहते थे और [illegible] द्वारा [illegible] थे, [illegible] से [illegible] पर गई और [illegible] [illegible] बैठी। कबीर [illegible] गुरु [illegible] [illegible] पाया, जो [illegible] गुरु [illegible] ने; [illegible] गुरु नानक को [illegible] की [illegible] [illegible] की। [illegible], [illegible] गुरु [illegible] से [illegible] [illegible]; [illegible] [illegible] प्रकाश देने [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] पहुंचने का [illegible] किया, [illegible] [illegible] रहे, वह [illegible] हो गया, वह [illegible] बन गया।

पंजाब में [illegible] का [illegible] गुरुओं [illegible] के [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] गुरु-[illegible] द्वारा [illegible] गया। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] पर [illegible] थी। यहीं गुरु नानक [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। [illegible], [illegible] गुरु [illegible]-[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible], [illegible] के [illegible]-[illegible], [illegible]-[illegible] के [illegible], [illegible] के [illegible], [illegible] के [illegible], [illegible] के [illegible]-[illegible] और [illegible] [illegible] के [illegible]. और [illegible] [illegible] [illegible] पंजाब की [illegible].

[illegible]-[illegible] में [illegible]-[illegible]-[illegible] में [illegible] [illegible] [illegible]__[illegible]

[illegible]

मुसलमानों के आक्रमण सबसे पहले पंजाब पर हुये थे. जो भी आया था, पहले पंजाब में आया था. सूफियों का प्रचार [illegible] भी [illegible] पंजाब ही रहा था. उनके आने से पूर्व पंजाब में गोरखनाथ, पेशावर से [illegible] नदी तक फैले [illegible] थे, अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर चुके थे. जनता यौगिक क्रियाओं से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट हुई थी, परन्तु हठयोग की कड़ी साधना सुगमता की तरह न होकर अति दुष्कर [illegible] की कठोर थी. अतः जन-साधारण की पहुँच से बाहर की बात थी. अपने इष्ट-देवों की भक्ति का सहारा छोड़ योग की ओर आकर्षित होने वाले जन-समाज जोग साधने छोड़ पाते थे, न अपने पिछले धर्म के सिद्धांत में [illegible] बन रहे थे, कि देश में अचानक सूफियों का आगमन हुआ. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बरदान बन गई. [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]. सूफी फकीर प्रचारार्थ एक-पिशुवतो से आरम्भ हो [illegible] की ओर जाते थे, [illegible] को [illegible] रूप देते थे, [illegible] [illegible] वे धर्म-[illegible] [illegible] किसी को विवश नहीं करते थे. फिर क्या था, पंजाब की पीड़ित जनता [illegible] घावों पर प्रेम का अनुलेप [illegible] सूफियों की ओर झुकी. प्रेम की [illegible] में स्नान कर [illegible] पुनः अपनी अपने इष्टदेवों को प्रेम-[illegible] चढ़ाना आरम्भ किया. [illegible] पर लटकी मुसलमान-[illegible] की तलवार से होते हुये भी [illegible] जनता के मन [illegible] [illegible] [illegible]. पंजाबी [illegible] ने जनता के झुकाव का अनुभव करते हुये, [illegible] हिन्दू-मुसलमान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] "सूफी-प्रेम" का [illegible] किया. परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] नहीं, [illegible] "[illegible]-[illegible]" ही बना रहा. [illegible] में ईश्वर-प्रेम ही [illegible]-प्रेम है. परन्तु [illegible] प्राप्त सेवा और [illegible] से ही [illegible] है. "जो लोग ईश्वर से प्रेम करते हैं, वे सबसे प्रेम रखते हैं. [illegible] [illegible]-भाव के ईश्वर-प्रेम की कल्पना नहीं [illegible] [illegible] सकती."[१] अतः सूफियों के प्रेम-[illegible] के साथ साथ पंजाबी-[illegible] ने श्रद्धा को कुछ [illegible] [illegible] पूर्णतः भारतीय बना दिया.

---

१. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
   [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible].
   ([illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] पृ० ३४०.

—— २९.

सिक्ख-गुरु श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग को पारमार्थिक रूप से अपनाये हैं. जीवन की विपरीत और कटु परिस्थितियों से संघर्ष करते हुये इन महात्माओं ने प्रमाणित करके दिखाया है [illegible], न जीवन की वास्तविकता से भागने का किसी को उपदेश देते थे. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में कर्मयोगी बनने का उपदेश दिया था; सिक्खों के [illegible] भी कर्मयोगी थे. वे गृहस्थों की तरह ही अपने परिवारों [illegible] किसी भी कर्तव्य की उपेक्षा नहीं की थी. तपस्वियों की भांति वे वनों में भागे नहीं थे, अपने परिवार बीच रह, अपने ही अन्तर से परम-तत्त्व को प्राप्त किया था. इतना ही नहीं, जब परिस्थितियों ने करवट बदली पर उनके आत्म-बल की "परीक्षा" हुई तो वे स्वयं शस्त्र धारी युद्ध-क्षेत्र में उतर आये थे. "गुरुवाणी से नाम जपना बहुत सरल है, और उसका प्रचार करना [illegible] अपनी विचारधारा अनुसार [illegible] कहना भी सुगम है, परन्तु मर्द वे हैं, जो [illegible] में भी अपनी स्वच्छन्द विचार-धारा अपनाते और दूसरों को अपने पीछे चलने को बाधित कर देते हैं". सिक्ख-गुरु ऐसे ही कर्मयोगी थे, जिन्होंने एक ओर मुसलमानों द्वारा किये जाने वाले धार्मिक-अत्याचारों, और दूसरी ओर हिन्दुओं द्वारा [illegible] के बीचोंबीच अपना मार्ग बनाया था. [illegible] उन्होंने कोई [illegible] नहीं [illegible]. धर्म की रक्षा हेतु और अत्याचार के विरोध में यदि तलवार उठानी भी पड़ी, तो वह [illegible] नहीं, दु:खी निरीह जनता [illegible]. स्पष्ट ही वे [illegible] कर्मयोगी थे, [illegible] ने [illegible] और [illegible] के मार्ग पर अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, परन्तु [illegible] न की. वे [illegible] के पुजारी थे; [illegible] के मार्ग से विचलित नहीं [illegible], [illegible] हो या [illegible] (राजा या रंक) उनका शत्रु था और वे कर्मवीर परिस्थितियों के अनुकूल अपनी शत्रु से बदला चुकाना खूब जानते थे. गुरु हरगोविन्द और गुरु गोविन्द [illegible] प्रत्यक्ष प्रमाण हैं. चारों ओर से विरोधियों द्वारा घिरे होने पर भी गुरु अमरदास और गुरु [illegible] की [illegible] और [illegible] पर [illegible] होने जैसी [illegible] घटनाएं, [illegible] में अद्भुत और अपूर्व थी. पुनः सिक्खों [illegible] ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया था, वे [illegible] धर्म की ओर संकेत करते थे, [illegible] कर्मकाण्ड-मूर्तिपूजा-[illegible] [illegible] भी कोई [illegible] न होगी. [illegible] शूद्र-वर्ग का व्यक्ति [illegible] मिले हुये [illegible] था—[illegible] केवल हिन्दु या [illegible] ही परम-पद के अधिकारी न थे. उन्होंने [illegible] जीवन [illegible] उठाना था, जिसमें प्रत्येक [illegible]—[illegible] हो या वैरागी—[illegible] न था. [illegible], [illegible], [illegible]-[illegible]-[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] से उन्हें [illegible] कोई सहानुभूति न थी. वे जीवन में [illegible] न चाहते थे. [illegible], [illegible] को अपना कर [illegible] के [illegible] में [illegible], [illegible] को

मूर्ति-[illegible] का [illegible] और [illegible] था. [illegible] और [illegible] का [illegible] भी नहीं [illegible]. [illegible] देव की [illegible] और [illegible] रहे-रहते [illegible] नहीं है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] और [illegible] थी. [illegible] में [illegible] था [illegible]. [illegible] में [illegible] है. [illegible] नहीं, [illegible] हैं[1] [illegible] और [illegible] में [illegible], और [illegible] देता [illegible] है. [illegible] है कि [illegible] नहीं, [illegible] नहीं हैं. [illegible] है; और [illegible] होगा, [illegible] की [illegible].

[illegible] में [illegible] की [illegible] थी, [illegible] था. [illegible] देता है. [illegible] है [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]

माया-सिद्धान्त को भी पंजाबी सन्तों ने मिथ्या, बालू की धारा, पानी का बुदबुद या रात का सपना कह कर पुकारा है। जिस प्रकार रात का सपना सुप्तावस्था में ही सत्य होता है, जागने पर वह कुछ नहीं, ठीक वैसे ही संसार की सत्यता तब तक ही है, जबतक गुरु द्वारा ज्ञान-प्राप्ति नहीं होती. ज्ञान मिलने के साथ ही संसार का मिथ्यात्व स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है. प्रकट है, कि सिक्ख-गुरुओं ने अद्वैतवाद से बहुत कुछ अपनाया है. उनकी बड़ी महत्वपूर्ण भावना जीव और ब्रह्म के मिलन की है. वे उस मिलन की अवस्था को ईश्वर से परे ले न देखते हुये भी उसके इतने प्रशंसक होते हैं कि जीव की ब्रह्मप्राप्ति स्वीकार कर "सागर में बून्द के समाजाने" का सम्बन्ध कल्पना किये बिना नहीं रह पाते. वे गुरु को महत्व देते हैं, उसे ब्रह्म का परिचायक मानते हैं, नाम-स्मरण को माया का आवरण-भेदक और आत्म-समर्पण को निकटता पाने का साधन मानते हैं, परन्तु लक्ष्य ईश्वर और सन्तों का एक ही है. अतः दोनों के विचारों में अन्तर होते हुये भी साम्य की मात्रा पर्याप्त है इसे झुठलाया नहीं जा सकता.

ऊपर उन परिस्थितियों का चित्रण किया जा चुका है, जिनके प्रभाव स्वरूप पंजाबी जनता नाथों और कनफटे योगियों की चमत्कार-प्रदर्शन की ओर आकर्षित हो रही थी. परन्तु वहाँ भी मानसिक शांति न पा सकने के कारण निश्चित रूप से पंजाबी जनता ऐसे व्यक्तित्व की अपेक्षा रखती थी, जो उन्हें सुदृष्टि दे सकता. सिक्ख-गुरुओं ने जनता की यह आवश्यकता पूरी की. कबीर पहले से ही नाथों के विरोध में बहुत कुछ कह चुके थे. कुछ-काल में तुलसी भी "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग" का स्वर दे रहे थे. ऐसे में गुरु नानक नाथ-पंथ की आडम्बरयुक्त क्रियाओं का विरोध करते हुये पंजाबी जनता के लिये उद्धारक रूप में प्रकट हुये. उन्होंने जनता को सदाचार, निःस्वार्थ और आत्मज्ञान का मार्ग प्रदान किया. उन्हें उन लोगों से चिढ़ थी, जो गोदड़ी ओढ़े, जटा रखे, शरीर पर भस्म रमाये, कानों में मोटी मोटी मुद्रायें डाले, सिर मुंडाये, [illegible] सिंगी (तुरही) बजाते फिरते थे. गुरु नानक के अनुसार योग (ईश्वर से मिलन) की प्राप्ति बाहर श्मशान भूमि में ताड़ी लगा बैठने से नहीं होती,[3] उसके लिये चाहिये सत-

---

१. गुरु [illegible] सिख [illegible] पर बार.
   [illegible] बार न [illegible] कुटार. [illegible]—
   [illegible] ४२:२,२. सिरीराग म० ५. पृ० ७०८.
२. जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ. जोगु न मुंदी मूंडि मुडाईऐ,
   जोगु न सिंङी वाईऐ. अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोगु जुगति इव पाईऐ.
   ८:१, सूही म० १ पृ० ७३०.
३. अगले पृष्ठ पर आगामी पाद-टिप्पणी के साथ देखें.

—पाखण्ड और मायावी जाल से ऊपर उठने की प्रेरणा दी। गुरु नानक ~~[illegible]~~ तथा अन्य पंजाबी सन्तों द्वारा प्रवर्तित पंथ [illegible] लोगों में [illegible] हुई, और लोगों ने योग का आश्रय छोड़ कर्तव्य का भक्तिमार्ग अपना लिया. यह सब ठीक हुआ, परन्तु पंजाबी सन्त नाथपंथ का विरोध करते हुये भी उनकी शब्दावली अपनाये रखने का लोभ संवरण नहीं कर सके—अन्तर इतना रहा कि वे ही शब्द जो योगी लोग बाहरी क्रियाओं और पाखण्डों के लिये प्रयोग करते थे, पंजाबी सन्तों ने भीतरी क्रियाओं के लिये. आन्तरिक विकास और शब्द-श्रवण द्वारा अन्तर्मुख होने का जो स्वरूप पंजाबी सन्तों ने प्रस्तुत किया था, उसमें यौगिक शब्दावली को स्थान दिया गया. त्रिकुटी आन्तरिक-स्थान (वैदिक-[illegible]) का प्रतीक बनी, सोलह और [illegible], [illegible] और [illegible] का तथा [illegible] आत्मो-न्नति का प्रतीक बने. पंजाबी सन्तों ने योगी की परिभाषा ही बदल डाली. उनके लिये परब्रह्म का पहचानना, उसकी भक्ति में तल्लीन रहना, माया-मोह का त्याग, निर्मल-मन जीवन बिताना आदि सच्चे योगी के लक्षण थे. वे सब गृहस्थी थे. घर-बार छोड़ कर जंगलों-पहाड़ों में मारे मारे फिरना उन्हें स्वीकार न था. उनकी शिक्षा, शरीर दुखी घर में रहते हुये गुरु कृपा तथा सहायता से परम-आनन्द में लीन होने की [illegible] करती थी.[४] पंजाबी सन्तों की महानता और महत्व इसी में है, कि उन्होंने अपने अनुयायियों से न घर छुड़वाया, न परिवार ~~[illegible]~~ को छोड़ा, न कर्म-काण्ड में डाला— और फिर भी मह-

---

१. [illegible] अर [illegible] जोगी [illegible]. ८:२.
जोगु न [illegible] जोगु न [illegible].
जोगु न [illegible] जोगु न ~~[illegible]~~. *[illegible]*
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोगु जुगति इव पाईऐ. ८:३. सूही पृ०७३०.
२. [illegible] त्रिकुटी [illegible], [illegible] त्रिकुटी [illegible] रहै [illegible].
[illegible] जोगी [illegible] आई.
[illegible]. ३:८-२. रामकली [illegible] पृ०९०८. म०३.
३. [illegible] जोगी [illegible], [illegible].
[illegible] निरमलु [illegible] जोगु [illegible]. १:७. रामकली म०१. पृ० ९०८.
४. [illegible] जोगु न [illegible] जोगी [illegible].
[illegible] सतिगुर [illegible]. १:८.
रामकली [illegible] म०१. पृ० ९०९.

——३२.

मुक्ति का सहज मार्ग दिखाया, विश्वास दिलाया और मुक्ति प्रदान की. ऐसे योगी भी पैदा किये जो बिना बजाये ही अनाहद किंगुरी का ध्यान सुन सकते थे, जो संसार में लीन हो भी अलिप्त मुक्त बन गये थे¹

गुरुजी ने अपने अग्रणी कबीर द्वारा चली अनेक नयी बातों को पूर्ण रखा था. जाति-पाति के बन्धनों की उपेक्षा, हिन्दू-मुसलमानों की साम्प्रदायिक कुरीतियों का खण्डन, कर्म-काण्ड का विरोध, जातीय अनेकता का उन्मूलन आदि विषय पैगम्बरी ढंग से उन्होंने भी अपनाये थे; अन्तर केवल इतना था, कि जहाँ कबीर उद्धत अक्खड़पन और उग्रता रखते थे, वे उद्दण्डताओं के चक्कर में पड़ कर जनता को भ्रम में नहीं डालना चाहते थे. उन्हें जो कुछ कहना होता, विनम्रता पूर्वक कहते; विरोध करना होता तो मधुरता पूर्वक करते और किसी अवस्था में भी सुजनता तथा शिष्टता की सीमाओं को बनाये रखते. अभिप्राय यह कि गुरुजी ने उपर्युक्त विचारधारानुसार कबीर से बहुत कुछ अपनाया, तथापि निजत्व बनाये रखा.

सिक्ख-गुरुओं की अन्य साधना-विशेषतायें—

सिक्ख-गुरु, सब के सब ही परिवारों से गृहस्थ थे. उनका मत भी गृहस्थियों के लिये सरल था. वे घर-परिवार छोड़, जंगलों, पहाड़ों, गुफाओं आदि में ईश्वर की खोज के पक्षपाती न थे². उनका ईश्वर उनसे दूर नहीं था, केवल उसको देखने वाले आन्तरिक नेत्र की अपेक्षा थी। वह नेत्र गुरु की कृपा से खुल सकता था, जिसकी प्राप्ति का मार्ग था सदाचारपूर्ण-जीवन, गुरु-भक्ति, उसमें अटल-विश्वास, और आत्म-समर्पण. इन साधनों के लिये केवल घर-बार छोड़ना, परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों से भागना, धार्मिक आडम्बर रखना या भिक्षा-वृत्ति से जीवन बसर करना आदि की किंचित आवश्यकता न थी. गुरुओं के आदर्श-अनुसार जनता के अनुरूप; उन्होंने परिवार में रहते हुए, सन्तान और पत्नी की सन्तुष्टि के साथ साथ उस परम-तत्व को प्राप्त किया था, जिसको कि वैराग्यशील सिद्ध-योगी जंगलों में शरीर-यन्त्रणा सहन कर वर्षों तपस्या करते थे. उनमें वहीं विश्वास था, कर्म-काण्ड नहीं भक्ति थी, आडम्बर पाखण्ड नहीं आत्म-समर्पण था; फिर भला ईश्वर-कृपा से वंचित कैसे? अभिप्राय यह कि गुरु गृहस्थ के आदर्श, पुरुष के आदर्श थे,

---

१. किंगुरु बाजै किंगुरी बाजे जोगी जा किंगुरी बजाइ.
कहै नानक मुक्ति होवहि जोगी साचे रहहि समाइ. ५:२२. रामकली अष्टपदी
महला १. पृ०९०८.

२. जैसा कि पंजाबी कवि गुरुदास ने लिखा है—
सोई सेवी जात नहीं, पर सेवन वाली जात नहीं.

जो कि विपरीत परिस्थितियों में पड़े उद्भ्रान्त गृहस्थों के पथ-प्रदर्शक और सामान्य पंजाबियों को आध्यात्मिक तथ्य-सिद्धि के महत् साधन कहे जायें तो अनुचित न होगा. सिखमत ने न तो शरीर को दण्डित करने का पाठ पढ़ाया, न श्वास रोकने की क्रिया सिखाई; वहाँ न माला की आवश्यकता थी, न चौके, न पट रखे गये, न आहुतियाँ पड़ीं; तथापि उनके सहज उपासना के मार्ग में, जिसे सामान्य गृहस्थी सहर्ष अपना और निबाह सकता है, नाम-जाप द्वारा ईश्वरीय कृपा का आह्वान हुआ और गुरुद्वारों जैसे महान सहयोगी उपासना-पद्धति की नींव रखी गई. अतः यदि पंजाबी सिखमत को "पारिवारिक-धर्म" कहें तो अधिक उचित होगा.

गुरु-साहिबान, जैसा कि कहा जा चुका है, <u>किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय या मत-मतान्तर के प्रतिनिधि न थे.</u> "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना रखने वाले वे मानवमात्र तथा सर्व-सम्प्रदायों के सखा थे; उनके लिये देश-विशेष या साम्प्रदायिकता की सीमायें अपेक्षित न थीं. हिन्दु-मुसलमान, राजा-रंक, सबको समदृष्टि से देखने वाले इन संतों को सच्चे मानव-धर्म के प्रचारक कहा जा सकता है. गुरु नानक की सच्चे सौदे की घटना, मुसलमान साथियों के साथ मक्का में जाना आदि घटनायें उनकी मानवता का महनीय मूल्यांकन है. अपना बलिदान देकर भी न्याय की रक्षा करना, अन्यायों का विरोध तथा निरोध भी सहयोग देना, पंजाबी-जनता की विशाल-हृदयता और आत्मा की उच्चता के आनुकूल्य प्रमाण हैं. जहाँगीर की ओर से खुसरो के साथ अन्याय होने पर गुरु अर्जुनदेव द्वारा उसे सहयोग दिया जाना और उसके प्रतिस्वरूप अपने शरीर पर अनेक कष्ट सहना, तथापि उफ़ तक न करना और बदला लेने की भावना भी न रखना, पंजाबी-जनता की न्याय-प्रियता और मानव-प्रेम का प्रतीक है. निस्सन्देह पंजाबी-जनता ने अत्याचार का सामना करने हेतु शस्त्र भी धारण किया, परन्तु वह धारणा आत्मिकता की रक्षा पर ही आश्रित थी. विदेशियों द्वारा आक्रमण-युक्त होने वाले क्रूर-अत्याचारों का अन्त तथा साम्प्रदायिकता को पददलन से रोकने में सशक्त मानवीय-सेना को पदार्पण प्रदान करने जैसे योग बनाये गये थे—अतः न्याय की रक्षा करते रह गये. वर्तमान युग में उन द्वारा सैनिकता विकास-धर्म युद्ध-सिद्धान्तों की पुष्टि, मानवता-पथ से विचलित रहे या अविचलित; परन्तु वह पंजाबी-जनता की महानता की कसौटी नहीं. उनकी विशेषता तो इस बात में है कि उन्होंने संसार में निरोध की सहायतार्थ ऐसे वाले लोगों के ऐक्य-उत्पादित-धर्म का प्रयोग किया था. यद्यपि समय पर यह धर्म-न्याय, शौर्य और बलिदान के महत् स्वरूप में प्रकट भी हुआ, परन्तु स्वार्थ के लोगों के अंकुरित होते ही, मानवता वहाँ भी दम तोड़ने लगी. वर्तमान-युग जनता द्वारा रही मानवता की उन नींवों को हिला कर, पंजाब को आग के मुँह में

ऐसे तो यह उसकी कृतघ्नता है, महात्मा जी का दोष नहीं. आवश्यकता है गुरु नानक के पुनरागमन की.

सिक्ख-गुरुओं की शिक्षा जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद-भावों से सर्वथा मुक्त थी. आध्यात्मिकता के क्षेत्र में ब्राह्मण और शूद्र का क्या भेद? वहाँ तो जिस ने परमेश्वर को पहचाना, वही ब्राह्मण हो गया. सम्भवतः यही धारणा ब्राह्मण-समाज द्वारा पीड़ित जनता को सिक्खमत की ओर आकृष्ट करने में सहायक हुई थी. एक बड़ा लाभ इससे यह हुआ कि कथित समाज द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत निम्न कोटि की हिन्दु जाति, जो सामूहिक रूप से इस्लाम-धर्म अपनाये जा रही थी, अपनी मौलिक स्थिति की ओर पलटी. सिक्खों की इस सामयिक उदारता ने हिन्दुधर्म को सजीव बनाये रखा, अन्यथा बहुत सम्भव था कि नैतिक-प्रतिष्ठा का लोभी मानव एक ओर से घृणा और तिरस्कार की भावना छोड़कर अन्य [illegible] समाज (इस्लाम-समाज) का अंग बनने का दुस्साहस करता. प्रस्तुत मानसिक अनुभूति की ~~अनुभूति~~ उत्पत्ति किसी भी समाज की सम्पन्नता नष्ट करने में सार्थक हो सकती है. इस ओर गुरु अमरदास ने [illegible] भी किया था. भारतीय समाज को पहली बार, एक ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था, जो उसकी जानी हुई न थी. अब तक वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी न था. आचार-भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिये जाते थे और उन द्वारा किसी नई जाति की रचना कर ली जाती. इस प्रकार यद्यपि सैंकड़ों जातियाँ-उपजातियाँ बनती जा रही थीं, तथापि वर्णाश्रम-व्यवस्था किसी प्रकार से चलती जा रही थी. अब सामने एक सुसंगठित समाज (इस्लाम-समाज) था जो प्रत्येक ~~x~~ व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अपने अन्दर समान आसन देने की प्रतिज्ञा कर चुका था. एक बार कोई भी व्यक्ति उसके विशेष धर्म-मत को यदि स्वीकार करता तो इस्लाम सब भेद-भाव को भूल जाता था.[१] ऐसे में हिन्दु-धर्म की रक्षा और प्रस्तुत स्थिति के अतिक्रमण का जो मार्ग था, वही सिक्खों ने अपनाया. धार्मिक-विचारों से ऊँच-नीच के भेद-भाव को हटाने की आवश्यकता थी, वह पूर्ण हुई. पंजाब में ही नहीं, सर्वभारत में सम्भवतः सिक्खों से पूर्व ही जाति-भेद उच्छेद का बहुत बड़ा काम था. इसके उन्मूलन के लिये सन्तों के भाव धारणात्मक तर्क थे. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र, भगवान् ने सभी की उत्पत्ति एक ही प्रकार से की है. सभी नौ मास गर्भ-धारा में रहे हैं, वीर्य और शुक्र का योग सब के लिये बराबर रहा है; जब भगवान् ने उनकी उत्पत्ति में समानता अपनाई, हमें क्या अधिकार है कि हम उनमें भेद करें.[२] यह तो

---

१. जाति का गरबु न करीअहु कोई, ब्रहमु बिंदे सो ब्राहमणु होई. भैरउ म०३. पृ०११२८.
२. जाति का गरबु न कर मूरख गवारा. इस गरबु ते चलहि बहुतु विकारा. वही
३. मध्यकालीन धर्मसाधना—हजारी प्रसाद. ४. [illegible] पाँडे [illegible]

विश्व-सृष्टि के निमित्त कारण की बात है, उन्होंने पदार्थ कारण पर भी इसी कोण से दृष्टिपात किया है. जैसे कुम्हार वैसे कुम्हार गीली-मिट्टी (पदार्थ-कारण) से अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न बर्तन बनाता है, तो रूप-रंग जुदा होने पर भी मिट्टी में कोई अन्तर नहीं आता. इसी प्रकार मनुष्यों के शरीर भी सृष्टिकर्ता ने एक ही प्रकार के पाँच तत्वों से रचे हैं, फिर उनमें भेद क्यों देखा जाये?[१] वास्तव में सन्तों की विचारधारा ईश्वरेच्छा की ओर इंगित करती थी. वे मानते थे कि किसी का जन्म ऊँचे या नीचे घराने में उसके पूर्व-संचित कर्मों के कारण होता है. जिस तरह हम अपने घर में कर्मफल भोगते किसी रोगी का तिरस्कार नहीं करते, वैसे ही हमें कर्म-बद्ध ऊँचे-नीचे घरानों में जन्म लेने वाले अभागे मनुष्यों के तिरस्कार का कोई अधिकार नहीं. हो सके तो कर्म-चक्र में पड़े उन निस्सहाय लोगों को सच्चे गुरु का मार्ग बतायें, ताकि वे कर्मजाल से मुक्ति पा सकें और सदा के लिए जन्म-मरण से छूट जायें.[२] स्पष्ट ही यह भाव पंजाबी सन्तों में समाज-सुधार और अस्पृश्यता-निवारण का पुण्य-संकल्प प्रतिदर्शित करता है.

गुरु परम्परा में नामोपासना को अतीव महत्व दिया गया है. पारब्रह्म या अकालपुरख के नाम-जाप से ही मुक्ति की कल्पना की गई है. गुरु भेद पाकर गुरु से लिया 'सत्नामधारी' का नाम वह महान विभूति है, जो स्वयं ब्रह्म को, दूसरी ओर जीव को ओर, आकर्षित करती है. जीव अंशरूप है, ब्रह्म पूरन— जब एक दूसरे को पुकारता और दूसरा "अपने नाम की टेक" हेतु सहायतार्थ दौड़ पड़ता है, तो दोनों का मिलन स्वाभाविक है, यही मुक्ति है और यही ब्रह्मैक्य. परन्तु गुरु-प्रदत्त नामामृत के बिना मनुष्य की स्थिति "जहाज के पंछी" जैसी होती है, जो किनारा भी ढूंढ़े किनारा नहीं पा सकता और अन्ततः वहीं आ बैठता है. इसी प्रकार मानव भी संसार से किनारा भी ऊँचा उठने की कोशिश करे, गुरु द्वारा बताये सच्चे नाम की उपासना के अभाव में ब्रह्मैक्य के आनन्द को नहीं पा सकता.[३] लोग मन और आत्मा की शुद्धि हेतु तीर्थ-यात्रा करते हैं,

* १. चारे वरन आखै सभु कोई, ब्रह्म-बिन्दु ते सभु ओपति होई. भैरउ म० ३. पृ० ११२८.
२. माटी एक सगल संसारा, बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा.
पंच ततु मिलि देही का आकारा, घटि वधि को करै बिचारा. वही.
३. कहु नानक इहु जीउ करम बंधु होई. बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई. वही.
४. बिनु हरि नाम न सुखु होइ, गुर अंकुस [illegible] होइ. भैरउ म० १, पृ० ११६६.

यही बाहरी कर्माडम्बरों में फँस, जल-स्नान कर शरीर की मैल ही धोते रहते हो, मन की मैल क्योंकर छूटेगी ? मन की मलिनता और आत्मा का रोग छुड़ाना तो नाम स्नान से ही सम्भव है. घर बैठे नाम-जाप, हिन्दु धर्म के अठसठ तीर्थों के पुण्य-तुल्य है, जिसे अनेक गुणा गम्भीर और उत्तम किया है, इसी में बड़प्पन की उपलब्धि है.[1] इसीलिये पंजाबी सन्तों ने उपासक-जीवों को बराबर चेतावनी दी है, कि प्रिय-मिलन (ब्रह्म में लीनता) चाहते हो तो सच्चे नाम का ध्यान करो, उसी के गुण गाओ, उसी में रमे रहो; यही आत्म-शुद्धि का साधन है.[2] नाम अमृत के समान है, जपने वाला नाम-समान अमर हो जाता है; अर्थात् अमृत के गुणों को प्राप्त करता है. नाम ही एक मात्र ऐसी औषध है जो जीव को मृत्यु से बचाती है.[3] साधक तो नाम की खोज को स्वयं परमेश्वर-खोज मानता है. कहता भी है, 'सर्वश्रेष्ठ मानव-शरीर में आत्मा सदैव पावन है, क्योंकि उसमें ब्रह्म-नाम की सत्ता सदैव विद्यमान रहती है. इस सच्चे नाम से अपने ही शरीर के सब दुःख-रोगों का अन्त हो जाता है, और आत्मा देदीप्यमान हो उठती है.[4] यही वह औषध है जिससे दुर्मति का अन्त होगा और निर्वाण-पद की प्राप्ति होती है—इसी की शरण में मानव निर्भय रह सकता है.[5] सच तो यह है कि जगत में हरि नाम के जाप से ही जीवन की सफलता है, अन्यथा हमारे द्वारा किये जाने वाले तीर्थ-स्नान, मौन-दान, पाठ-भोजन या संसार-चक्र में पड़ना सब व्यर्थ है, कालकूट के समान है.[6] संसार के अंधेरे सद्गुण भी कष्ट-

---

१.नानक नामु महारसु हरि जपि अठसठ तीरथ नाता. १५.बारहमाहा तुखारी पृ०११०९.
२.प्राणी एको नामु धिआवहु, अपनी पति सेती घरि जावहु.१:१. मलार पृ० १२५४.
३.गुरमुखि पिआवहि रसु अमृतु पावहि तेई सुखी होही.
अहि निसि नामु जपहु रे प्राणी मैले हछे होही. १:२. मलार पृ०१२५८.
४.कंचन काइआ निरमल होई, जिसु महि नामु निरंजनु सोई.
दूख रोग सभि गइआ गवाई, नानक छूटसि साचै नाई. ७:४. मलार पृ०१२५५.
५.रे मन ओट लेहु हरि नामा,
जा कै सिमरनि दुरमति नासै, पावहि पद निरबाना. रामकली म०९: पृ० ९०२.
६.राम नाम बिनु बिरथे जगि जनमा,
बिखु खावै, बिखु बोली बोलै,
बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना. ८:१. भैरउ पृ० ११२६.

मात्र नाम की महिमा का पार नहीं पा सके. यह गुरु-प्रदत्त साधन, ईश्वरीय है; इसमें परम-तत्व की प्राप्ति, अनन्य-प्रेम की अखण्ड-धारा और अकाल पुरुष की अपार कृपा का सान्निध्य रहता है. सन्तमत में नाम को सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् स्वीकार किया गया है. यह सत्य है; संसार की विभूति-अनुभूतियाँ, रोग-शोक, हर्ष-आनन्द, मान-अपमान, सबका अन्त होता है, परन्तु नाम अनश्वर है, जो किसी युग, वर्ग या गुण की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता. वह अमर है और भक्त को अपने समान अमरता का वरदान देता है। नाम शिवम् है; विश्व में कल्याण का एकमात्र मार्ग, परम-ज्योति तक पहुँचने का एक मात्र सोपान और सर्वशक्तिमान ईश्वर का पवित्र रूप नाम ही तो है. नाम संसार-सागर से पार लगाने वाली अनुपम शक्ति है. नाम का अद्वितीय सौन्दर्य आँखों देखने की वस्तु नहीं, अन्तःकरण से अनुभव की चीज़ है. जिसने प्रस्तुत अनुभव को प्रत्यक्ष का भोग किया है, वह किसी भी मूल्य पर नाम की पृथकता सहन नहीं कर सकता. नाम ने जिस शिव-सुन्दर का रूप-दान किया है, उसकी अपूर्व शोभा लीला की संसार के माया-रंग-रूपताओं से तुलना हो क्या ? अभिप्राय यह कि नाम नाम है, उसकी महानता का बखान पंजाबी सन्तों ने किया है, उसे प्रतिष्ठा दी है, उसमें ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, वही प्रभुत्व की उपलब्धि है.

उपर्युक्त नाम-महत्ता का पर्यालोचन कर यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्रस्तुत नाम, जिसे साधारणतः सभी नहीं समझते, किसकी अनुकम्पा से प्राप्त होता है? वह कौन है, जो नाम रहस्य समझा कर जीव हेतु ब्रह्म-पथ निर्धारित करता है? ब्रह्म-पथ गमन की प्रेरणा, मार्ग की कठिनाइयों और बाधाओं के हरण में सहायता तथा लक्ष्य-सिद्धि हेतु साधना की उपयोगिता, किससे प्राप्त होती है? वह कौन शक्ति है जो टूटे सम्बन्ध (जीव और ब्रह्म की पृथकता) पुनर्स्थापित करती है? वह कौन है, जो भेड़ों में पलने वाले शेर (भूले हुए जीव) को उसकी वास्तविकता का ज्ञान करवाता है? कौन है, जो अज्ञान या माया के आवरण को हटाकर जीव को ब्रह्म बनाता है? सबका एक ही उत्तर है—गुरु. पंजाबी सन्तों ने महानतम कृतित्व गुरु की आराधना को बहुत ऊँचा स्थान दिया है. सच तो यह है कि उनके मतानुसार जीवित गुरु ब्रह्म का पर्याय है, उसका महत्व स्वभावतः ही अधिक होना चाहिये.

गुरु वास्तव में स्वयं ईश्वर रूप होता है. उसमें और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं; वह ईश्वर का ही मानवीय रूप होता है जो जीवों को चेतना और ज्ञान देने के लिये स्वयं ब्रह्म द्वारा नियुक्त किया जाता है. जैसे ट्रम्प ने लिखा है, " ईश्वर प्राप्ति का कोई सुगम और छोटा मार्ग नहीं. उसको (ईश्वर को) केवल गुरु द्वारा निर्धारित साधनों से सम्भव है, और वे हैं अपने पूर्व-गुरुओं के पद-चिह्नों पर चलकर किसी अन्य को भी दीक्षित करना.

~~[illegible]~~ वास्तव में [illegible] एक ऐसी छुतही वस्तु है, जो किसी भगत भा पर [illegible] के प्रथम मिलन में ही हृदय में अंकुरित होती है और धीरे धीरे ज्वाला-रूप धारण करके मन की मलिनता का होम कर अन्तःकरण के स्वर्ण-मन्दिर को [illegible] का [illegible] बनती है. निष्कलुष-निर्मल हृदय में स्वयं ईश्वर अपने 'नाम' रूप में निवास करता है. सच तो यह है कि जहाँ गुरु है, वहाँ प्रभु पहले से विद्यमान होता— भक्त और ईश्वर का योग इतना निकट का है कि यह भी नहीं कहा जा सकता कि किस समय कौनसा सक्रिय है, वे दोनों जुदा हैं या भाव [illegible] में एक.[1] सिक्ख-गुरुओं ने भी गुरु को परमात्मा के रूप में ही देखा था. वे मानते थे कि दुनिया में यदि किसी ने ईश्वर पाया, तो गुरु-वाणी से उतरे; गुरु-कृपा हुई तो [illegible] मिले; अतः गुरु करता, भरता, परमेश्वर और अचिन्त्य है. गुरु प्रेम का स्रोत है, उसकी [illegible] में परमानन्द की प्राप्ति निहित है, अतः उसकी सेवा से लोक में सुख और परलोक में [illegible] होती है.[2] गुरु नानक ने तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि [illegible] बार विचारने पर भी वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संसार में [illegible] और प्रेम-[illegible]

1. There is no short-cut to God, no easy way. He is found through His own appointed means, the contact with saintly devotee, to be gained only as a reward of past good actions. Devotion is infactious; it arises in the heart even at the first such contact, it becomes a flame which burns away the dross and purifies the golden nugget there. In the pure heart God Himself comes to dwell, in the manifest of His Name; it is true to say that where the Guru is, there already is the Lord--so close is the union between the saint and God, we cannot say which is acting at any moment, they are as it were the same.

Duncan Greenless in The Gospal of Guru Granth Sahib p.91.

१. जिन सिखा जो गुर ते भाणिआ, गुर किरपा ते मुकत भए भाणिआ.
गुर करता, गुर करणै जोगु, गुर परमेसरु है भी होगु.
कहु नानक प्रभि इहै जनाई, बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई. [illegible]. गोंड [illegible]. पृ० [illegible].
२. बिनु गुर प्रेमु न पाईऐ, सबदि मिलै रंगु होइ. [illegible].
गुर सेवा सुखु पाईऐ, हरि वरु सहजि सीगारि. सिरी [illegible] पृ० [illegible].

51

मिल कर भी आत्म-तिमिर को नाश नहीं कर सकते. गुरु एक ज्योति-पुंज है जो न केवल ज्ञान का प्रकाश ही फैलाता है प्रत्युत उसकी ज्योति में पुलक की सत्ता विद्यमान रहती है. गुरु स्वयं ईश्वर का स्वरूप है, उसमें ~~[illegible]~~ ध्यान करने से बराबर प्रतीति का कोई कोई नहीं. उसका मन चिर-निर्मल होता है, जो अनाचार और दुर्नीति की मानसिकता को [illegible] में ढलती है. उसका नाम ही मनुष्य को पशु से देवता बना देता है! सिख ही पंजाबी सन्तों की वाणी में गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है. क्योंकि गुरु-कृपा से ब्रह्मानुभूति है. जो कृपालु है माया-मोह-ग्रस्त मनुष्य का उद्धार करता है और उसे आत्मिक सत्य-पुरुष से मिला देता है, वह परम-पूज्य ही नहीं; अत्यन्त अनुकरणीय है.

पंजाबी सन्तों की सामान्य विशेषताओं में "हुक्म" के अनुसार काम करने की भावना सर्वोच्च विशेषता रूप में मिलती है. "हुक्म" शब्द का शाब्दिक अर्थ है "आज्ञा". सन्त-वाणी में इस शब्द का पारिभाषिक-रूप "ईश्वरीय-नियम या ईश्वरेच्छा" है. इन महात्माओं ने ईश्वरेच्छा को सर्वोपरि स्वीकार किया था, यही उनका आदर्श, उपदेश और प्रचार था. अपनी ओर से जीव द्वारा सदाचारी जीवन व्यतीत करना, सद्गुणों का विकास, और गुरु-कृपा से नाम-रहस्य की जानकारी प्राप्त कर उसका अनुपालन करना आवश्यक है, प्रकट में इस की चर्चा नहीं की जा सकती. उसका सामर्थ्य परम-तत्त्व से [illegible] जाता है. जीव को मिलने वाले दुःख, रोग, शोक और हर्ष, विषाद इत्यादि उसी जीवन की इच्छा पर निर्भर है. पंजाबी सन्तों ने गुरु-उपदेशित [illegible] नाम जपना या गुरु जाने पर प्रभु-[illegible] से विमुख होना या उसके कृपापूर्ण आशीर्वादों का लाभ न उठा लेने का उद्देश्य विरोध किया है. नाम-जप, नाम-जाप [illegible] है, जो आत्मोत्कर्ष-प्रतीति प्रदान करता है और क्रमशः मुक्ति प्रदान देता है. अतः गुरु-प्रदर्शित नाम का जाप करो, ईश्वरेच्छा को शिरोधार्य कर अनुगत होना अनिवार्य है; अन्यथा स्वयं विपदा आ पड़ेगा और माया का आवरण अपने आप विकीर्ण होगा! पंजाब के इन सन्तों ने परम-तत्त्व की परिभाषा इस

---

१. बिनु गुर सबदु न छूटीऐ देखहु वीचारा.
   जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा. १८:२. [illegible] पृ० १२९.
२. गुर समानि तीरथु नहीं कोइ, सरु संतोखु तासु गुरु होइ.
   गुरु दरीआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै.
   सतिगुरु पाइऐ पूरा नावणु पसू परेतहु देव करै. ४:७-८. प्रभाती पृ० १३२८.
३. किव सचिआरा होईऐ, किव कूड़ै तुटै पालि.
   हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि. जपुजी-१. पृ० १.

प्रकार की है:—" १ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु, अकाल मूरति, अजूनी सैभं गुर प्रसादि". अर्थात् वह ओंकार एक है (अद्वितीय है), उसका नाम सत्य है, वह सृष्टि का रचयिता है, उसे किसी का भय या किसी से वैर नहीं, वह तीनों कालों का निर्बन्ध स्वरूप है, जन्म-मरण से परे है, स्वयंभूता है और गुरु-कृपा से उपलब्ध होता है. इस परिभाषा से सिद्ध है कि पंजाबी महात्माओं का अकाल-पुरुष सत्य-स्वरूप होने के साथ साथ, सृष्टा होने के कारण हम से सम्बद्ध भी है. आचार्य चतुर्वेदी के मतानुसार "ध्यानपूर्वक देखने पर स्पष्ट होता है कि यहाँ "करना","करने वाला", "रहना","रहने वाला"अथवा "होने वाला" और "होना" भी आपस में भिन्न नहीं है. सबके सब, वस्तु तो क्या क्रिया, एक ही में सम्मिलित व ओत-प्रोत है और कोई भी अंश किसी भी रूप में उस एकमात्र सत्य से अलग नहीं. हुकम, हुकम देने वाला तथा जिसे हुकम दिया जा रहा है, ये सब एक हैं! ईश्वर के अद्वैत के प्रभाव में समानान्तर चलने वाला पंजाबी संतों का सर्वात्मवाद इसी ओर संकेत करता है.

प्रस्तुत सन्तों ने उपर्युक्त महिमामय हुकम का यशोगान किया है. संसार की प्रत्येक वस्तु, क्रिया और फल सब हुकम के बन्धे हैं, उससे बाहर कुछ नहीं. इस विचार को अपनाने वाला हुकम पर आश्रित होता है, तो स्वभावतः ही उसके अहंभाव का अन्त हो जाता है.[2] गुरुओं ने "तेरा भाणा मीठा लागै" इस आदर्श को अपने जीवन में साक्षात्कार करके दिखाया है. जहाँगीर के द्वारा गुरु अर्जुन को नरक-यातना से भी अधिक कष्ट दिये जाने पर उनकी वाणी "तेरा कीया मीठा लागै,नाम पदारथ नानक मांगै" उच्चार कर रही थी. औरंगजेब ने जब गुरु तेग़ बहादुर को मृत्यु या धर्म-परिवर्तन में विकल्प दिया तो हुकम के बन्धे वे पथ-विचलित नहीं हुए, सिर कटवा लेना स्वीकार कर लिया. गुरु गोविन्द के बच्चों की मृत्यु का समाचार, उन्हें एक क्षण भी पश्चाताप में नहीं डाल सका. हुकम के सम्मुख शीश झुका वे अपने कर्तव्य-मार्ग पर अटल रहे. कारण स्पष्ट है, मनुष्य के किये कुछ होता नहीं, जो कुछ अकाल-पुरुष को भाता है, वही होता है![3] तो फिर क्यों न अपनी जीवन-तरी को उसी के हवाले कर निश्चिन्त हुआ जाये, तथा "रज़ा-बर-रज़ा" का आधार लिये उसी में समाया जाये.

---

१. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा——परशुराम चतुर्वेदी. पृ०४४४.

२. हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ.
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ. जपुजी २. पृ०१.

३. जो तिसु भावै सो थीसी, नानक किआ मानुख. ११:७. आसा अष्टपदी पृ० ४१७.
तुलना कीजिये— لاکھ کرے انساں تو کیا ہوتا ہے - وہی ہوتا ہے جو منظور خدا ہوتا ہے

<u>सबकी दार्शनिक-पृष्ठभूमि में साम्य—</u>

उपरिवर्णित भक्ति-परम्परा तथा कृष्णभक्ति के उदय और विकास का विश्लेषणा-त्मक रूप, समय समय पर चल निकलने वाले सम्प्रदायों, विचारधाराओं और रीतियों के आविर्भाव-सम्बन्धों में साम्यता, विविध का अत्यधिक प्रभाव है. वेद, शास्त्र, पुराण, गीता, सबका लक्ष्य ईश्वर-प्रेम प्रतीत था. साधन सबके निजी थे—वेदों ने ज्ञान को यज्ञ विधान रूप में, शास्त्रों ने यौगिक-क्रियाओं में, पुराणों ने भक्ति और गीता ने ज्ञान और कर्म में खोजने का सदुपयोग किया. जो मार्ग (साधन) जिसे भाया, वह उसी पर चल दिया, चाहे बना या योगी, तपस्वी हुआ या ज्ञानी, अन्तिम-लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति ही था जिसमें अपनी अपनी ढंग से निजी सीमाओं में कभी अनुयायियों ने गौरवपूर्ण स्थान को पाने के उपक्रम किये, पर पाया. अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों की उलझनों में अनेक बार साधन बदलने भी पड़े; मुनियों ने तपे-प्रेम को तथा सन्तों ने नाम-जाप को और गुरु-रूप को प्रत्यक्ष में ईश्वर का सोपान माना. परन्तु लक्ष्य नहीं बदला, अडिग वही रहा. जो वैदिक-युग की जनता ने चाहा, वही पराकाष्ठा काल की प्रजा ने माँगा; जो अद्वैत ने सिखाया, वही मुनियों ने पढ़ाया और जो कबीर ने गाया, वही पंथावल-म्बियों ने भी अपनाया. प्रश्न उठता है, साधनों, विचारों और रीतियों में साम्यता न होते हुवे भी "भक्ति का एक भावना" के "भक्ति-पथ" में सभी बराबर की आहुति डालने को क्यों इतने अधीर रहे ? उत्तर सरल और स्पष्ट है. आदियुग से ही मानव ने अपने अनुभवों द्वारा सृष्टि-विकास के क्रम में यह समझ लिया था कि उसकी जर्दी प्रकृति को सुव्यवस्थित रखने में जो "शक्ति" कार्यरत है, वह भी उसी का अंग रूप है. उसे पृथक करके निर्बल कर दिया गया है, अन्यथा वह अपने पूर्णत्व-तत्व का अधिकारी था. मानव ने यह भी अनुभव किया कि यदि किसी प्रकार आज भी वह उस तुष्टि की दिशा में परिवर्तित कर ले तो पुनः वह अद्भुत-शक्ति उसके हाथ लग सकती है. स्वभावतः सोत के पुजारी और भक्ति की ज्योति जगाने को ~~अवसर~~ इच्छा रखने वाले मनुष्य ने उसी समय से आशा अविरत में मिल जाने, स्वयं वही रूप धारण करने अतुल शक्ति का स्वामी ~~बनने~~ बनने का निश्चय कर लिया. प्रस्तुत अभिलाषा और निश्चय सबसे परम्परागत रूप में चला आ रहा है, क्योंकि परिस्थि-तियों के अनुसार अनेक साधनों की खोज होती भी रही है; विशेषकर ~~अन्य~~ दसवीं शताब्दी के पश्चात् होने वाले महात्माओं ने तो शास्त्रोपचार का त्याग कर, निजी ~~अनुभ~~ अनुभवों के आधार पर पूर्ण "प्रेम" प्रकट की थी; सम्भवतः यही कारण है कि उनके नामों के साथ शास्त्रीय पाण्डित्य के विशेषण न जोड़ कर, उन्हें "पहुँचे हुवे सन्त" कह कर पुकारा

गया है. यह "मधुरा" उन्होंने अनन्य-प्रेम, आत्म-भक्ति तथा निवेदन-भाव के प्रति आत्म-समर्पण द्वारा प्राप्त की थी, यही वह पथ था जिसका अनुसरण चैतन्यदेव ने और तदनन्तर जायसी,तुलसी, मीराबाई आदि कवि पुरुषों ने किया था. लगभग पिछले ५००० वर्षों से मानवता का लक्ष्य कृष्ण-भक्ति ही रहा है. मध्यकालीन साधनाओं की भेंट करते हुए "भक्ति-आंदोलन" के उपरान्त आचार्य,स्वामी क्षितिमोहन सेन ने लिखा है,"भारतवर्ष के सभी प्रेम-मार्गी साधकों ने,चाहे वे भारत के अलग-अलग हों, उनके भी पूर्ववर्ती संप्रदाय आदि सम्प्रदाय के साधक हों,उत्तर-भारत के हों या दक्षिण भारत प्रदेशों के सूफी या सूफी भावापन्न साधक हों, एक विशेष प्रकार की भेंट चुकाई है. यह भेंट चुकाई है—प्रेम की साधना. इस प्रेम-साधना के मार्ग में तीन बातों का रहना परमावश्यक है. समता, स्वाधीनता और प्रेमात्मकता. समता का तात्पर्य यह है कि प्रेम की साधना में प्रेमिक और प्रेमास्पद में कोई भेद-भाव, ऊंच-नीच की भावना नहीं रहती. स्वाधीनता के बिना काम नहीं चलता. जुल्म या जोर-जबरदस्ती यहां नहीं चल सकती. किसी कचहरी अदालत की डिग्री की बाध्यता प्रेम नहीं मान सकता.प्रेमात्मकता का मतलब है,प्रेम ही प्रेम का अंतिम लक्ष्य है.[1] प्रेम की भारत मूल उत्पत्ति काल से क्रमशः तप,यज्ञ, योग, धर्म, ज्ञान और भाव से होता हुआ पूर्णता में पहुंचा था. वही पूर्णता, जिसमें ध्यान जाता है, जागा नहीं, फलस्वरूप में "प्रेम" बनी. लेकिन तप से प्रेम तक पहुंचने के लम्बे युग में सर्व-मार्गी साधकों एक ही लक्ष्य तक बढ़ते रहे,यह तथ्य है. और लक्ष्य था परम-सत्य या परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार, उसी में लीन होने की कामना.

....

१."भारतीय-संस्कृति" का "मध्ययुगीन-साहित्य-परिवेश"—— आचार्य क्षितिमोहन सेन.

२

गुरु और पुस्तक

[illegible]

(तुलसी)

(द्वितीय अध्याय)

गुरु और गुरुमुख

गुरु...

गुरु शब्द भारत की प्राचीन थाती है, परन्तु सिक्ख-महात्माओं ने गुरु को पुरातन-युगीन शास्त्रीय अर्थों से भिन्न स्वरूप में अपनाया. उनके मतानुसार गुरु केवल अध्यापक या मार्ग-प्रदर्शक ही नहीं होता, वह तो अकाल-पुरुष के उस अंश का निमित्त है, जिसकी कल्पना पौराणिक विचार-पद्धति में "अवतार-धारणा" की परिभाषा में की है। वह देह-धारी दिखता हुआ भी देह नहीं होता, शब्द होता है. स्वयं अकाल-पुरुष अपनी जोति को रूपायित करके शब्द की स्थापना करता है और उसी शब्द का रहस्योद्घाटन वह पूरी जनता के सम्मुख कर, उसे शान्ति पहुँचाता है. सिक्ख-गुरुओं में इस तत्त्व को पुनरावृत्त उन सबको एक नानक रूप स्वीकार करने में भी स्पष्ट है. शब्द परम-तत्त्व का प्रतीक है. गुरु नानक में वह स्थापित किया गया था; और वही तत्त्व-शब्द एक के बाद दूसरे नौ गुरुओं की आत्मा का प्रकाश बना. [illegible] में वे सब अपने को नानक कहते और एक ही शब्द का रूप लिये उसका उद्घाटन करते रहे. अभिप्राय यह कि प्रस्तुत विचार-धारा के अनुसार गुरु का वास्तविक रूप शब्द-रूप है और वह स्वयं ~~पुरुष~~ अकाल-पुरुष का तत्त्व है।

---

१. भगवद्गीता में... यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्. ४।७.

रामचरितमानस में.. जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी.
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा.

इसी स्वरूप को भाई गुरदास अपनी पहली वार में भी प्रस्तुत करते हैं...
[illegible] बिच, चार वरण आश्रम उपाये.
दस नाम संन्यासियाँ, जोगी बारह पंथ चलाये.

* * * * * *

सुनी पुकार दातार प्रभु, गुरु नानक जग माहि पठाया.
चरन धोइ रहिरास कर चरणामृत सिक्खों पिलाया.

अथवा

[illegible] गुरु [illegible] है [illegible] पार उतारा,
सतिगुरु बाझ न बुझीऐ [illegible] न गुर अवतारा.

(१ [illegible])

(२ [illegible])

२. सतिगुरु [illegible]

३. [illegible] स्वीकार से कहना है...

The word was made flesh and dwelt among us,

full of grace and truth.

आवश्यकता...

संसार में साधारण से साधारण कार्य के सीखने के लिये भी हमें गुरु की शरण लेनी पड़ती है. जैसे कृषिकला की सीख लेनी पड़ती है, जो उस विषय का पूर्ण-पारंगत हो. ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक-पथ में कुशल-शान्ति के लिये किसी परम-पुरुष की अपेक्षा अनिवार्य ही है. जिस तरह प्रकाश बिना अन्धकार दूर नहीं होता, ज्ञानी बिना ज्ञान-प्राप्ति केवल कल्पना है, नाविक बिना नैया का पार उतरना अपवाद तथा शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षा कोरी कल्पना होगी; वैसे ही गुरु रूपी प्रकाश के बिना अज्ञान रूपी अन्धकार दूर नहीं हो सकता, गुरु-ज्ञान के बगैर रहस्य प्रश्न ही बने रह जायेंगे, जीवन-तरंग भवसागर के विकट थपेड़ों में ही डगमगायेगी और [illegible] का आडम्बर "नाची [illegible] मैं [illegible]" [illegible] उक्ति-चित्र होगा. कहा भी है...

> गुरु बिनु किनी न पाइयो, कैसी कहै सहाय.
> साँच दिखावे पारखो साधी [illegible] कुटाय.. (आसा [illegible])

गुरु की आवश्यकता के साथ ही यहाँ कुछेक प्रश्न और उठ जाते हैं. १.गुरु किस बाबे तो उसे क्या पूछें या सीखें? २. कैसे मिलेगा? ३. किसे मिलेगा? उत्तर स्पष्ट है. जिस जिज्ञासा-प्राप्ति की शान्ति हेतु मनुष्य ने गुरु की आवश्यकता अनुभव की थी, उन्हीं उलझनों का हल गुरु से प्राप्त किया जायेगा. संसार-पथ में युग-युग के भटकाव-पथ से [illegible] कुशलवत प्रबुद्ध पथ पर अनुमुख न पायेगा तो और क्या अपेक्षा रख सकता है? आध्यात्मिक वैज्ञानिक-वास्तविक तर्क-युक्ति में [illegible] सौदर्य अनुभव अपनायेगा, तो...

> गुरु परम योगी सम विज्ञानी, कुल [illegible] सिद्ध भवानी,
> कबहु [illegible] अति बिनवै, कबहु मौन समाना.
> [illegible] कबहु [illegible] मोहि भारतम [illegible], [illegible] से [illegible] छूटे.
> नाद परम गुरु सेतु करम गुरु, [illegible] बन्धन से छूटे. (आदि ग्रंथ, आसा, कबीरजी)

गुरु-मिलन अनिवार्य होता ? [illegible] करते हैं. समय समय पर अनेक महान आत्मायें विश्व में अवतरित होती रहती हैं. पृथ्वी पर आने पर भी उनका सम्बन्ध ईश्वर से अटूट बना रहता है. ये आत्मायें प्रायः ईश्वर की प्रतिनिधि रूप में आती हैं. वे [illegible] विश्व के जिज्ञासु [illegible] समाज में [illegible] हुये भी, उससे [illegible] रह कर अपने प्रभु की याद में तल्लीन रहा करते हैं. [illegible] बात है, जो स्वयं परमात्मा में लीन होता, वही तो संसार-सागर में डूबने वालों को [illegible] देकर अपने [illegible] का मार्ग [illegible]. जैसे कुशल [illegible] ही [illegible] है. [illegible] [illegible] होते हैं और [illegible] होती है, वह पा लेता है. [illegible], [illegible], [illegible] गुरु की प्राप्ति की [illegible] होती है. कबीरजी के शब्दों में [illegible] पा [illegible], [illegible] मानो [illegible] यही सीख की [illegible]

[का]यम है. जो झुकेगा नहीं, [illegible] में उतरेगा नहीं, [illegible] है : वह तो किनारे पर बैठा, जीवन की [illegible] मिट्टी में मिला कर रख जायेगा. "मैं बावरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ", [illegible]

[illegible]

[illegible] है, [illegible]

[illegible]

[illegible] हैं.[3]

[illegible] ....

[illegible] ([illegible])

[illegible]

[illegible] Ask and it shall be given you; seek and ye shall find; knock and it shall be opened unto you. (Sermon on the Mount.)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] चक्र [illegible] यथार्थता [illegible]

---

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]
4. [illegible]

गुरु [illegible] [illegible] कि उसी को [illegible] देता है, [illegible] उसकी विशेष कृपा होती है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अनुभव [illegible] [illegible] है, यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] (नाम-स्मरण) निर्वाण [illegible] [illegible] होता है. [illegible] [illegible] यह है कि [illegible] [illegible] में गुरु के [illegible] और कोई [illegible] [illegible] नहीं. उसी की प्रेरणा और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और रात-दिन उसी में [illegible] रहकर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. गुरु [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] चरणों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] है. गुरु [illegible] जल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाती है. वास्तव में [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] पहुँचाने में [illegible] होगा. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होने वाले [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] चरणों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होगी— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है.

[illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होता. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible]—

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible]. ([illegible])

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]), [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] है गुरु.

---

१. गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible].
२. [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].
३. गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible].
गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible]. [illegible] [illegible].

ऐसी महान ज्ञान-भास्कर आत्मा, जब शरीर धारण करती है तो हमारे पहले प्रश्न "गुरु कौन?" का उत्तर आपका हृदय देगा. चौथे पातशाही गुरु रामदास का कथन है कि—

> जिसु मिलिऐ मन होइ अनंदु सो सतिगुरु कहीऐ.
>
> मन की दुबिधा बिनसि जाइ हरि परमपद लहीऐ.॥

उनके कथन से दर्शन-मात्र ही मन की दुविधाओं को नष्ट कर देता है. यही परीक्षण है. उसकी शरण लो. वह समर्थ और दयालु है. उसकी दया की भिक्षा माँगो. यहाँ गुरु नानक देवजी [illegible] हुए कहते हैं कि उसके कौतुक और चमत्कार देख कर विस्मित नहीं हो जाना; वह स्वयं विधाता है और तुम्हें विधाता से मिलाने आया है.

कितना ऊँचा पद है गुरु का! क्यों न हो; गुरु ही तो [illegible], जो संसार के [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] में गुरु [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]; [illegible] [illegible] मनुष्य को [illegible] [illegible] [illegible] (१) [illegible] [illegible] [illegible]; [illegible] में पड़े हुए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु, [illegible] [illegible] [illegible] ? गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] निर्मलता के [illegible] पर विचार कर, [illegible] [illegible] [illegible], यही [illegible] गुरु होने के योग्य है. गुरु [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], वही सच्चा गुरु होगा. गुरु [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है...

[illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible] [illegible]. ([illegible])

---

१. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible]. [illegible] [illegible].

२. [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible].
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible], [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] पृ [illegible].

[illegible] सामर्थ्य [illegible]

[illegible]....

[illegible]

[illegible]

भूले जाने की अपेक्षा प्रभु नाम का स्मरण कर अलौकिक सुखों और आनन्द को प्राप्त किया जाये, तथा जीवित रहते हुये अपने संचित प्रारब्ध का हिसाब साफ कर नये सिरे से सद्विचारी सत्कर्मकारी ऐसे परमात्मप्रेमी जीवन बिताया जाये. ये ही वास्तव में मनुष्य-जीवन के लक्ष्य हैं. इनकी ओर प्रवृत्त होना तथा प्राप्ति के सब साधन जुटाना ही मानव को ईश्वरत्व की कोटि तक पहुँचाता है. परन्तु...

परन्तु यह सब हो तो कैसे ? संसार में जन्म लेते ही मनुष्य मायावी गोरख-धन्धे में ऐसा फँस जाता है कि आध्यात्मिक-ज्ञान का दीपक अन्तस्तल की किन्हीं गहराइयों में प्रदीप्त रहने की अथक चेष्टा करता हुआ भी अविवेक की भयंकर तिमिराच्छादित स्थिति में प्रकाश फैलाने में असमर्थ रहता है. आवश्यकता है स्नेह-बाती सिक्त उस टिमटिमाते दीप को प्रज्वलित करने की, ताकि उसमें अन्धकार-विच्छेदन की शक्ति पैदा हो सके. दीप से दीप जलने का सिद्धान्त बहुत प्राचीन है; अतः यहाँ भी ज्ञान-दीप को उसी की सहायता से प्रज्वलित किया जा सकता है, जो स्वयं अपने पास प्रकाश-पुंज या प्रदीप्त दीपक पहले से ही विद्यमान हो. गुरु ही वह साधन है जो उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में मनुष्य को खोज को सम्भव बना सकता है. जिस प्रकार बिना अग्नि उत्पन्न किये दीप नहीं जलते, ताप नहीं मिलता; वैसे ही गुरु के बिना ज्ञान भी नहीं होता—मुक्ति और प्रभु-मिलन तो दूर की बातें हैं. स्पष्ट है यदि मनुष्य अपनी जीवन-लक्ष्यों को पाना चाहता और जन्म-मरण की बेड़ियों को काट देना चाहता है, तो पहले उसे गुरु, किसी सद्गुरु, की खोज करनी चाहिये...

99174

बिनु सतिगुरु किनै न पाइओ, बिनु सतिगुरु किनै न पाइआ.
सतिगुरु विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ.
सतिगुरु मिलिऐ सदा मुकतु है, जिनि विचहु मोहु चुकाइआ.
उतमु एहु बीचारु है, जिनि सचे सिउ चितु लाइआ. जगजीवनु दाता पाइआ. (श्लोक, वार आसा पृ०४६६)

निश्चय ही गुरु वह शक्ति है जिसकी अनुपस्थिति में मनुष्य सब कुछ होता हुआ भी शून्य है. वह कस्तूरी-मृग की तरह अपने ही भीतर से उठने वाली सुगन्ध की खोज में, पहाड़ों, तीर्थों और अनुष्ठानों में भटकता फिरता है. उसे कोई समझादे कि उसका प्रियतम उसी के भीतर है, तो उसे कितना अलौकिक-आनन्द मिले. मनुष्य के अन्दर सच्चिदानन्द ब्रह्म विद्यमान है, उसकी सुगन्ध अर्थात् परमात्मा का प्रकाश सारी दिशाओं में फैली हुई है. मनुष्य अज्ञान भाव से चालित हो उसी में निर्माता की खोज भी नहीं करता है. परन्तु कहीं कुछ हो तो मिले ? भीतर का दर्शन अन्तर्मुखी हुये बिना असम्भव है, और मानव बिना गुरु-सहायता के अन्तःदर्शी बने तो क्योंकर ? "जो बूझे सो सतिगुरु पावै......" (गउड़ी असटपदी म०१.). वास्तव में प्रभु का निवास-स्थान मानव-शरीर रूपी स्वर्ण-मन्दिर है, जिसके नौ द्वारों से ऊपर दसवें से परे वह स्वयं विराजमान है. लेकिन गुरु रूपी सोपान के बिना उस गढ़ तक पहु

अनुपस्थिति या उसका विरोध तथा ~~गुरुजी के~~ गुरुजी भावना की अपेक्षा [illegible] भावना, जीवन-धारिता में माया-जीव की भौतिकता का विजय कर, जीव को निर्मल मधुर से दीक्षित कर देती है. ~~गुरु~~ गुरु-विहीन-प्राणी भव-पारावार के विकट थपेड़ों में [illegible] बहता [illegible] की ओर [illegible] गति से बहता है. गुरु-विहीन काल-चक्र में नहीं पड़ता, वह तो ईश्वर-प्रेम में मग्न महोत्सव-आनन्द लीन करता हुआ प्रभु-प्रतीति की लौ में अनायास जुटा लेता है. गुरु-ज्ञान के बिना जीवन का मूल्य कुछ भी नहीं! क्योंकि गुरु से ही तो नाम (ईश्वरोक्त-पथ पर अग्रसर होने का मार्ग-पथ) की उपलब्धि सम्भव है और यही ईश्वर-मिलन का मार्ग जाता है! इसीलिये तो गुरु नानक ने स्पष्ट कहा "नानक गुरु बिनु नहीं पति, पति बिनु पार न पाई" (आदि ग्रं०१८). अतः, मैं बोध, गुरु के बिना मुझे राम-नाम की परख तथा प्रभु-प्रेम का आस्वादन नहीं मिल सकता. [illegible] मिल गए, उनके दर्शन-मात्र से ही मुझे अड़सठ तीर्थों की यात्रा का फल उपलब्ध होता." [illegible] जब तक [illegible] सतगुरु की [illegible] नहीं हो [illegible] जाती, तब तक प्रभु-मिलन की बात कोरी कल्पना या मृगतृष्णा ही बनी रहेगी.

<u>मोक्ष-प्राप्ति</u>

<u>गुरु बिनु मोख मुकति किउ पाईऐ। बिनु गुरु राम नाम किउ पाईऐ।</u> १:१० म०१.

अतः गुरु से महत्ता में प्रभु-मिलन की विशेष स्थिति भी है. [illegible] आत्मा का अपना पृथक अस्तित्व खो देती है और ईश्वर में ही लीन हो जाती है, अर्थात् [illegible] आकार में [illegible] जाता है (ज्योति-ज्योति समाना) तो मनुष्य को संसार में पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता. जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त कर आत्मा [illegible] "मैं तू है, तो मैं तू" की दशा में पहुँच रहती है. वास्तव में ऐसे आत्मज्ञ मैं और तू नहीं व्यापित होता, क्योंकि वह तो प्रभु में लीन हो गई होती है तब उसका व्यक्तिगत अस्तित्व ही नहीं रह जाता, यही मोक्ष है.

<u>गुरु ज्ञान-ज्योति प्रदाता है.</u>

गुरु मार्ग-प्रदर्शक ज्योति है, जिसके बिना अविवेक के अन्धकार में पग भी आगे रखना असम्भव है. [illegible] गुरु [illegible] पर चल कर जीवन का पूर्ण [illegible] करने से [illegible] मनुष्य [illegible] गुरु ज्योति [illegible] लौ में पूर्ण करे तो जीवन [illegible] के विषय [illegible] की [illegible] आत्मा [illegible] आनन्द [illegible] है. गुरु नानक [illegible]—

---

१. सतगुरु गुरु दातार है, [illegible]
[illegible]
[illegible] गुरु का [illegible] पृ०५५.

२. <u>बिनु सतिगुरु नाउ न पाईऐ, बिनु नावै किआ सुआउ.</u> सिरी पृ० ५८.

३. मन रे राम नाम [illegible] बिनु गुरु [illegible] गुरु मेरे [illegible]
[illegible] बिनु [illegible] गुरु [illegible]
आदि ग्रं० ११८.

[illegible] है, [illegible] है, [illegible]
[illegible] हो. [illegible]
[illegible] है— [illegible]
[illegible] है, [illegible] है. [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है कि [illegible]
[illegible]
[illegible] नहीं [illegible] है [illegible] है, [illegible]
[illegible] है. [illegible]
[illegible] है, [illegible] नहीं [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है, [illegible] (
[illegible] है, [illegible] है. [illegible]
[illegible] है. [illegible] नहीं.
[illegible] है [illegible]
[illegible] स्त्रोतास्विनी [illegible]
[illegible] है.

[illegible] है.

[illegible]
[illegible] है. [illegible] है, [illegible]
[illegible] है, [illegible] है; [illegible] है,
[illegible] है, [illegible] अपवाद है, [illegible] है, [illegible]
[illegible] है, [illegible] है, [illegible] है, [illegible]—

[illegible]
[illegible] है.
[illegible]
[illegible] है. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मात्र ज्योति ज्योति पुकार उठता है. सागर का तो कोई पार वार सम्भव है, परन्तु विरह का न कोई आदि है न अन्त. विषमता और भय का साम्राज्य है, पार उतरने को न नाव है न पतवार, जहाज है न केवट, चूंकि निराशा छा रही है. ऐसे में निर्बल के बल, राम का साक्षात्-स्वरूप सतगुरु ही मात्र सहायक है. वह संसार-सागर में डूबते जा रहे जीवों 'प्राणियों' को नाम-नौका में बैठा लेता है. करुणाकर-गुरु माया-पीड़ित जीवों को दुर्गति मार्ग से हटा पार [illegible] की ओर [illegible] है, और उन्हें [illegible] होने से बचा लेता है.

गुरु नानक फ़रमाते हैं कि सतगुरु वह नौका है जो संसार की [illegible] से माया-पीड़ित लोगों को मझधार से पार [illegible] है. उन्हें ऐसे [illegible] पर पहुँचा दिया जाता है, जहाँ विषयों के बंधन, तृष्णा की अग्नि, स्वार्थ के जल और मायावी विकारों का कोई प्रवेश नहीं. केवल [illegible] नाम यहाँ की सच्ची निधि है. यहाँ संसार के दुःखों का अंत होता है और [illegible] पर चलने वाली लघु-आत्मा को अपने में लीन कर लेता है.

वास्तविक [illegible] है कि बिरले भाग्य, गुरु के मार्गदर्शन से [illegible]. गुरु के शब्दों में [illegible] है. बड़े बड़े [illegible], महान सेवा और उपकार; [illegible] के परिश्रम, [illegible] और [illegible], तप और ब्रह्मा जैसे महान [illegible] का उद्धार गुरु से ही हुआ. उन्होंने भी गुरु से ही अमृत प्राप्त किया. गुरु की ही कृपा से पैगम्बरों और पीरों को प्रभु-दर्शन हुआ. गुरु नानक गुरु को [illegible] (परमात्मा) से [illegible] रहते आ रहे हैं. सतगुरु जिन्होंने गुरु की आज्ञा पालन करते हुए अपने मन पर नियन्त्रण की [illegible] है, [illegible] से अपना निस्तार [illegible] है.

नाम का दाता.

[illegible]

गुरु राखे से [illegible] उबारि निवारण आहि. ([illegible] सिरी पृ० ५८.)

[illegible] गुरु [illegible] निवारण केवल [illegible] ही है, वह है नाम-जाप. [illegible] है, नाम कहाँ से प्राप्त हो? [illegible] उत्तर है—सतगुरु से. [illegible]

१. [illegible] न कोई नाउ, ना बेड़ी, ना [illegible] पउ [illegible].
सतगुरु [illegible] पार उतार. [illegible] सिरी पृ० ५९.
२. [illegible] जिउ [illegible] नाम न [illegible].
[illegible] ३:२. [illegible] पृ० [illegible].
३-गुर [illegible] हरे.
[illegible] गुर [illegible] पारि परे.
गुरु सेवा [illegible] गुरु की सेवा.
[illegible] गुर [illegible].
गुरु [illegible].
[illegible] पृ० [illegible].

अपने गुरु को ढूँढो, उनके चरणों की धूलि बन जाओ; वह कृपा कर नाम देंगे और जीव उसमें विश्वास लावे तो स्वयं मानव के प्रतिबिम्ब-स्वरूप उसे पहुँचे जायेंगे. आत्म-विकास-ईश्वरता का विकास होगा. ब्रह्म की पूँज से अद्भुता प्राप्त होगी और बड़ी मोहक प्राप्ति का वरदान बन जायेगी. परन्तु सद्गुरु के बिना नाम और नाम के बिना प्रभु का मिलना असम्भव है. परम-तत्व के जानकार किसी महापुरुष का दामन पकड़ और उनके निर्देशित-मार्ग पर दृढ़-चित्त होकर ही प्राणी माया के बन्धनों और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है. स्वयं पारंगत होने के कारण वह महापुरुष जिज्ञासु व्यक्तियों को भी उसी परम-तत्व का परिचय दिला सकता और जीव परिचय कर मन को विकार-रहित बना, उसी तत्व में लगा पायेगा. थोड़े में यह कहना उचित है कि जिसने गुरु धारण किया, उसने केवल सत्य को ही नहीं पहचाना, प्रत्युत वह संसार के सभी मायावी बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्मैक्य के मार्ग पर अग्रसर होने में समर्थ होगा!

<u>गुरु हरि-नाम का रसपान करवाता है.</u>

गुरु की वाणी में हरि-नाम की वर्षा होती है. उसके श्रवण से तन, विचार से हृदय तथा मनन से अन्तःकरण पवित्र हो जाता है. गुरु अपने मीठे वचनों से वातावरण में अमृत घोलता है. वहाँ उपस्थित सभी प्राणियों को अमरता का प्रतिदान मिलता है. वे प्रभु की निकटता का अनुभव करते हैं, और गुरु-वचनों में विश्वास उत्पन्न कर जीवन को सब दुष्कर्मों और दुराचारों से मुक्त प्राप्त करते हैं! गुरु की अपार कृपा से ईश्वर-भक्ति प्राप्त कर जीना धन्य-धन्य [illegible] हो जाता है. ऐसे प्रेम-दीवाने जीव प्रेम का प्याला पीकर अपने और प्रभु के बीच का अन्तर समाप्त कर देते हैं!

<u>गुरु सुख और आनन्द का कारण है.</u>

संसार में मानव की चिन्ताओं और दुःखों का कारण मुख्यतः उसकी तीव्र एवं अभिलाषाएँ ही हुआ करती हैं. जहाँ कहीं विपरीत परिस्थितियों के कारण मनुष्य की आशा को ठेस लगती है, उसे अपनी वांछित वस्तु से निराश होना पड़ता है, वहीं उसे दुःख होता है. अपनी कामनाओं के प्रसाद के ढह जाने के कारण वह अमरता है—उसे [illegible] होता है

---

१. बिनु सतगुरु नाउ न पाईऐ भाई, बिनु नामै भरमु न जाई.
सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई, आवणु जाणु रहाई.
साचु सहज गुर ते ऊपजै भाई, मनु निरमलु साचि समाई.
गुर सेवे सो बूझै भाई, गुर बिनु मगु न पाई. २-३:२ सोरठ अष्टपदी पृ० ६३५.
२. गुरु रसना अमृत बोलदी हरिनाम सुहावी.
जिन सुनि सिखा गुर मंनिआ तिन भुख सभ जावी. १८:२. [illegible] पृ० ७२६.
३. मन तन देह [illegible] हरि की [illegible] निवारी. ४:२. मलार अष्टपदी पृ० १२७३.

[illegible] (त्रिकुटी—कायेक, [illegible]

[illegible]

[illegible] —सुरत [illegible] सुरत [illegible]

[illegible]

युद्ध मनुष्य में अद्भुतताओं को पैदा करता है.[४]

[illegible] देखें तो युद्ध का क्षेत्र और [illegible] कारण में अद्भुतताओं को [illegible] देता है. वह मनुष्य को [illegible] बड़ी क्षमताओं का [illegible] और मैत्री के मार्ग पर चलना सिखाता है. मनुष्य [illegible] अद्भुतताओं को जन्म दे देता है और जीवन में [illegible] का [illegible] करता है. युद्ध, मानव गुण दुर्गुणों का संगम है, वह अपनी [illegible] से दुष्कृतों की ओर [illegible] होने वाले प्राणी को सदैव "युद्ध" की प्रेरणा देता रहता है. वह [illegible] में हृदय का [illegible] बन जाता है और [illegible] पर [illegible] बन [illegible] है, "युद्ध नहीं करेगा". [illegible] वह [illegible] होने पर [illegible] हो, युद्ध [illegible] की [illegible] होता है. वह दुर्गुणों की ओर [illegible] रहता है और [illegible] पर, [illegible] उस का पथ-प्रदर्शक कोई नहीं होता, वह कभी दुर्गुणों की ओर नहीं जा सकता. ऐसे लोग मनुष्य को [illegible] है, [illegible] में युद्ध का [illegible] नहीं, मायने [illegible] है, लेकिन [illegible] बचाने वाला कोई नहीं. युद्ध-[illegible] युद्ध [illegible] स्पष्ट [illegible] और युद्ध करने [illegible] है? [illegible] नहीं, [illegible] है. युद्ध [illegible] है [illegible] वह [illegible] है जिसको [illegible] मनुष्य "[illegible]" कहता है. मनुष्य का [illegible] युद्ध-[illegible] हो जाता है. [illegible] होता है और मन दर्पण [illegible] हो जाता है. [illegible] और [illegible] हृदय में [illegible] भगवान् के [illegible] करता है. [illegible] प्राणी को [illegible] और दुर्गुणों से [illegible] देता है. वह "युद्ध" [illegible] निर्बन्ध [illegible], हार-जीत में [illegible] हो जाता है और [illegible] करता हुआ युद्ध-[illegible] युद्ध में [illegible] भगवान [illegible] कर देता है. [illegible] दुष्प्रवृत्तियों पर मनुष्य की विजय है! [illegible] वह [illegible] मनुष्य के [illegible] अद्भुत [illegible] हृदय में [illegible] रहते हैं, उन्हें उद्भूत करने वाली [illegible] की अपेक्षा है.

---

१. [illegible], [illegible] की [illegible] पृ. [illegible].
२. [illegible]
[illegible] सं. [illegible], पृ. [illegible].

म नाम की अन्तरात्मा, जो कि "गुरु" का अंश होने के कारण उसे प्रेरणा देती रहती है, मन की मुंहजोरी और चंचलता के कारण दब-सी जाती है. अन्तरात्मा की "गुरु" की प्रेरणा को सबल बनाना गुरु का कार्य है. उसे मानवोचित-गुण अर्जित हो उठते हैं, मनुष्य पशुत्व की केंचुली उतार फेंकता है और करुणा, दया, सहानुभूति, प्रेम, शान्ति जैसे सद्-आचरण की खेती को निज जीवन-खेत में उगा लेता रहता है. यह सब गुरु की महिमा...

<u>सच्चे गुरु</u> <u>की</u> <u>पहचान</u> ✓

गुरु नानक सच्चे गुरु की ओर संकेत करने से पूर्व मुखौटे वाले दुकानदार गुरुओं की पेशेवारी साधुओं और महंतों के सम्बन्ध में चेतावनी देना आवश्यक समझते हैं. क्योंकि गुरु की का ज्ञान-प्राप्ति क्यों नहीं पूरा होगा, क्योंकि अन्य किसी को ज्ञान का प्रकाश देना असम्भावित होगा. गुरु नानक फरमाते हैं...

> गुरु जिनका का अंधला, सिख भी अंधे करम करेन.
> ओह भाणे चलनि आपणै नित झूठो-झूठ बोलेन.

सच्चे गुरु की खोज निकालने में इसी लोक का स्वार्थ नहीं, मोक्ष का पारलौकिक स्वार्थ भी उसमें छीपा है. और यहाँ गुरु के चुनाव में चूकने की तो निकले कहीं के भी यह तो क्या मिलेगा, जो पास है वह भी जाता रहेगा. सुना पाने से तो अच्छा गुरु नहीं, अच्छा गुरु बनाओ. "गुरु को गुरु स्वीकार करने से पहले ठोक-बजा कर देख लो, "पानी पीजे छानकर <u>गुरु के चुनाव में चूको</u>" (लोको). एक मनुष्य का यही पता होगा, जो उस चुनाव को हो सकती है, जो अन्धेरे में गड़े पार करने जैसे पक्के घड़े को बनाये कच्चा घड़ा लेकर ही धारा में उतर पड़ा हो. किनार-सागर की लहरें तो और भी भिन्न है. उसे पार करने जैसे भार सजिया देवट मिला तो "खुद तो डूबे थे जजमान, तुम को भी ले डूबे". हमारे यहाँ प्रायः कहा जाता है "जाप हकीम खतराये जान, नीम मुल्ला खतराये ईमान". और यदि गुरु का चयन में गलत चुनाव हो, तो परिणाम होगा मानव-जन्म अकार्थ और जन्म-मरण के चक्र का पुनरारम्भ. इसीलिये हमारे पूर्व-वर्ती महात्माओं ने बार-बार चेतावनी दी है कि किसी की दिखावटी-चुपड़ी बातों में मत आओ, लम्बी-चौड़ी व्यापार न सुनो, अनुभव करो. उससे पूछो और बताये मार्ग पर चलकर देखो, रहस्योद्घाटन होता है, जो अपना अनुभव उस परमात्मा को देखे, वही सच्चा गुरु है. इसकी ताकीद में कहा है, "जब तक न देखूं अपनी नैनी, तब तक न पतीजूं गुरु की बैनी". अतः जो भी गुरु बनाओ तो उसे कहो, अनुरोध करो कि वह तुम्हें साक्षात्कार का आधार अनुभव कराये. ईश्वर दैवीय और दैवि, सत्य और असत्य, कहानी और कहानी मात्र से तो बाहर प्रत्यक्ष किये हैं, वे भी सद्गुरु की कसौटी से प्रमाणित हो उठते हैं, अन्यथा "गुरु जहाँ से निकले थे, वहीं के वहीं रह जाते".

आओ, अब गुरु नानक के शब्दों पर सद्गुरु की पहचान करें. सद्गुरु की कल से पहले

पहचान है, उसकी अलौकिक-पूर्णता (Absoluteness) वह अद्वैत [illegible], हर्ष-शोक, मिलन-[illegible], आकर्षण-विकर्षण, प्रेम और घृणा की सीमाओं से परे रहता है. उसकी आत्मा परमात्मा में लीन रहती है, इसलिए उसके बाहरी [illegible] पर लोक-विरोध, माया का बन्धन डालने वाले [illegible] का, चाहे वास्तविक दिखें, परन्तु उन्हें उस [illegible] कोई मूल्य नहीं. वह संसार में विचरण करने वाला [illegible] होता है. सूफी-संत [illegible] की [illegible] भाँति घर [illegible], अन्दर पूर्ण [illegible] धारण करता है, और दुनिया के सब कार्य [illegible] भी वह अलौकिक-भावों [illegible] निरंजन ही रहता है. गुरु नानक की कहनी कि योग ऐसा [illegible] किये [illegible], "[illegible] पूरा".

गुरु की दूसरी पहचान है उसकी निःस्वार्थता. वह [illegible] है, [illegible] नहीं. गुरु नानक ने [illegible] है--

गुरु पीर सदाये माँगण जाइ, ताके मूलि न लगीऐ पाइ. ([illegible], [illegible] की वार, पृ० [illegible].)

गुरु के अन्दर [illegible] रखता है, [illegible] न चाहते हुए भी, मनुष्य उसके [illegible] प्रभाव [illegible] नहीं रह सकता. उसके दर्शन-मात्र से मन को शान्ति मिलती है. [illegible] में हमारी अन्तरात्मा पुकार उठती है, "[illegible] करो, यहाँ [illegible] मिलने की आशा हो सकती है". [illegible] की [illegible] पर [illegible] को रखना [illegible] है, यहीं को [illegible] है "[illegible] गुरु [illegible]".

पुनः गुरु [illegible] उसकी गुरुवाई [illegible] निवास [illegible] है. उसके [illegible] से [illegible] परख करो, उसके [illegible] को [illegible] करो, [illegible] और पाप [illegible] भी [illegible] गुरु की [illegible] में [illegible] है. [illegible] गुरु [illegible] है. [illegible] हर्ष-शोक [illegible], [illegible] से परे, [illegible] है. [illegible] है, [illegible] की [illegible] नहीं रहती. [illegible] गुरु [illegible] है, [illegible] निर्मल हृदय में ही परमात्मा के दर्शन करने की [illegible] है. [illegible] में गुरु [illegible]

---

१. [illegible] बोधसार.
[illegible] गुरु [illegible] बोधसार. [illegible] पृ० [illegible].
२. [illegible] हारी [illegible].
[illegible]
[illegible] पृ० [illegible].

बेचैनी नहीं, कारण वह उन्हीं भावों का अनुभव करने लगता है. यह अनुभव-लोक से लोगों को [illegible]-दान और पर-दुःख कातरता का विवेक होता है. अभी जीव में यह भाव उत्पन्न नहीं होता. किन्तु प्राणियों की प्रसुप्त शरीर बुद्धि दुर्गुण पर, पंच-तत्त्व की प्रतिमा बन, यह जीव को प्रकाशित करता है. प्रकाशित-जीव होता है, प्रवृत्ति से पूर्ण हो। अतः गुरु मानव को विवेक है कि यदि कोई महापुरुष इस प्रकार मानव के दुर्गुणों को सद्गुणों में बदल दे, अन्तर में रहने वाले [illegible] अधिकार [illegible] पर चलने की प्रेरणा दे और [illegible] की प्रवृत्ति का दमन कर दे, तो यह [illegible] की मोक्ष-प्राप्ति होगी. जैसे [illegible], गुरु और [illegible] का [illegible] होता है, [illegible] यह [illegible] से प्रकाशमय [illegible] में [illegible] नहीं [illegible]. गुरुदेव ने [illegible] सद्गुणों की पुकार [illegible] भी बातें करती रहती है.

[illegible]-विषय में [illegible] और [illegible] है. [illegible] विषय-विकारों [illegible] क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि से [illegible] में [illegible] है. न [illegible] और [illegible] कहा है कि [illegible] में [illegible] की [illegible] मिलता है. गुरु के सद्गुणों द्वारा [illegible] भावनाओं से [illegible] मिलती है. जैसे [illegible] देने से [illegible] जाती है, वैसे ही जीवों को [illegible] के [illegible] के श्रवण, मनन और [illegible] से [illegible] की [illegible] से [illegible] मिलती है. [illegible] गुरु को यह [illegible] पहचान है कि उसके उपदेशों में [illegible] गुरु मानव को भी [illegible] करने की [illegible] रहती है। यह [illegible] है सद्गुणों [illegible]. [illegible] गुरु [illegible] की पर-दुखकातर [illegible] जीवों में [illegible] का [illegible] बचाने से [illegible] नहीं [illegible]. यह [illegible] सही अर्थों में जीव में [illegible] को जन्म देता है, सद्गुणों से [illegible] की प्रेरणा देता और उसके [illegible] मार्ग-दर्शन करता है. यदि जीव उसके वचनानुसार [illegible] करता है, तो उसकी-[illegible] [illegible] में कोई [illegible] नहीं रह जाता. [illegible] गुरु [illegible] से [illegible] देता [illegible] नहीं रहता— उसकी बातों का पालन करने ही उसकी सेवा या [illegible] है. यह उसकी प्रभाविक [illegible] है कि वह जीव में सद्गुणों को विकसित कर उसे [illegible] की [illegible] तक पहुँचा देता है।

---

१. [illegible] गुरु [illegible] पार [illegible], [illegible] मिटै गुन [illegible].
[illegible] गुरु [illegible], [illegible] हार.
[illegible] बहु [illegible] बनाना, [illegible] बहु [illegible]. २०. [illegible] पृ० [illegible].
२. मैं [illegible] अंध [illegible].
[illegible] से [illegible] गुरु [illegible]. २०. [illegible]. पृ० [illegible].
३. [illegible] गुरु [illegible] बदकार.
[illegible]... [illegible]. पृ० [illegible].

शरीर [illegible] रहते हुए भी [illegible] और गुरु की [illegible] है. जिज्ञासा का अर्थ [illegible] लगे हैं. यदि प्रेम [illegible] हो तो गुरु और प्रभु [illegible] नहीं रह जाता. इसके [illegible] अवस्था होती ही है, जिसके बल गुरु में [illegible] प्रभु का रूप देखने लगता है. जिज्ञासा [illegible] अनुराग होता है, अतः वह गुरु को सर्वस्व मान लेता है और उसी में वह गुरु [illegible] करता है. गुरु की [illegible] की बातें करते हुए [illegible] की [illegible] करते हुए उसे [illegible] पहुंचा देता है, जो प्रभु [illegible] देता है. [illegible] गुरु [illegible] में गुरु से [illegible] की प्रतीति (प्रभु से [illegible] होना) का ~~[illegible]~~ [illegible] किया गया है—

मीत [illegible] माहीं, किन्तु गुरु परमेश्वर कोई नाहीं.

गुरु [illegible] पराग, [illegible] है. [illegible], पृ. [illegible].

गुरु-[illegible] में [illegible] और [illegible] है, जहाँ [illegible] और [illegible] नहीं [illegible]. [illegible] प्रेम [illegible] नहीं पहुँच [illegible] दूर रहता है. [illegible] ही मार्ग है—गुरु [illegible]. [illegible] की [illegible] और [illegible] हो [illegible] और [illegible] नहीं [illegible] सकती!

भक्ति का अधिकारी कौन ?

गुरु-[illegible] गुरु-[illegible] हो सकता है. [illegible] गुरु [illegible] है, [illegible] है और [illegible] है, वह गुरु-[illegible] है. परन्तु प्रेम [illegible] में [illegible] और [illegible] है. [illegible] गुरु-[illegible] धारण कर सकते हैं, [illegible] होते हुए भी प्रेम को [illegible] से वंचित रह जाता है, [illegible] गुरु को [illegible] नहीं प्राप्त कर पाता. [illegible] गुरु की [illegible] है, [illegible] पर

---

१. [illegible] प्रेम [illegible] हार पाई [illegible] गाई.

[illegible] गुरु [illegible] पृ. [illegible].

युद्ध [illegible] है. [illegible] युद्ध [illegible] है. हाँ, [illegible] है, [illegible] युद्ध [illegible] करता है और [illegible] में [illegible] होता है! [illegible] वह दाता (युद्ध) है [illegible]. युद्ध [illegible] है, [illegible] है. [illegible], [illegible] और [illegible] है.

युद्ध [illegible] क्या होता है ?

[illegible] युद्ध [illegible], युद्ध [illegible] है, परन्तु [illegible] है, [illegible] है, [illegible] युद्ध [illegible] रहता है. [illegible] है [illegible] युद्ध है, [illegible]. [illegible] ही युद्ध [illegible] है; [illegible] कैसे [illegible] है, [illegible] युद्ध [illegible]. [illegible] युद्ध [illegible] है. [illegible] युद्ध [illegible] है [illegible] युद्ध [illegible] रहे. [illegible] प्रकार [illegible]

---

1. युद्ध [illegible].
   [illegible], [illegible], पृ० [illegible].
2. [illegible], पृ० [illegible].

[illegible] विपदा को सुनाती [illegible] बच्चे की निवारती है, [illegible] प्रकार से [illegible] होती और उसके मिलन में केवल [illegible] पाती है, वैसे ही [illegible] सेवा-पूर्ण भाव को प्रकट करने के लिये गुरु-सेवा को स्वीकार करता है. [illegible] प्रेम-प्यार [illegible] भावना से नहीं [illegible], बल्कि गुरु के चरणों में बैठ कर शिष्य को आत्मार्पण करने को विवश करती है और उसी में सुन्दर गुणों का विकास करती है। वास्तव में [illegible] गुरु-भक्ति-सेवा और [illegible] के माध्यम से आत्मा शुद्ध होती, [illegible] शुद्ध भाव की [illegible] प्रकट करती है और क्रमशः [illegible] और आत्मिक [illegible] की सेज पर वह उसे [illegible] स्थापित करने में सफल होती है.

गुरु-सेवा से विवेक-जाग्रत होता है. ज्ञान की प्रतीति [illegible] माया के [illegible] अहंकार में [illegible] निकलता [illegible] आवश्यक है. केवल गुरु-भक्ति ही [illegible] का वह वातावरण प्रस्तुत कर सकती है जिसमें बाहरी [illegible] से [illegible] का मार्ग [illegible] निकलने में समर्थ होती है. [illegible] संसार की भूल-भुलैयों से बचने के लिये गुरु-मार्ग-दर्शन को अनिवार्य करता है, [illegible] माता-पिता में विश्वास और [illegible] है. जो लोग गुरु रहित होते गुरु की [illegible] होने का दम भरते हैं, वे कभी मुक्त नहीं हो सकते. उनकी [illegible] होती [illegible] कोई मूल्य नहीं.

[illegible] में गुरु-भक्ति की [illegible] विशेष प्रकार पर, गुरु नानक ने [illegible] अधिक महत्व दिया है, जो [illegible] सम्भव न होगा. गुरु अपने [illegible] (सिक्खों) से प्यार करता है, [illegible] "मुझसे प्यार करते हो तो मेरी [illegible] वस्तु से प्यार करो" [illegible], [illegible] भाव भी स्वीकार करता है, [illegible] आत्म-[illegible] है, [illegible] की सेवा करते हैं. ईश्वर [illegible] सेवा करना [illegible] ईश्वर-प्रेम का प्रतीक ही बनता है, [illegible] निश्चय ही गुरु [illegible] प्रेम गुरु की चरण-[illegible] न होगा. [illegible] गुरु नानक गुरु-भक्ति [illegible] आतुर है, [illegible] होता है. [illegible] गुरु-भक्ति में [illegible] सम्पन्न होते हैं, इसलिये उनका प्यार प्रभु-प्रेम से कुछ भी कम नहीं. सिक्ख गुरु के

---

१. गुरु सेवा गुरु पाईऐ, [illegible]
[illegible]
[illegible], गुरु [illegible] पृ. ५८.
२. [illegible]
[illegible] १. [illegible] पृ. १८८.

—— [illegible]

[illegible] है, [illegible] में [illegible] [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है।

[illegible] और गुरु

[illegible] — [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है [illegible] है। [illegible] है, [illegible] हो। [illegible] विश्लेषण नहीं किया, [illegible] की [illegible] है, जिसने आत्मा को [illegible] हो, [illegible] हो।

[illegible] है, [illegible] है। [illegible] अपने को भी पहचानता है, [illegible] अपने बनाने वाले को भी।

[illegible] है, [illegible] है। [illegible] हो

---

१. [illegible]

२. [illegible]

—— ३५.

होना ही चाहिये.

प्रत्येक काम गुरु की इच्छा से अनुसार करना, यह यह बातें परमात्मा को पहचानना गुरमति के प्रकाश में निश्चय कोशिशना और निर्विकार परम-तत्व में रमे रहना आदि गुरमुख के वे गुण हैं, जिनका विश्लेषण गुरु नानक ने सुमेर पर्वत पर सिद्ध योगियों से हुई चर्चा में प्रस्तुत किया था. यद्यपि रचयित में वे अपनी अवस्था में रहते हैं, सम्पूर्ण परमात्मा एक रस उनके हृदय में विद्यमान है, परन्तु सद्गुरु की कृपा-मात्र ही उसे प्राप्त कर सकता है. हम तो इतना जानें गुरु की इच्छा पर सब कुछ अर्पित किये हैं, जो उसे भावेगा, वही होगा. हमें दुनिया में भेजा, चाहे जावे, बुलावे जाने जो वह देवे. गुरमुख (अमरदास) का तो सर्वस्व ही वह है, कि वह गुरु से उपदेश प्राप्त करे, अपने को तथा सर्वव्यापक प्रभु को पहचाने और उस परम-तत्व में अपने को लीन करदे!

गुरमुख की गुरु-भक्ति का दूसरा रूप है, उसका आज्ञाकारी होना. वह मनो-कर्म से ठीक मार्ग पर चलता था, गुरु वचनों का विरोध करना दुर्वह पाप समझता है. वह सदैव निष्ठा से चलता और उन्हें ही अपनाता है. सद्गुरु के हुक्म (आज्ञा) का वह अक्षरशः पालन करता है और सद्गुरु की शरण ग्रहण कर अपने गुणों की इच्छा से रहित बना रहता है? गुरु नानक ने ऐसे ही गुरमुख के सम्बन्ध में कहा था—

"सतिगुरु सेविआ दीखिआ लीनी" मन तन अरपिउ अन्तरगति कीनी. १.गउड़ी पृ०२२०.

क्योंकि गुरमुख सतिगुरु को पहचानता है, उसकी सेवा करता है और तन मन धन उसी को अर्पित कर स्वयं "अन्तरगति कीनी", युक्त हो जाता है. आवश्यक यह कि वह अपने अहं से जुदा रहना गवारा नहीं करता, चिर-शीतल पाने को भी वह उसको स्वीकार कर लेता है. यही गुरमुख का वास्तविक स्वरूप है. गुरु नानक इसी रूप की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि यदि गुरु किसी पर विशेष कृपा कर अहंकार-शत्रु को उसे साक्षात्कार करवा दे, उसका रूप और ज्ञान से वरदान देकर उसमें पुन के अनेक पापों का अन्त कर दे, तो वह जीव गुरमुख कहलाये गा. उसको कोई अपनी बातें अन्य लोग भी उसके सम्बन्ध प्रकार में किसी विचारों का व्याख्यान कर देवें. गुरमुख अपने गुरु की कृपा से अनेकों का मार्ग प्रशस्त करता है और गुरु से अनुभूति ज्ञान

---

१. घटि घटि बैसि निरंतरि रहीऐ चालहि सतिगुर भाए.
सहजे आए हुकमि सिधाए नानक सदा रजाए. आसणि बैसणि थिरु नाराइणु ऐसी गुरमति पाए.
गुरमुखि बूझै आपु पछाणै सचे सचि समाए. २. रामकली सिध पृ०९३८.

२. बोलहि साचु, मिथिआ नही राई. चालहि गुरमुखि हुकमि रजाई.
रहहि अतीत सचे सरणाई. १. गउड़ी पृ० २२८.

३. आपि मिलाए गुरु सबदि मिलाइआ. ताप बिनासे मरण मुकाइआ.
जिन कउ नदरि गुरमुखि होई. नानक ताथ नाम मसु ओई. ९:१५. गउड़ी पृ० २२८.

की प्राप्ति कर "गुरमुखि कोटि उधारदा" के नाते "नानक" का अथवा स्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ होता है.

"निज घरि वासिआ नाम वसै, गुरमुखि मेलु मेल." (सिरी, पृ०२७)

गुरमुख माया के त्रिगुणात्मक रूपों से पारंगत होता है, और सदा अपने दामन को माया-मोह के कांटों से बचा कर चलता है. वह अपने और पराये के भेद को समझता है. उसकी हर बात निष्काम भाव से प्रस्तुत की होती है. स्वाभाविक: ही अनुभव होने के कारण वह आडम्बर नहीं रचता, उसके साधुओं की तरह माथेरों का मोहताज, कुछ मिथ्या पूजिकाओं के कारण दूसरों को माया के बन्धन काटने को केवल शिक्षा नहीं देता, बल्कि स्वयं बन्धन काट कर दूसरों के लिये आदर्श प्रस्तुत कर देता है.

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि गुरमुख के अन्तःकरण में पंचों-दुष्टों के चोर चोरी नहीं कर सकते, क्योंकि वह हरि-नाम की कृपा से सदा जागता रहता है. उसने ईश्वरोपासक होने के नाते तन, मन, धन, सर्वस्व अपने प्रभु को समर्पित कर दिया होता है, फिर भला जो चीजें अब उसकी रह ही नहीं गईं, उनमें बुराई कामनायें उत्पन्न करने का अधिकार ही उठ गया है । यही कारण है कि गुरमुख, जो हरि नाम जपता ही नहीं बल्कि हरिमय हो जाता है, काम क्रोधादि पांच चोरों से कभी पराजित नहीं होता. इसका एक और मुख्य कारण बताते हुये गुरु नानक कहते हैं कि गुरु के उपदेशों से जीव (गुरमुख) की बुद्धि की मलिनता धुल जाती है और उसमें ज्ञान-ज्योति का प्रकाश फैलता है. तात्पर्य स्पष्ट है कि गुरु-ज्ञान के कारण जीव अपना भला-बुरा जानने लगता है और भौतिक पदार्थों से बचने का प्रयत्न करता रहता है. जागता गुरुमुख ही हरि-नाम के अमूल्य धन की प्राप्ति करता और सदा निःकाम बना रहता है! स्मरण रहे, गुरु नानक वाणी में जगन्नाथी के त्याग का यह अर्थ कभी नहीं है कि जीव घर-बार-गृहस्थी छोड़ और परिवार-मोह त्याग कर वैराग्य धारण करे.

दूसरों को गुरु-ज्ञान दिलाने का अनुरोध उसके गुरमुख का अद्भुत गुण है. प्राचीन कहावत है कि मन की जीत बुराई भवसागर तर जाती है, परन्तु यहाँ गुरुमत में तो परम-तत्व की कृपा-दृष्टि गुरु इस प्रकार कह रहा है कि उसकी संगत में जो आवे वह भव तर जाता जानि. गुरु नानक लिखते भी हैं—

जिन गुरमुखि निसतारा होइआ, तिन कउ सुखु पाइआ.

जोति मूरति करतार जिन मुखि मनु उजलिआ. ८:४, रागु [illegible] पृ०६०५.

तात्पर्य यह कि गुरुमुख का जैसा गुरमुख, वह महान विभूति है, जो केवल स्वयं या अपने परिवार

---

१. गुरमुखि चोरु न लागि हरिनामि जागाइआ. सबदि निवारी आगि जोति दीपाइआ.
[illegible] गुरमुखि [illegible].
१:३:२ सूही, पृ०७५२.

को भी दुख नहीं सताता, प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व पर प्रेम और शान्ति का आभार बन कर छा जाता है, कृपा-दृष्टि से जो भीगा, उसी का उद्धार हो गया.

प्रश्न उठता है कि यदि गुरमुख विशुद्ध आचार-विचार का अनुगामी होता है, तो वह संसार के मलिन वातावरण में क्योंकर रहता है? गुरु नानक निःसंदेह सुझाव देते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि मलिनता में रहने वाला मलिन ही हो. इसकी पुष्टि कमल के उदाहरण से करते हैं. यह स्वच्छ और निर्मल फूल, यद्यपि मलिनता और पंक में विकसित होता है, तो भी कवियों से सौंदर्य-बोधक उपमान बना है. ठीक वैसे ही गुरमुख जलाकमल की नाई विश्व-कीच में रहता है—परन्तु मलिन वातावरण से सदैव ऊंचा. गुरमुख जैसे मोह-माया की फन्दगी का होता, न कोई मैल लगता है. जैसे विष व्याप नहीं होता, वैसे ही यह आध्यात्मिक-दृष्टि कभी मायावी-जाल के पीछे दुख नहीं दिखाता. उसकी भक्ति से माया की तो क्या स्वयं काल भी कांपता है. श्री गुरु नानकजी ने लिखा है, "जिन्हें भी प्रभु ने अपनी शरण दी है, उनको तो काल भी (तात्पर्य यमराज भी) पीड़ित नहीं कर सकता. गुरमुख तो भौतिक पीड़ाओं से ऊपर भी स्वच्छ और सद्भावमय रहता है, ज्यों जल और कीचड़ से ऊपर विकसित इन्दीवर.[1]

गुरमुख की उपर्युक्त अनेक विशेषताओं की ओर संकेत करने के उपरान्त गुरु नानक राग रामकली में गुरमुख के अन्य अनेकविध गुणों की चर्चा-सी प्रस्तुत करते हैं.

गुरमुखि साचे का भउ पावै, गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै,
गुरमुखि निरमल हरि गुण गावै, गुरमुखि पवित्रु परम पदु पावै,
गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै, नानक गुरमुखि साचि समावै. २७.
गुरमुखि परचै बेद बीचारी, गुरमुखि परचै तरीऐ तारी,
गुरमुखि परचै सुसबदि गिआनी, गुरमुखि परचै अंतर बिधि जानी,
गुरमुखि पाईऐ अलख अपारु, नानक गुरमुखि मुकति दुआरु. २८.
गुरमुखि अकथु कथै बीचारि, गुरमुखि निबहै सपरवारि,
गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि, गुरमुखि पाईऐ सबदि अचारि,
सबदि भेदि जाणै जाणाई, नानक हउमै जालि समाई. २९.
गुरमुखि धरती साचै साजी, तिस महि ओपति खपति सु बाजी,
गुर कै सबदि रपै रंगु लाइ, साचि रतउ पति सिउ घरि जाइ,
साच सबद बिनु पति नही पावै, नानक बिनु नावै किउ साचि समावै. ३०.

---

१. जिन्ह कउ नदरि करे प्रभु मेलि, तिन कउ कालु न साकै पेलि,
गुरमुखि निरमल रहहि पिआरे, जिउ जल अंभ ऊपरि कमल निरारे. २:१५. आसा, पृ०३५२.

गुरमुखि अष्ट सिधि सभ बुधि, गुरमुखि भवजलु तरीऐ सचुधि,
गुरमुखि सर अपसर बिधि जाणै, गुरमुखि परविरति निरविरति पछाणै,
गुरमुखि तारे पारि उतारे, नानक गुरमुखि सबदि निसतारे. ३४.
गुरमुखि रतनु लहै लिवलाई, गुरमुखि परखै रतनु सुभाई,
गुरमुखि साची कार कमाई, गुरमुखि साचे मन पतीआई,
गुरमुखि अलख लखाए तिसु भावै, नानक गुरमुखि चोट न खावै, ३५.
गुरमुखि नाम दानि इसनानु, गुरमुखि लागै सहज धिआनु,
गुरमुखि पावै दरगह मानु, गुरमुखि भउ भंजनु परधानु,
गुरमुखि करणी कार कराने, नानक गुरमुखि मेलि मिलाने. ३६.
गुरमुखि सासत्र सिम्रिति बेद, गुरमुखि पावै घटि घटि भेद,
गुरमुखि वैर विरोध गवावै,गुरमुखि सगली गणत मिटावै,
गुरमुखि राम नाम रंगि राता, नानक गुरमुखि खसम पछाता. ३७. सिधगोष्ट पृ. ९४१-४२.

गुरमुख की पहचान.

गुरमुख की पहचान में, गुरु-भक्ति और सेवा, भक्ति-प्रेम, ब्रह्मज्ञान, ईश्वरीय-पारख, नाम-जाप, आत्मिकता के गुण, निरभिमानता, शील-निर्मलता आदि सद्गुणों को मापदण्ड बनाया जा सकता है. जिनमें पूरा उतरने वाला सत्यनिष्ठ गुरमुख है, अधूरा कुछ भी नहीं. वास्तव में हम अपने अज्ञान के कारण उसे पहचान नहीं पाते, उसे अपनी मैला अंतःकरण-बोध जीव पर उसकी परख करते निकल जाते अधूरे गुरमुख का प्रमाण देते हैं, जबकि वह इस लोक का तो जीव ही नहीं ~~लेकिन~~ रह जाता—वह अलौकिक वासी होता है.

—,—,—,—,—,—,—,—,—,—

२

<u>[illegible]</u>

[illegible] दुःखी, [illegible],

[illegible] , [illegible].

([illegible])

तृतीय अध्याय

अकाल-पुरुष (ब्रह्म)

१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैर,
अकाल मूरति अजूनी सैभं, गुर प्रसादि.

"ब्रह्म, अतुलनीय सर्वशक्तिमान है. वह सतिनाम है अर्थात् वह समय, स्थान या वस्तु के बन्धनों से परे है. वह सर्वव्यापक सृष्टि-रचयिता है. किसी का भय नहीं उसे, किसी से वैर भी नहीं; वह भूत, भविष्य और वर्तमान की सीमाओं से परे है. वह था, है और रहेगा. संसार की संपूर्ण प्रकृति ससीम, नश्वर और लौकिक है, वही अकेले असीम, अनश्वर और अलौकिक है. वह अजूनी है, अर्थात् किसी योनि में जन्म नहीं लेता—क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है, और वह है अकाल. वह स्वयं प्रकाश-स्वरूप है और उसकी प्राप्ति केवल सद्गुरु की कृपा से सम्भव है."

बाबा का उपर्युक्त मूल-मंत्र ब्रह्म के नाम-रूप को स्पष्ट करने में पर्याप्त समर्थ है. प्रस्तुत पद में उसे वैदिक परम्परा के अनुसार "ओंकार" नाम दिया गया है, जो कि केवल पहचान और स्मृति का कार्य करता है. "१" तथा पद के अन्य सभी स्वरूप (गुर-प्रसाद के अतिरिक्त) "ओंकार" नाम के रूप हैं, पहचान को पुष्ट करने के तार्किक साधन. गुरु नानक काव्य में ब्रह्म को और भी नामों से पुकारा गया है, यथा निरंजन, अकाल-पुरुष, पारब्रह्म-परमेश्वर आदि. कहीं कहीं तो परिस्थितिवश जनता का ध्यान आकर्षित करने तथा उसे सन्मार्ग पर लाने के लिये राम-कृष्णादि अवतारों के नामों को भी ब्रह्म के लिये प्रयोग किया गया है. उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि गुरु नानक अवतारवाद में विश्वास रखते थे, या राम-~~कृष्ण~~ कृष्णादि को ब्रह्म का अवतार मानते थे. वे सब अवश्य ही महापुरुष थे; उनका जन्म प्रकृतिवश था, स्वभावतः अन्त भी प्रकृतिवश होना ही था. इसीलिये उनमें ब्रह्म का मूलभूत गुण "अकालत्व" न था और निश्चय ही वे ब्रह्म न थे. ऐसे महापुरुषों के लिये गुरु नानक विचारधारा में स्वीकृति तो है, परन्तु ब्रह्म रूप में नहीं, उच्च एवं आदर्श व्यक्तियों के रूप में. ज्ञानी और महात्माओं में, जो समय समय पर संसार उद्धारार्थ प्रकट होते रहते हैं, ब्रह्म की महत् शक्ति की उपस्थिति भी स्वीकार की गई है. ईसाई, मुसलमान तथा अन्य सभी विचार-पद्धतियों की तरह गुरु नानक मानते हैं कि संसार की बढ़ती हुई कुटिलता को नष्ट करने के लिये ब्रह्म स्वयं अपनी सन्तानों से परामृष्ट कर सन्देशवाहक भेजता रहता है और उनको एवं आवश्यकतानुसार लौटा लेता है. ये सन्देशवाहक महापुरुष विश्व को सच्चाई का मार्ग बता जाते हैं, भूली-भटकी आत्माओं को ब्रह्म-मिलन के साधन समझा जाते हैं, जीवन का भेद बता और सत्य रख दिखाते और

—— १०

अपनी रक्षा कर लेती है. भटकी जनता अपनी भावना को छोड़ती नहीं, उस पर अगर-स्तुतियाँ न्यौछावर करती जिससे उसमें अवतार की स्थापना करती है. भावना-स्तुति की किसी सृष्टि के जीवों की इस भूल पर अधीन होता है, अतः उन्हें सत्य मार्ग दिखाने जिससे पुनः भेज ज्योति भेजनी पड़ती है, जो धीरे धीरे मायावी प्रवृत्ति की ओर प्रवृत्त हुआ फिर अवतार मान ली जाती है. यही कारण है कि विश्व की धार्मिक-विचारधाराओं में अवतारी अवतारों, पैगम्बरों और देवी-देवताओं का नाम लिया जाता है, परन्तु ब्रह्म के एकत्व में कभी किसी को सन्देह नहीं हुआ.

१- सृष्टि-रचना

भारत की सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार आरम्भ में ब्रह्म-पुरुष के अतिरिक्त और कुछ न था. गुरु नानक ने भी ब्रह्म का रूप ही अनिर्वचनीय माना है. उनके विचारानुसार यदि आरम्भ में कुछ न था, तो शून्य रहा होगा और वही शून्य निराकार का रूप था :- "आदि को बिसमादि बीचारु कथीअले, सुंन निरंतरि वासु लीआ." रामकली सिद्ध गोसटि पृ० ९४०. उस अकाल की इच्छा हुई कि वह अपने मनोरंजन हेतु कोई साधन जुटाये. यह सृष्टि वही साधन है, जो निरन्तर उस ब्रह्म के आधार पर, जिससे इसका प्रकट की गई थी, बनती, बिगड़ती और पुनः जीवित होती चली जा रही ~~है~~ है. ब्रह्म की इस अकथनीय शक्ति से बढ़ा चढ़ा विचित्र कौन आश्चर्य में आए? जैसी कौतुक-स्वरूप कि उसकी वास्तविक पहचान न भी उसी की सद्गुरु-कृपा से बन पड़े? गुरु नानक लिखते हैं कि अकाल-पुरुष ने अपनी इच्छानुसार इस विश्व की रचना की, और उसका यथार्थ स्वरूप जानने का सामर्थ्य भी अपने तक ही सीमित रखा. आकाश और धरती की रचना की गई. ब्रह्म के प्रकटीकरण पर अवलम्बित बिना खम्भों के गगन स्थिर किया गया. निशा-दिवा सरीखे कौतुक प्रस्तुत किये गये, जब वह स्वयं ध्यान-सिंहासन पर बैठे धैर्यपूर्वक अपनी रचना को देख कर मनोरंजन करता रहा और जीव इन आने जाने के चक्कर में पड़ कर रह गये।[1]

उसकी इच्छा और आज्ञा के बाहर कुछ भी नहीं. गुरु नानक कहते हैं," उसकी

---

१. आपीन्है आपु साजि, आपु पछाणिआ.
अंबर धरति विछोड़ि चंदोआ ताणिआ.
विणु थम्हा गगनु रहाइ, सबदु नीसाणिआ.
किनी राति दिनंतु चोज विडाणिआ.
धुरि सचु निवासु हरि आवण-जाणिआ. मलार की वार पृ० १२७९.

२. हुकमी सभे ऊपजहि, हुकमी कार कमाहि. हुकमी कालै वसि है, हुकमी साचि समाहि.
नानक जो तिसु भावै सो थीऐ.
इना जंता वसि किछु नाहि. ३:८. गउड़ी असटपदी. पृ० ५५.

—— ३.

इच्छा से सब उत्पन्न हुआ है, उसकी इच्छा से ही विश्व-कर्म व्याप्त है. जीव उसीकी इच्छा से माया-चक्र में पड़ा और काल-जाल में फँसा है. और यदि उसकी इच्छा हो तो वह क्षण में भी छुड़ा सकता है. सार यह कि जीवों के वश में कुछ नहीं, जो उसे स्वीकार्य है वही होता है." गुरु गोबिन्द सिंह ने भी सृष्टि का सृजन अकाल-पुरुष से ही माना है, जिसकी पुष्टि चतुर्दश लोकों[1] में फैली हुई माया भी [illegible] कर रही है.[2] जपुजी में भी गुरु नानक यही कहते हैं—

कीता पसाउ एको कवाउ. तिस ते होए लख दरीआउ.
कुदरति कवण कहा वीचारु. वारिआ न जावा एक वार.
जो तुधु भावै साई भली कार. तू सदा सलामति निरंकार. (पउड़ी १६)

अर्थात् परमेश्वर ने एक ही वचन से सृष्टि का यह अनुपम प्रसार प्रस्तुत किया है. एक ही शब्द से लाखों प्रकार के सृजन हुये, यथा जीव, जाति, रूप-रंग अथवा अन्य अद्भुत वस्तुयें. उसकी कुदरत (शक्ति) अथाह है, कोई कितना विचार करे, परन्तु उसकी सीमा नहीं पा सकता. यही कहना होगा कि उसकी इच्छा से जो कुछ बना है, वही उचित है. महिमा तो इस बात का है कि अपने एक वचन की शक्ति से जिसने इतने बड़े परिवर्तन-शील संसार की रचना की, वह स्वयं अविनाशी, स्वरूप-रहित, शान्ति से बैठा इस परिवर्तन का तमाशा देख रहा है.

२- काल और अकाल

जो वस्तु समय और स्थान (देश-काल) की सीमाओं में बद्ध है, वह कभी चिर-सत्य नहीं हो सकती. उसका अन्त अनिवार्य है. देश और काल से हमारा अभिप्राय है वस्तुओं का नैसर्गिक-नियमों के बन्धनों में होना, अतः जो वस्तु प्राकृतिक रूप से अभिव्यक्त होगी, स्पष्ट ही उस पर माया के सृष्टि-परिवर्तन-नियम अवश्य लागू होंगे. परिवर्तन भी ऐसा ही एक निसर्ग-नियम है, और प्रत्येक परिवर्तनशील वस्तु क्षयोन्मुखी होती है. माया-गुणों का कार्य, क्रमशः जन्म, जीवन और नाश, भी परिवर्तन की ओर संकेत करता है; और युगों युगों से इसे सृष्टि का शाश्वत नियम स्वीकार किया जा रहा है. परन्तु सत्य का पहला गुण है, अटल और अपरिवर्तनशील होना. सत्य सदैव, सब

---

१. भारतीय शास्त्रों में लोक १४ स्वीकार किये गये हैं. ७ [illegible] नीचे और ७ ऊपर.
नीचे:- तल, वितल, अतल, सुतल, रसातल, तलातल और पाताल.
ऊपर:-(भू),भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य.
२. [illegible]
[illegible]
३. ऐसा मार्ग, सुनिह किताबें, [illegible]
[illegible]

स्थानों और उन परिस्थितियों में बन्द हो रहता है, उसमें समय के फेर से कोई फेर नहीं होता. और विश्व में ऐसी कोई स्थूल वस्तु नहीं जो समय और स्थान के परिवर्तन के साथ परिवर्तित न हो जाये. ग्रीष्म की बीज से पेड़, पेड़ पर फल और फलों से बीज बनने का क्रम है, अतः कभी सत्य नहीं हो सकती. जैसे साधारण-सी सृष्टि का उतना बड़ा विस्तृत, वन से लेकर अणु की कोटि का महान सत्य कदापि नहीं हो सकता. वह नश्वर है, वह परिवर्तनीय है, वह देश-काल में सीमित है, उसका सर्जन हुआ है—उसमें नाश स्वाभाविक है; अतः वह सब "सकाल" है. सूर्य, पृथ्वी, जीव-जन्तु, खण्ड-ब्रह्माण्ड, आकाश-पाताल, सब में स्पन्दन है; सब नश्वर है, सबका उत्थान और पतन होता है, सभी में काल व्याप्त रहता है. ठीक है कि सत्य भारी और विकट है, परन्तु काल के प्रभाव में किसी को दिखाई नहीं पड़ता. उस पर भी काल का आवरण पड़ गया है. उसका दर्शन करने के लिये आवरण हटाना पड़ेगा और उसकी सम्भावना रहती है ज्ञान-साधना के गुरु प्रयत्नों में. माया तथा उसके तीनों गुण ब्रह्मा, विष्णु और महेश काल-शक्ति के रूप हैं. काल-सीमाओं का आरम्भ गुरु गोविन्द ने भी इसी प्रकार किया है.—[2]

कैई इन्द्र भये, कैई गये, कैई फिर भये. रामचन्द्र कृष्ण के अवतार भी अनेक हैं.
ब्रह्मा अरु [illegible] कैते, वेद और पुरान कैते. [illegible] कुरान के [illegible] कितने हैं.
[illegible] मदार कैते, [illegible] कुमार कैते. [illegible] अवतार कैते काल बस भये हैं.
और [illegible] कैते, [illegible] न परत कैते. [illegible] [illegible] गुन [illegible] है!

जो समय और स्थान की सीमाओं से परे है, जो अटल, अडोल और अपरिवर्तनशील है, जो [illegible] सत्य है, सर्वगुण सुन्दर है, जो परिस्थितियों के बन्धन से मुक्त है; जो कण कण में समाया है, विश्व के समस्त नाम-रूप जिसके नाम-रूप हैं, परन्तु फिर भी जिसका कोई विशेष नाम-रूप नहीं, वह "अकाल" है. वह अवर्णनीय, अकथनीय, [illegible], अदृश्य, अविकारी, अविनाशी, असीम, अनादि, [illegible], [illegible] और अनन्त है. वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वस्वतंत्र है.

वाणी में गुरु नानक ने अकाल की विशिष्टता प्रस्तुत करते हुए, उसके द्वारा आत्मशक्ति-विकास के [illegible] की रचना का विधान किया है, जिसमें पहली बार

---

१. कभी [illegible] भोग भुगे, कभी [illegible] भी [illegible].
कभी [illegible] न [illegible], कभी [illegible] न [illegible].
[illegible] नाम निरंजन [illegible], [illegible] भी [illegible] भाग [illegible]. [illegible] पउड़ी २२. पृ० १.
२. अकाल-उस्तत—गुरु गोविन्द सिंह. पद ८८.

—— ५.

में आज भी उसके पदपुष्ट सेवक, माया के बन्दे, साम्राज्य स्थापित किये हैं; परन्तु किसी में इतना साहस नहीं कि खुले आम उसका विरोध कर सके. वे धर्म के ~~नाम~~ नाम पर न्याय करने की सोचते हैं, जबकि पाँचवें खण्ड में एक बार दण्ड पाने वाला भयंकर पापी भी (अकाल के हुजूर में) क्षमा कर दिया जाता है. गुरु नानक ने पाँचों खण्डों के नाम क्रमशः इस प्रकार दिये हैं—१. धरम खण्ड, २. गिआन खण्ड, ३. सरम (श्रम) खण्ड, ४. करम-खण्ड, ५. सचखण्ड या निजखण्ड. प्रथम चार खण्डों की रचना परिवर्तनशील है, उनका स्वरूप देश और काल की सीमाओं में बंधित है, इसलिये वहाँ काल का राज्य है. सचखण्ड अकाल का स्थिर, अडिग, अपरिवर्तनशील और चिर-सत्य सिंहासन है, जहाँ पर निश्चिन्त भाव से बैठा हुआ वह अपनी अन्य खण्डों की रचना का तमाशा देखा करता है.

पहले खण्ड की रचना का स्वरूप गुरु नानक इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं[1]—"पर्वतों, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश, से प्रथम खण्ड की रचना की गई है, जिस में ६ ऋतुओं, सात वारों और १५ पाक्षिक तिथियों के अटूट क्रम की स्थापना हुई है. उसमें अनेक नामों, रूपों, जातियों और पुरुषों का उत्थान हुआ. स्वयं वह चिर-सत्य सत्य-सिंहासन पर बैठा जीवों की कर्मगति का तमाशा देखता है. वहाँ उसकी कृपा-दृष्टि से जीव के दुष्कर्मों के ठीक भी अलग किये जाते हैं. इस खण्ड में सब प्रकार के झूठे-सच्चे जीव विद्यमान हैं, परन्तु दरगाह में पहुँच कर सब उसी का जाप करते हैं." प्रस्तुत मण्डल हमारा यह इहलोक ही है. गुरु नानक ने इसे धर्मलोक कह कर इसलिये पुकारा है कि यहाँ से ही जीव सत्कर्मी बन कर परमेश्वर की खोज शुरू करता है. यही वह खण्ड है जहाँ सच्चा मार्ग-दर्शक मिल जाने से ऐसा प्रशस्त मार्ग हाथ लगता है कि एक एक कर सब खण्डों और लोकों को पार करता हुआ मुक्त-जीव अपने वास्तविक घर सचखण्ड में पहुँच जाता है. किसी सद्गुरु का चेताया जीव जब मोक्ष की तैयारी करता है तो यहाँ से चलकर दूसरे स्थान "ज्ञान लोक" में पहुँचता है. गुरु नानक के मतानुसार धर्मखण्ड का यह नियम है कि वह ज्ञानलोक के कर्तव्यों का परिचय जीव से करवाता है. "उसमें अनेक प्रकार की वायुएँ, पानी

---

१. राती रुती थिती वार. पवण पाणी अगनी पाताल. तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल. तिसु विचि जीअ जुगति के रंग. तिन के नाम अनेक अनंत. करमी करमी होइ वीचारु. सचा आपि सचा दरबारु. तिथै सोहनि पंच परवाणु. नदरी करमि पवै नीसाणु. कच पकाई ओथै पाइ. नानक गइआ जापै जाइ. जपुजी पउड़ी ३४.

तथा अग्नियाँ हैं, कितने ही कृष्ण और महेश हैं, अनेक रूप-रंग के उच्च-स्तरीय जीव हैं. कर्म-काण्ड के अनेक आधार हैं, अनेक सुमेरु पर्वत हैं और न जाने कितने ध्रुव-भक्त वहाँ ज्ञान की खोज में तपस्या कर रहे हैं. वहाँ अनेक इन्द्र, चन्द्र और सूर्य हैं, उसमें अनेक मण्डल हैं, कितने ही सिद्ध, बुद्ध, और नाथ ज्ञान-प्राप्ति के पथ में वहाँ जमे बैठे हैं. ज्ञान खण्ड में कितने ही देवी-देवता, दानव और मुनि हैं, कितने ही समुद्र और उनसे प्राप्त होने वाले रत्न हैं. वहाँ अनेक तरह की वाणियाँ हैं, अनेक प्रकार की खानें हैं, अनेक बादशाह और राजे-महाराजे पड़े हैं. ना जाने कितने आत्म-सेवी वहाँ केन्द्रित हुए हैं, अतएव उन सबका कोई अन्त नहीं."[1] ज्ञानखण्ड के इस स्वरूप से गुरु नानक ने स्पष्ट कर दिया है कि धर्म-खण्ड के जो जीव कर्म-काण्डों, तपस्या, तर्क-ज्ञान तथा बौद्धिक-साधनाओं से उभरने का प्रयास करते हैं, वे इस खण्ड में फंसे रह जाते हैं. आगे सचखण्ड तक जाने के लिये उन्हें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की आवश्यकता पड़ती है. गुरु नानक ने यह भी स्पष्ट किया है कि ज्ञानखण्ड से आगे निकलने के मार्ग में आने वाली कठिनाई स्वयं ज्ञान की प्रचण्डता ही है. तर्क के उस अनावश्यक वातावरण में जीव उलझता जाता है. वह उस निश्चय तक नहीं पहुँच पाता कि उसका गंतव्य कहाँ है. बेचारा करोड़ों प्रकार के शब्द-रस और विलास में ही, जो ज्ञानखण्ड की विशेषताएँ हैं, निमग्न हो सच्चाई को गँवा बैठता है.[2] तीसरे खण्ड का वर्णन सरम-खण्ड के नाम से किया गया है. सरम से अभिप्राय है श्रम. ज्ञान प्राप्त कर विवेक की अनन्तता के पश्चात् जीवों को आगे बढ़ने हेतु स्वयं मेहनत करने की आवश्यकता पड़ती है. श्रम के इस खण्ड में वह मेहनत से सच्चाई की खोज करता है. मेहनत में आनन्द होता है, अतः इस खण्ड की वाणी अति सुन्दर, मीठी और सरस होती है. वहाँ की रचनायें या कृतियाँ भी सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमायें होती हैं. अद्वितीय सौन्दर्य वहाँ छाया रहता है. सच तो यह है कि वहाँ की बातें अकथनीय, अनिर्वचनीय हैं. यह रहस्य और भेद का दृष्टिकोण है, यदि कोई उस रहस्य को खोलने का यत्न करता है, तो उसे असफलता ही मिलती है. वह स्थान आत्मा और मन का शुद्धिकरण स्थान है.

---

१. धरम खंड का एहो धरमु, गिआन खंड का आखहु करमु.
केते पवण पाणी वैसंतर, केते कान महेस. केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस.
केतीआ करम भूमी मेर, केते केते धू उपदेस. केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस.
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस. केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद.
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद. केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु.
जपुजी पउड़ी ३५.

२. गिआन खंड महि गिआनु परचंडु. तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु. जपुजी प० ३६.

यहाँ आत्मा निष्कलंक हो जाती है, बुद्धि की अर्थ-प्रधानता का नाश हो जाता है, विश्वास और संकल्प के नेत्र उघड़ते हैं. (श्रम इन सब स्थितियों का उत्तरदायी है). देवताओं और महान सिद्ध योगियों को भी वास्तविक ज्ञान मेहनत से इस खण्ड में ही होता है. कोरा ज्ञान मनुष्य को अहंकार देता है, जबकि श्रम नम्रता का जनक है; और आध्यात्मिकता के मार्ग पर अहंकार से छुटकारा नहीं, विनम्रता के रस की आवश्यकता पड़ती है.[1]

करम (दया, कृपा, रहम, बख्शिश) खण्ड में व्यक्तिगत गुणों का कोई महत्व नहीं होता. जो जीव यहाँ प्रवेश करते हुए भी अपने को उस मालिक-परमेश्वर की दया का पात्र बनाते हैं, अपने को उसकी कृपा के अधीन रखते हैं, वे इस खण्ड की शोभा बढ़ाते हैं, क्योंकि वे अकाल-पुरुष के अधिक निकट आ जाते हैं. इस समीपता को पाकर यदि जीव उसका गुणगान करता है, उसे अपने मन में बसा लेता है, तो करमखण्ड में रह कर उसकी निकटता का बन्धन भी नष्ट हो जाता है—वह सचखण्ड का अधिकारी बनता है, और अकाल-पुरुष से साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है. यही जीव का वास्तविक लक्ष्य है. "करम-खण्ड (दया का देश) की वाणी बड़ी जोरदार है, उसकी प्रत्येक स्थिति शक्यता की द्योतक है; आध्यात्मिक बल की शक्ति के सिवा और कुछ नहीं. यहाँ तक पहुँचने वाले जीव निश्चय ही महाबली-शूरमा होते हैं. उनकी शूरता किसी युद्ध-क्षेत्र में बन्दी-रूप धारण करने में नहीं, मालिक को हृदय में बसाने में निहित है, "तिन महि राम रहिआ भरपूर". वे परमात्मा की महिमा रूपी सीता में लेकर अपने चित्त को जोड़े रहते हैं. उनके स्वरूप का वर्णन अगम और दुष्कर है. वे अमरलोक वासी हो, चिर-जीवी बन जाते हैं, उनके अन्दर में ईश्वरीय प्रकाश व्याप्त रहता है, और वे कभी माया के धोखे में नहीं पड़ते. वे वास्तविकता को पहचानते हैं. करम-खण्ड वह देश है, जहाँ लोक लोक के भक्तजीव परमानन्द को प्राप्त करते हैं."[2]

---

१. सरमखण्ड की बाणी रूपु, तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु.
ता किआ गला कथीआ ना जाहि, जे को कहै पिछै पछुताइ.
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि, तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि. जपुजी प० ३६.

२. करम खण्ड की बाणी जोरु, तिथै होरु न कोई होरु.
तिथै जोध महाबल सूर, तिन महि रामु रहिआ भरपूर.
तिथै सीतो सीता महिमा माहि, ता के रूप न कथने जाहि.
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि, जिन कै रामु वसै मन माहि.
तिथै भगत वसहि के लोअ, करहि अनन्दु सचा मनि सोइ. जपुजी प० ३७.

—— ८.

करमखण्ड से भी ऊपर स्वयं अकालपुरुष निवास है. गुरु नानक ने उसे सचखण्ड कह कर पुकारा है. उसी लोक में स्वयं अकाल-पुरुष सत्य के स्वरूप और निरंकार सिंहासन पर विराजमान है और अपनी रचना के खेलों को देख देख कर प्रसन्न होता रहता है. वहाँ अनेक खण्ड-ब्रह्माण्ड, मण्डल-पुरी, खण्ड और तारा मण्डल दृष्टिगत होते हैं: वे सब उसी सर्वेश की सेवा में संलग्न हैं. कोई उसका वर्णन करना चाहे, तो वह चमत्कार है, अनन्त है, वहाँ वर्णन की पहुँच असम्भव है. वहाँ भाँति भाँति के लोक हैं, भिन्न वस्तुओं के स्थान हैं और जिसको जैसी आज्ञा मिलती है, वह वैसी क्रिया-पूर्ति करता है. स्वयं निरंकार रह कर, अपनी सब रचना को आनन्द-युक्त देखता और प्रफुल्लित होता है. गुरु नानक कहते हैं कि उसका वर्णन करना सहज नहीं, लोहा चबाना कठोर है! जपुजी साहिब के अन्तिम श्लोक में गुरु नानक ने जीवों के जन्म-मरण में होने, तथा मुक्ति-जीवन प्राप्त कर सत्पुरुष में लीन होने का प्रकार स्पष्ट किया है. यों तो संसार में जन्मने वाला प्रत्येक पुरुष प्राकृतिक नियमों के अधीन जन्मता है और नश्वर होने के कारण मरता है, दोनों की धारा-धाराएँ बराबर होती हैं, परन्तु [illegible] अपना अपना ही उपयुक्त होता है. संसार में सभी जीवों की अच्छाइयों-बुराइयों का लेखा देखकर पुनः जन्म-मरण के चक्कर में भेज दिया जाता है और [illegible] अमर-लोक गामी होती हैं. गुरु नानक लिखते हैं, सब जीवों का जन्म, पोषण और विकास ऐसे है—पवन उसका गुरु है, क्योंकि केवल वायु द्वारा वाणी उत्पन्न कर दिया ही जाती है; पानी पिता है, केवल जल से ही उत्पत्ति सम्भव है. धरती महत्, माननीय माता है, केवल उसी से ही सबका उत्पादन होता है. पुनः रात्रि धाय है, जिसकी गोद में विश्व विश्राम करता है; दिवस बच्चों को खिलाने वाली दाई है, उसकी गोद में संसार के सब जीव भिन्न प्रकार से खेल रहे हैं. अभिप्राय यह कि ऐसे ही माता-पिता से जन्म धारण कर, ऐसे ही गुरु से दीक्षा लेकर, ऐसे ही धाय की गोद में विश्राम कर और ऐसे ही दाई के साथ खेलते हुए विभिन्न कर्मों से फिर भी जुदा जुदा हैं. उनके अच्छे और

---

१. सचखंडि वसै निरंकारु, करि करि वेखै नदरि निहाल.
तिथै खंड मंडल वरभंड, जे को कथै त अंत न अंत.
तिथै लोअ लोअ आकार, जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार.
वेखै विगसै करि वीचारु, नानक कथना करड़ा सारु. जपुजी पउड़ी ३७.

—— १.

बुरे कर्मों का अभिलेख धर्मराज (काल-शक्ति) के सन्मुख पढ़ा जाता है और दूर या समीप के निज-कर्मों के भोगफल का निर्णय सुना दिया जाता है. कोई ईश्वर की समीपता पा लेता है और कोई उससे और भी दूर हो जाता है।

स्पष्ट है कि काल अति निम्न स्तर की एक मायावी शक्ति है और अकाल वह महान शक्ति है, जिसका नाम, रूप, गुण, आयोजन, कुछ भी, शब्दों की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता. गुरु नानक अकाल-पुरुष की स्तुति में कहते हैं," तू अकाल है, काल नहीं, अनादि और अनन्त है, इसीलिये जन्म-मरण से परे है. तू महान, अगम और अगोचर है. तेरी वास्तविकता को पहचानना बड़ा कठिन है. काल के फंदे इतने विस्तृत हैं, कि उस की बाहरी सीमा तक दृष्टि ले जाना भी समस्या बन रहा है. रूप और शोभा का प्रतीक तेरा शब्द अति मनोहर और जग-स्पृहता को शीतल करने वाला है. जो कोई सहज भाव से लिव लगाये, तेरा शब्द सुने और उसके रहस्य को समझे, वह काल-मुक्त हो सकता है. तू तीन लोक से दूर (संकेत है कि तीनों लोक काल-शक्ति द्वारा शासित हैं, परन्तु अकाल-पुरुष उससे भी उच्च पदासीन है) चौथे पद, तुरीया-अवस्था में विराजता है. केवल तू जन्म-मरण का अपवाद है. तूने काल-विकराल को वश किया है. तेरी निर्मल ज्योति सम्पूर्ण जग-जीवन में प्रकाश फैला रही है, कण-कण में समाई है, परन्तु माया के पर्दे के भीतर से जीव तुम्हें पहचान नहीं पाते. पहचानने के लिये तेरी कृपा और सतगुरु के अवलम्ब की आवश्यकता है"। जीव की काल के सामने एक नहीं चलती. वह मरकट की नाईं काल-प्रकृति के इशारे पर चलता है. ब्रह्म या अकाल-पुरुष की प्राप्ति जीव में एक सजीव जिज्ञासा की अपेक्षा रखती है, जिसकी तृप्ति किसी सच्चे महात्मा के चरणों में बैठ कर अनुभव की उपलब्धि से ही सम्भव है.

---

१. पवणु गुरु पाणी पिता, माता धरति महतु. दिवसु-राति दुइ दाई-दाइआ खेलै सगल जगतु.
चंगिआईआ, बुरिआईआ, वाचै धरमु हदूरि.
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि. जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि.
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि. जपुजी अन्तिम श्लोक.

२. तू अकाल-पुरखु नाही सिरि काला. तू पुरखु अलेख अगंम निराला.
सत संतोखि सबदि अति सीतलु. सहज भाइ लिव लाइआ.
त्रै वरताइ चउथै घरि वासा. काल बिकाल कीए इक ग्रासा.
निरमल जोति सरब जगजीवनु, गुरि अनहद सबदि दिखाइआ. ८.
मारू पृ० १०३८.

—— १०.

२- अकाल पुरुष का स्वरूप

वह चेतन तत्व, जो अपने में परिपूर्ण है, विश्व का रचयिता होने के नाते स्वयं अपरिवर्तनशील तथा देश काल की सीमाओं से परे है, जो अखण्ड सत्य का प्रतीक है, जो अपने में सबको और सबमें अपने को बसाये हुये है, वही अकाल-पुरुष, सतपुरुष, निरंजन, ब्रह्म या परमेश्वर कहलाता है. गुरु गोविन्द सिंह के युग में उसी को "सतिश्री अकाल" भी कहा गया. सतिश्री अकाल में उसके स्वरूप के तीन मुख्य पहलू दिये गये—सत्य (The Truth) श्री (The Good), तथा अकाल (The Endless). फिर भी तथ्य यह है कि उसका सामान्य रूप हमारे लिये बरतन के पानी जैसा रहा है. जैसे पानी भिन्न रूप के बरतनों में पड़ कर भिन्न रूप धारण किये दिखता है, यद्यपि उसकी वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं आता, वैसे ही सर्वव्यापी ब्रह्म हमारी आँखों पर लगी शीशे की टट्टी के कारण (माया) सृष्टि के भिन्न पहलुओं में बस भिन्न रूपों में दिखाई देता है. अन्धों के हाथी की तरह जिसने जैसा अनुभव किया, वह ब्रह्म को वैसा ही निरूपित करने लगा—यद्यपि ब्रह्म उन निरूपणों में से कोई भी नहीं, और वह सब कुछ भी. अनुभवी महापुरुषों ने समय समय पर उसके अनेकानेक पहलुओं का आभास प्राप्त किया और जन-साधारण के मार्ग-प्रदर्शनार्थ ब्रह्म के उस विशिष्ट स्वरूप-गुण का निर्देश करते रहे. परन्तु वे सब यह भी मानते थे कि उनके द्वारा निर्देशित भाव ही ब्रह्म नहीं, "वह" और भी बहुत कुछ है. उस असीम का कोई भी सीमित रूप या अनुभव उसकी सम्पूर्ण परिभाषा कदापि नहीं बन सकी. इसीलिये महात्माओं ने सतपुरुष का सर्वसम्मत विवरण करते हुये भी यही कहा कि वह अनिर्वचनीय-सत्य है, आध्यात्मिकता का महानतम परन्तु अवर्णनीय सत्य है. उसे हमारी शाब्दिक परिभाषाओं की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता. अनुभवी महात्मायें उसको पहचान कर परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करती हैं तो भी वे दूसरे को उसकी वास्तविकता पूर्णतया: बता नहीं सकतीं, अनुभव करा सकती हैं. यही कारण है कि केवल विश्वास लाने वाले कुछ व्यक्ति ही उन महात्माओं का अनुसरण कर पाते हैं और भविष्य के अधिकारी बन सतपुरुष को पा जाते हैं. इसीलिये तो विश्वास उसकी प्राप्ति के मार्ग की पहली अर्हता है. गुरु नानक भी उन्हीं महान ऐसे अनुभवी मुक्तात्माओं में से एक थे, जिन्होंने उस "एक" को केवल पहचाना और अनुभव किया-कराया ही नहीं, प्रत्युत उसका प्रतिनिधित्व भी उन्हें मिला था. उन्होंने लोक-कल्याणार्थ उस सतपुरुष के स्वरूप-चित्र, जहाँ-तहाँ अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं. वे स्वीकार करते थे कि मालिक के गुण अकथनीय हैं, तो भी जिज्ञासुओं को समझाने के लिये

उनमें वास्तविकता के प्रति भाव उत्पन्न करते रहेंगे, सत्पुरुष के अनेकानेक गुणों का उल्लेख वे अपने पदों में करते रहे हैं. स्वरूप और गुणों का वर्णन तो न आज तक किसी ने किया है, न कर सकेगा; हम भी यहाँ गुरु नानक द्वारा निर्दिष्ट गुणों में से कुछेक मुख्य पहलुओं का विवेचन मात्र करेंगे, ताकि विश्व-भूमि में हम जान सकें कि अकाल-पुरुष की सत्ता के सम्बन्ध में गुरु नानक का क्या मंतव्य था.

क—अनादि-अनन्त

उक्त तत्व का न आदि है न अन्त. किसी ने उसका निर्माण नहीं किया, वह स्वयंभू है. आरम्भ में केवल वही था. वह सत्य है, सत्य का अन्त नहीं होता, अतः प्रलय के बाद भी उसका अस्तित्व यों ही बना रहता है. दृश्यमान जगत मिथ्या है, झूठा और नाशवान हो सकता है, परन्तु प्रभु का अस्तित्व सत्य ही होगा. सत्पुरुष परम-सत्य है, उससे बड़ा और कोई नहीं. गुरु नानक लिखते हैं कि वह आदिपुरुष है; विश्व से पूर्व से उसका अस्तित्व है और वह अपार, अकूल तथा अथाह भावनातीत है. वह सर्वव्यापी परब्रह्म, जिसका यहाँ चतुर्दिक प्रसार दिखता है, मन और ज्ञानेन्द्रियों से बहुत परे भी रहता है. वह युग युग से चला आ रहा है, उसका कोई आरम्भ नहीं, न अन्त होगा. उसके अवतार रूप अब हुए हैं? गुरु नानक ने जपुजी साहिब में भी लिखा है कि बाहरी आकारों से सत्पुरुष का निर्माण असम्भव है, किसी भी निर्माता से उसके अस्तित्व-अर्जित होने का कोई सम्बन्ध नहीं. वह तो स्वयं उदित है, माया रहित वाहिगुरु है, इसलिये उसके बनने-बिगड़ने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता. और भी जब यह सृष्टि न थी, धरती-आसमान नहीं, ग्रह-नक्षत्रों की रचना भी अभी न हुई थी, नर-नारी, जाति-भेद, युग-युग कुछ न था, तब भी अकाल-पुरुष की सत्ता विद्यमान थी. वेदों, पुराणों या स्मृतियों में उसके उद्भव-अन्त की गाथा नहीं कही जा सकी, अपने रहस्यों का वक्ता-श्रोता

१. प्रभु जोहबी अनादि दुरु अवरपारी धारे राम.
अगम अगोचर अपर अपारा पारब्रहमु परधानो.
आदि जुगादि है भी होसी अवरु झूठा सभु मानो. — म:१, आसा पृ ४४०.

२. थापिआ न जाइ,
कीता न होइ.
आपे आपि निरंजनु सोइ. — जपुजी पउड़ी ५.

वह स्वयं है. अदृश्य होते हुये भी स्वेच्छा से वह किसी पर भी प्रकट हो सकता है। खण्ड-ब्रह्मण्ड, पातालादि तो उसकी माया के स्वरूप हैं, जो आवश्यकतानुसार प्रकट हो गये हैं"। बाइबल में भी उक्त गाथा सदृश: इसी प्रकार कही गई है," ईश्वर के अतिरिक्त वहाँ कोई न था. उसने रचना देखने की इच्छा प्रकट की, और उसकी माया का सत्वर प्रारम्भ हुआ"। अभिप्राय यह कि जब उसके गुणों का अन्त नहीं, वह बड़े से बड़ा है, उसकी थाह कोई नहीं ले सका, उसकी कृपाओं और कार्यों का कोई अन्त नहीं, तो भला उस का अन्त क्योंकर हो सकता है ? वह अनन्त है, अनादि है.

सत्पुरुष : निर्गुण रूप

आदिग्रंथ के एक पद में (पद १:६, सोरठ म०१, पृ०५९७), जहाँ सत्पुरुष को काल-कर्म रहित, अयोनि तथा सैभं (स्वयंभ या स्वयंभु) कहा गया है, वहाँ रूप, वर्ण, रेखा का अभाव भी उसमें दिखाया है. भाव-भ्रम रहित कह कर उसकी अनुपमता की ओर संकेत किया गया है, जिसे कबीर ने "जाके मुख माथा नहीं, नहीं रूप कुरूप; पुहुप बास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप" कह कर वर्णित करने का उद्योग किया था. ब्रह्म को निर्गुण या निराकार कहा गया है. उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि उसके गुण हैं ही नहीं— सभी गुण, सभी आकार उसी के तो हैं, परन्तु उसके किसी एक गुण या आकार की सीमा में बद्ध न होने के कारण उसे निर्गुण-निराकार कहा गया है. वेदों ने इसी दृष्टिकोण से उसे "नेति, नेति" यह नहीं, यह नहीं कह कर विश्लेषण का असफल प्रयास किया था. सम्भवतः वैदिक ऋषियों-मुनियों का यह मत रहा हो कि ब्रह्म "केवल यह नहीं; "मात्र वह नहीं", वह तो सर्वस्व है. ऐसे में ब्रह्म का स्वरूप "नेति" की अपेक्षा "अस्ति, अस्ति" में परिपूर्णतर दीख पड़ता है. वह इसलिये निर्गुण है कि सर्वगुण सम्पन्नता उसकी विशेषता है. वह इसलिये निराकार है कि सभी आकार उसी में से ही उत्पन्न हुये हैं. प्रश्न उठता है कि यदि वह निराकार होता तो आकार कहाँ से बनते? यदि वह निर्गुण है तो सृष्टि के भिन्न गुण कहाँ से आये? सृष्टि की रचना उसने क्योंकर की? ब्रह्म अकाल-पुरुष के

---

१. ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई, अवरु न दीसै एको सोई.
नारि पुरखु नहीं जाति न जनमा, ना को दुखु सुखु पाइदा. १५:४.
वेद कतेब न सिम्रिति सासत, पाठ पुराण उदै नहीं आसत.
कहता बकता आपि अगोचरु, आपे अलखु लखाइदा. १५:१२.
विरले कउ गुर सबदु सुणाइआ, करि करि देखै हुकमु सबाइआ.
खंड ब्रहमंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटीआइदा. १५:१५. मारू सोलहे. पृ० १०३५-३६.

२. There was none but God. He said, "Let there be light and there was light". Bible.

अन्तर से ही जग उत्पन्न हुआ है; यही तो उसकी व्यापकता है कि अनेक गुणों-आकारों नामों-रूपों को जन्म देकर भी वह स्वयं किसी विशिष्ट नाम-रूप, गुण-आकार से सम्बद्ध नहीं. यही कारण है कि गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म तथा कबीर का अनुकरण करने की अपेक्षा अकाल-पुरुष को भिन्न कोण से देखा. उसे इसलिये निर्गुण माना कि वह सगुण नहीं हो सकता है. उसे [illegible] अवतार कहा, क्योंकि उसकी अनेकता इतनी व्यापक हो गई है कि कभी भी कोई घटकर कुछ आत्मा [illegible] सा लगती है. उसके सम्बोधन के साथ "[illegible]" का विशेषण लगाने का तात्पर्य सम्भवतः यही था कि उसके गुणों और आकारों की बहुलतापूर्णता को [illegible] और सीमित कर उसकी स्वतंत्र पूर्णता और गुणाकार राहित्य में विश्वास बढ़ाया जा सके. सिक्ख गुरुओं ने अकालपुरुष को निर्गुण स्वीकार करते हुए भी उसके सगुण स्वरूप की उपेक्षा नहीं की. वे वेदान्तियों की तरह दृष्टि से मायावी प्रकार को झूठा तो मानते हैं, परन्तु रूप नहीं. उनकी रचना निरङ्कार की इच्छा से हुई है, इसी से वह रूप अवास्तव नहीं हो सकता, उसका झूठा होना इसलिये सम्भव है कि रचयिता ने केवल कारीगरी के लिये विश्वात्मक रूप में उसका निर्माण किया था, और प्रायः विश्वात्मक कृत्रिम और अयथार्थ हुआ ही करते हैं. फिर भी नानक ने गुरुजी ने "झूठा जग की यही कारा" कहकर विश्व के अन्ध-मण्डलों की असत्यता स्वीकार की है, परन्तु क्योंकि वह हमारा लक्ष्य नहीं, उसे साथ बांधे रखना मूर्खता होगी, इसलिये लक्ष्य रूप में मायावी सीमायें निश्चय ही झूठी मानी जायेंगी. निर्गुण-सम्प्रदाय के सन्त-महात्माओं ने इसी उद्देश्य से दृष्टि को झूठा कहकर जीव को सत्य लक्ष्य ढूँढने की प्रेरणा दी है—अन्यथा सिद्ध-विचारकों की यह आमभूमिका यहां बैठा स्पष्ट हो जानी चाहिये कि गुरु साहिब विश्व को वेदान्ती रूप में झूठा मैं रूप और ब्रह्म को वेदान्तिक दृष्टिकोण से निर्गुण और निराकार स्वीकार नहीं मानते. उनके मतानुसार विश्व इसलिये झूठा है कि वह विनाशी आत्मा का लक्ष्य नहीं, और ब्रह्म इसलिये निर्गुण है कि वह किसी एक विशिष्ट गुण की सीमा में बन्ध नहीं सकता. तभी तो गुरु अर्जुन ने जोर देते हुए लिखा है कि वह सम्पूर्ण निराकार है, पर साकार भी है, वह निर्गुण है परन्तु उसमें सगुणता का अभाव नहीं. वह एक का बखान एक रूप में भी किया है और अनेकता भी उसी प्रकार है. परमेश्वर ने स्वयं गुणों को [illegible] आकार बनाये हैं, परन्तु फिर भी वह को एक ही रूप में निरखा गया है; उसके पीछे भी [illegible] ही सीमित आत्मनिर्भरता है. सगुण निर्गुण दोनों रूपों का प्रकार उनकी दृष्टि में उपयुक्त है. उन्होंने [illegible] अपनी [illegible] स्तुति की है, भावनाप्रधानता में अतिशय [illegible] है और देवी-देवता स्वीकार—[illegible] अपने अनुरूप से

—— १४.

विभूषित बनाई गई है. इन सबका उत्तर रचयिता के निर्गुणाकार को स्वरूप देता है, जिससे वह निर्गुण होते हुये भी सगुणित दिखने लगता है.

ग—सर्व-व्यापक एवं सर्वशक्तिमान

पीछे संकेत दिया जा चुका है कि अकाल पुरुष विश्व का रचयिता है और अपनी विश्व-मंच का दर्शक बना अणु अणु में व्याप्त है. वह एक है, परन्तु सबसे खण्ड-खण्डों में व्यापा हुआ है. वह हर जीव में है, प्रकृति के प्रत्येक अंश में विद्यमान है, परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम उसे देख नहीं पाते. केवल सतगुरु ही ज्ञानदीपक देकर उस रहस्यमय तत्व को दिखाने का सामर्थ्य रखता है.[1] जिसने उसके व्यापकत्व का अनुभव किया है, वह जानता है कि अकालपुरुष सब कुछ स्वयं ही है, उसके बाहर कुछ नहीं. ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञप्ति, (Informant, Informed and the Information) वह सब स्वयं ही है. गुरु नानक ने राग सिरी में "आपे"[3] के अन्तर्गत उसका (ब्रह्म का) सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है". "वह स्वयं गुण है, गुण कहने और विचारने वाला भी वही है. रत्न, उसकी परख और उस की ऊंची कीमत, सब कुछ स्वयं है. सम्मान देने वाला वह है, सम्मान भी वही है. निर्मल हीरा वह है, हीरे की ज्योति वह है; उजला मोती है, भक्त-बसीठ है—वह सर्वत्र है, घाट घाट में व्याप्त है, अव्यक्त होते हुये भी गुरु-कृपा से वह प्रकटता है. वह सागर है, सागर का आर-पार है और साथ ही पार लाने का बोहिथा (पोत) भी वही है. मार्ग वह है, साधक भी है और शब्द को सुन कर पथ की पूर्ति की सल्लीनता भी उसी में निहित है, आदि-आदि."[4] इस वर्णन से यह तो निश्चित हो ही जाता है कि वह सब में छिपा है, इसीलिये सर्व-व्यापक है. "सरब जीआ जीअ जोति तुमारी, जैसी प्रभु फुरमाई है", (मारू सोलहे १) लेखक गुरु नानक स्वभावतः ही उसके सर्व-व्यापकत्व में विश्वास रखते होंगे. उनका कथन है कि जहाँ तक मानव-दृष्टि उठती है, एक उसके सिवाय कोई दूसरा दिख ही नहीं पड़ता. वह सब वस्तुओं, जगहों और आकारों में समाया हुआ है, प्राणियों की अन्तरात्मा उसी की ज्योति से प्रकाशित है, वह सब जीवों में व्याप्त है.[5]

---

१. निरंकार आकार आपि निर्गुण सरगुण एक. एकहि एक बखानणो नानक एक अनेक.
   ओई गुरमुख कीनो अकारा. एकहि सूत परोवनहारा.
   भिन भिन त्रैगुण बिसथारं. निरगुण ते सरगुण द्रिसटारं. १:१. गउड़ी म०५. पृ०२५०.
२. एक माहि सरब सरब माहि एका, एह सतगुरु देखि दिखाई. ८:५. रामकली म० पृ०९०७.
३. वही स्वयं. ४. राग सिरी म०१. पृ० ५४.
५. अंतरि नदरि करे जा देखा दूजा कोई नाही. एको रवि रहिआ सभ थाई, एकु वसिआ मन माहि.
   आसा पटीलिखी १२. पृ०४३२.

वह अपने में इतना सम्पूर्ण है कि उसके अतिरिक्त सब शक्तियाँ शून्य हैं. ध्यान रहे, ब्रह्म के सर्वशक्तिमान होने के सम्बन्ध में गुरु नानक का दृष्टिकोण शत-प्रतिशत अद्वैतवादी सिद्धान्त से मेल खाता है. माया तो धोखा है, शक्ति नहीं. अतः यदि उसकी किसी शक्ति का रूप दिखाई पड़ता भी है, तो वह सत्पुरुष की इच्छा के सामने शून्य हो जायेगा. यहाँ माया की शक्ति को झूठी कहनेका तात्पर्य केवल ब्रह्म के सम्मुख उसकी असफलता दिखाना है. गुरु नानक ने लिखा भी है कि अकाल-पुरुष की आज्ञा के बाहर कभी कुछ नहीं होता, जो उसे अच्छा लगता है, वह करता है. उसके कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता, वह बादशाहों का भी शाहंशाह है, सब उसकी सत्ता के सम्मुख नतमस्तक रहते हैं![1] ब्रह्म की सर्वव्यापकता और शक्ति का सुन्दर स्वरूप गुरु गोविन्द ने अकाल-उस्तत के १-२१ से २०-३० तकके विराट छन्दों में प्रस्तुत किया है. ईश्वर क्या है, कहाँ है और उसकी पहुँच कहाँ तक है, आदि बातों की अभिव्यक्ति दसम गुरु ने अत्यधिक अद्भुतता से की है. गुरु नानक ने भी सत्पुरुष की शक्ति का ऐसा ही रूप चित्रित किया है. "वह रचता है, नाश भी स्वयं ही करता है; प्राणियों के कर्म-कुकर्मों का निर्णय भी वह स्वयं ही है. वह निन्दक और गुणवर्द्धक है, मार्ग भी है, मार्ग पर चलाने वाला भी है. वह दाता और चतुर है. मनाने के उपाय भी खूब जानता है. पवन, पानी और अग्नि के जन्म भी उसी में से प्रगटे हैं और वह उनके मिलाप से रचनाकार का पद भी पाये हुये है. आनन्द-पूर्ण में वह है. ध्यान-प्रधान में रम रहा है; जीव वह है और मुक्ति-मार्ग का शोधक गुरु भी वह स्वयं ही है. गुरु नानक कहते हैं कि जैसे शक्तिशाली ईश्वर-चरण से प्रीति बढ़ाने से काल के फंद उस ओर कभी नहीं पड़ते."[2] अस्तु, गुरु नानक भी अन्य सन्त-महात्माओं की तरह पार-ब्रह्म-परमेश्वर को सर्व-व्यापक और सर्वशक्तिमान मानते हैं.

---

१. जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई.
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई. जपु पृ०९.

२. आपि उपाए, आपि खपाए. आपे सिरि सिरि धंधै लाए. आपे वीचारी गुणकारी,
आपे मारगि लाई है.१. आपे दाना, आपे बीना, आपे आपु उपाइ पतीना.
आपे पउणु पाणी बैसंतरु आपे मेलि मिलाई है.२.
आपे ससि सूरा पूरो पूरा. आपे गिआनि धिआनि गुरु सूरा.
कालु जालु जमु जोहि न साकै साचे सिउ लिव लाई है. मारू सोलहे. पृ०१०२०.

५—सर्वज्ञाता—सर्वप्रदाता

सर्वव्यापक ब्रह्म का सर्वज्ञाता होना स्वाभाविक है. कण कण में व्यापक वह आदि-तत्व, कहाँ क्या है, का जानकार तो होना ही चाहिये. पुनः जो कुछ भी होता है, वह उसकी आज्ञा से कुछ भी होता है, उस सम्बन्ध में उसका ज्ञाता होना निर्विवाद-सिद्धान्त के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता. गुरु नानक का कथन है—

पपे पातिसाहि परमेसर वेखणु की परपंच किया.
देखै बूझै सभु किछु जाणै अन्तर बाहर रवि रहिआ.|| (आसा पटी०२४. पृ. ४३३)

उसके लिये ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं रहता; वह सदैव अपने पुकारने वाले का सहायक है और जिज्ञासु का अवलम्ब. इसीलिये वह सर्वप्रदाता भी है. जिसे जो चाहे, वह देता है.—आवश्यकता है उस पर विश्वास लाने की, उससे प्रेम बढ़ाने की और उसकी आराधना करने की. वह महान है, जिस पर मन आ गया, अपनी कृपाओं से उसे मालामाल कर दिया. वह कुपथ पर जाने वाले को भी देता है. परन्तु उसकी सर्वोच्च महानता, अपने भक्तों की पुकार पर, उनके उद्धार के लिये, समय समय पर अपने प्रतिनिधियों को भेजने में साकार हो उठी. गुरु नानक ने लिखा है, "वह दाता है, देते समय ऊँच-नीच, जाति-पाँति नहीं देखता. महान की सम्पदा महानता है, वह इच्छानुसार जिसे चाहे दे सकता है. वह अपनी आज्ञा का अक्षर पालन करवाता है, क्षण भर भी ढील नहीं होने देता"[१]

अकाल-पुरुष दातृ-शक्ति है. उसे पाकर किसी की कोई अन्य आवश्यकता ही नहीं रह जाती. वह निर्धनों का धन है, समाज के अपमानित पात्रों का सम्मान है; अन्धों का प्रकाश, भटकों को भोजन और गिरों का सहारा है; वह भूलों को मार्ग दिखाता है, पतितों का उद्धार करता है, दुखियों का दुख हरण करता है और अपने भक्तों को अपना सर्वस्व सौंप देता है. वास्तव में होम, यज्ञ, तर्पण, और अनुष्ठान करने वाले कर्मकाण्डी तथा जप, तप, और आडम्बर रचने वाले तपस्वी या महन्त, उसे दातृ-शक्ति से प्राप्ति का सुमार्ग नहीं खोज सके. केवल सत्गुरु के बताये जीव ही उसको पहचान कर दाता के कृपा-पात्र बन सकते हैं, ऐसा गुरु नानक का मंतव्य है.

---

१. बखसीसा न भाखीं ने किसे कहा करेइ. वडे सभ बादसाहिआ, से आवे दे देइ.
हुकमु सवारे आपणे चसा न ढिल करेइ. ३:६. आसा अष्टपदी पृ०४२.

२. निधनिया धनु, निगुरिआ गुरु, निमाणिआ तू मानु.
अंधुले माणकु गुरु पकड़िया, निताणिया तू ताणु.
होम जपा नहीं जाणिआ, गुरमति साचि पछाणि. ३:१०. मारू पृ०९९१.

६– सर्वकर्ता

अकाल-पुरुष ने अपनी इच्छा से शब्द द्वारा सृष्टि के विविध रूपों का निर्माण किया है. उसका कार-व्यवहार अपनी इच्छा (माया) को सौंप रखा है. परन्तु सृष्टि-नाटक का सर्व-शक्ति-सम्पन्न निर्देशक होते हुये भी, वह मंच की माया नटों के हाथ सौंप, अब दर्शकों में जा गया है, ताकि अपनी खेल रचना का आनन्द उठा सके. माया की शरारतों को वह जानता है, परन्तु रोचक होने के कारण चुप रहता है. "अति" होने लगे तो अब भी हस्तक्षेप करता है और एक कुशल निर्देशक की भांति अभिनेताओं और प्रबन्धकों का मार्ग-प्रदर्शन करता है. यह रूप उसका कर्ता रूप है. वह बनाता है, बदलता है, बिगाड़ता है और फिर बनाता है. जहाँ तक सृष्टि जाती है, उसी का प्रसार है. मिट्टी के एक साधारण कण से लेकर सर्वोत्तम चेतन निर्माण मनुष्य तक, सब उसी की देन है. उसने जहाँ जो ठीक समझा, वैसा किया; सृष्टि के जड़-चेतन या निर्जीव और सजीव तत्वों की भलाई बुराई भी उसने सब कुछ किया है. गुरु गोबिन्द सिंह लिखते हैं,[1] "वह सबका निर्माता भी है और विनाशक भी. वह अपने प्रिय जीवों को दुख-कठिनाइयों और दोषों का हरण करने वाला है, जो व्यक्ति भर भी उस करतार (सर्वदाता) को सच्चे हृदय से स्मरण करता है, वह काल-जाल से न्यारा हो जाता है"! पीछे ब्रह्म के अनादि-अनन्त रूप पर विचार करते हुये लिखा जा चुका है कि आरम्भ में केवल एक ब्रह्म ही था, धरती, आकाश, दिन-रात चान्द-सूर्य कुछ भी न था; ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई न था, मात्र एक ही अखण्ड समाधि थी. नारी-पुरुष, जाति-जन्म, दुख-सुख, वेद-शास्त्र, पुराण, उदय-अस्त, किसी का अस्तित्व न था. अचानक समाधि भंग हुई, दिल में निर्माण की इच्छा हुई और उसी एक (ब्रह्म) ने देखते ही देखते शब्द-शक्ति से खण्डों-ब्रह्माण्डों, ग्रह-मण्डलों तथा पातालों की रचना कर डाली.[2] निःसन्देह वह अद्वितीय रचयिता है. विशेषता यह है कि उसके बराबर सुंदर

---

१. सब को काल, सबन को करता, रोग सोग दोखन को हरता.
एक चित जिह इक छिन धिआइओ, काल फास के बीच न आइओ. अकाल-उसतति पद-१०.

२. अरबद नरबद धुंधूकारा. धरणि न गगना, हुकमु अपारा.
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु. ब्रहमा, बिसनु, महेस न कोई.
अवरु न दीसै एको सोई. नारि पुरखु नाहि जाति न जनमा.
ना को दुखु सुखु पाइदा.
बेद कतेब न सिम्रिति सासत. पाठ पुराण उदै नहीं आसत.
...... खण्ड-ब्रहमण्ड पाताल अरम्भे गुपतहु परगटीआइदा. मारू सोलहे १५. पृष्ठ
१०३५-३६.

निर्माण आप उसके सिवा कोई और नहीं कर सकता. विज्ञान चाहे कितनी भी उन्नति क्यों न कर ले, मनुष्य सरीखा सुन्दर, सुघड़ चेतन जीव कदापि उत्पन्न नहीं कर सकता. चन्द्र और सूर्य जैसे आकर्षक और अगणित ग्रहमण्डलों की रचना मनुष्य के बूते की बात नहीं. वे विचित्र और आश्चर्यजनक घटनायें जो प्रायः प्रकृति के क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं, वे उसकी अद्वितीयता का आकर्षक और दर्पित परिचय है. वह कर्तुं-अकर्तुं है. उसके बाहर कोई निर्माण सम्भव नहीं. वह स्वयं बनाता है और बनाने में आनन्द लाभ करता है. उसकी इच्छा सर्वोपरि है, सब उसी से बनता और होता है. गुरु नानक का कहना है कि संसार की समस्त क्रियायें उसपर आधारित हैं, विश्व की स्थापना और विनाश उसके कौतुक हैं![1]

उसने विश्व को जीवन-दान दिया है, भौतिक-शक्तियों का प्रसाद प्रदान किया है. मनुष्य के भीतर अन्तरात्मा दी है, स्वयं उसमें समाया हुआ है, और मृत्यु-पश्चात् विनाश का भय नाचने की आवश्यकता का अन्त करके उसे अमर स्थिति बख्शता हुआ अपने में ही मिला लेता है. उसने सृष्टि रची है, उसका नाश करके, फिर उसे अपने में मिला लेता है. वह सर्व-सर्वेश्वर है, उसके अतिरिक्त और कोई नहीं, यथा—

जिनी सिरी[2] साजी तिनी फुनि गोई[3], तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई![4]

ब- कृपालु और क्षमाशील

सतगुरु दयालु है. वह जीवों का परम-हितैषी है. ठीक है कि रचना की इच्छा से उसने अपने प्रिय जीवों को माया के हवाले किया, परन्तु उनका अहित वह कभी सहन न कर सका. जब जब उन्हें कष्ट में देखा, उनकी पुकार सुनी, वह उनकी रक्षार्थ व्याकुल हो उठा. अपने तक पुनः पहुँचने का मार्ग प्रदर्शित करने हेतु भिन्न भिन्न महात्माओं और सन्तों के रूप में वह अपने प्रतिनिधि भेजता रहा. भविष्य में भी यह क्रम टूटने का नहीं. उसकी कृपालुता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि परवशता में पड़े जीवों केलिये भी इहलोक में समस्त सुविधायें जुटाई हुई हैं. उसी की कृपा जीव के उद्धार का मात्र साधन है. उसकी कृपा अपार है, किसी बन्धन या नियम तक सीमित नहीं.

---

१. तुधु बाहरि किछु न होइ, तू करि करि देखहि जाणहि सोइ.
किआ कहीऐ किछु कही न जाइ, जो किछु अहै सभ तेरी रजाइ.
१.....करे कराये आपे आपि, नानक देवै थापि उथापि. ४:९. भैरउ पृ० ११२५.

२. सिरी= सृष्टि,
३. गोई= नाश की है, या अपने में मिलाई है.
४. पद ३:२१. आसा, पृ०३५५.

मूल से अपने बालक के श्लेषात्मक नाम से भी भगवान् को पुकार लेने वाले मुक्त हुये कहे जाते हैं. जैसे ही परमेश्वर-नाम निकालने का प्रयत्न करते निपट कुल्टा वेश्यायें भवसागर से पार हुई मानी जाती हैं, तो भला साधारण व्यक्ति उसकी कृपा का पात्र क्यों न बने ? वह अकाल-पुरुष तो गुण-वर्ण, जाति-वर्ण से परे सब पर अपनी वरद् हस्त की छाया सदैव किये रहता है. यह तो प्रेम का सौदा है, अतः उसकी कृपा-प्राप्ति में देर कैसी? देर तो प्रेम से याचना करने में है. यीशु का कथन है," तुम मांगो मिलेगा, द्वार खटखटाओ, अन्दर खोल दिया जायेगा". (बाइबल). अभिप्राय यह कि वह सदा से कृपा की बौछारें किये बैठा है, केवल योग्य पात्र की खोज है. जरा आगे बढ़ कर मांग लो, मिलने में कोई देर थोड़े ही है. अभी तो गुरु नानक अकाल-पुरुष के इस सहज-स्वभाव की बात बताते हुये कहते हैं कि गुरु में विश्वास लाने वाला जीव क्षण भर भी जो नाम-रंग में रंगा जाकर उसको पुकारे तो निश्चय ही वह स्वयं अपनी कृपा की ज्योति लिये उसका मार्ग-दर्शक बन आगे आगे चलने लगता है।

सत्पुरुष क्षमा का साकार रूप है. जिस पर भी कृपा करता है, उसके पूर्व-पापों को क्षमादान दिया जाता है. अभिप्राय यह कि कृपालुता और क्षमाशीलता दोनों सम्बन्धित गुण हैं, जिनका चरम-स्वरूप सत्पुरुष में विद्यमान है. काल शक्ति का कार्य-संचालन जीव के कर्म-अभिलेख और उस पर किये जाने वाले न्याय के अनुसार जन्म-मरण चक्र के रूप में होता है. परन्तु अकाल-पुरुष के दरबार में जीवों के भले-बुरे कर्मों पर दृष्टिपात नहीं होता; जिसने क्षण-भर केवल भी सच्चे दिल से उसे पुकारा, उसने लाखों पापों को एक ही क्षमा-दृष्टि से धूल में मिला दिया. पल-भर पहले का नास्तिक कोढ़ा अमर-लोक का वासी बन बैठा—यह है सत्पुरुष की क्षमाशीलता की महिमा. भावात्मक रूप में भी लिखा है——

> चंगिआइआं, बुरीआइआं वाचै धरमु हदूर. करमी आपो आपणी के नेड़े के दूर.
> जिन नामु धिआइआ गये मसकति घालि.
> नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि. (जपुजी—श्लोक)

क्षमा का मूल गुण अकाल-पुरुष की निजी सम्पत्ति है, उससे काल का कोई सम्बन्ध नहीं. काल क्षमा नहीं करता. उसके यहाँ सम्भवतः दण्ड का प्रतिशोध-विधान लागू होता है. इस दण्डनीय अवस्था से रक्षा की शक्ति मात्र सत्पुरुष में ही है, अन्यथा इस चौरासी-बंधन से कभी छुटकारा नहीं.

---

१. आपे मारेसि बखसणहारा, आपे करम कमावे.
नाम रते द्वार पूरे राखे, नानक सहज समावे. ४:८. बड़हंस पृ०५८१.

छ– महानता

सत्पुरुष महान है. उसकी महानता, उसकी रचनाओं से जानी जा सकती है. उसके खण्डों-मण्डलों के अनुभवों से अनुमान लगाया जा सकता है. उसकी विराट-कृतियों का स्वरूप उसकी महानता का प्रमाण है. चारों ओर विकसित प्रकृति उसकी अनन्तता का दिग्दर्शन करा रही है. उसकी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता उसके असीम गुणों की परिचायक है. वह सबसे बड़ा है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भवानी, देवी-देवता, भूत-प्रेत, किन्नर, सब उसकी कृपा पाने के अभिलाषी हैं. उसका निवास सर्वोच्च खण्ड में है. ईसाइयों के चौथे आसमान, मुसलमानों के सातवें आसमान और भारतीय-हिन्दू-दर्शन के पंचम-खण्ड (सचखण्ड) में वह विराजित है. उसके नाम-स्मरण मात्र से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है. गुरु नानक ने लिखा भी है, "जिस प्रकार जल के बिना धोती की सफाई सम्भव नहीं होती, वैसे ही नाम के बिना मनुष्य-जन्म असार है।[1] सत्पुरुष के नाम में वह शक्ति है कि क्षण-भर उसका जाप करने वाला भी सायुज्य का अधिकारी हो जाता है.[2] नाम और नाम की महिमा-गान करने वाले की उच्च-स्थिति का सुन्दर चित्रण प्रथम पातशाही ने जपुजी साहिब में गुरु-शब्द "आखि" पद के अन्तर्गत किया है. इस अध्याय में उसके पूर्वोक्त तथा आगे बताये जाने वाले गुण, सभी उसकी महानता का परिचय देते हैं. गुरु नानक लिखते हैं, "वह मालिक महान है, सबसे ऊँचा वासी है. उससे भी महान उसका नाम है, जो महादुष्टों पापियों को भी सुखदायक है. कहावत है कि गुणों की ओर बढ़ते जाने भी उनके पास पहुँचे; अतः उस सत्पुरुष की महानता और बड़प्पन को भी वही पहचान सकता है जो उसके तक ऊँचा उठे और अपने में सत्पुरुष के गुणों का विकास कर ले. लेकिन नहीं, उस तक ऊँचा उठना मायालोक के जीव के बूते की बात नहीं—अपनी महानता का जानकार वह स्वयं ही है, या फिर वही उसे पहचान सकता है, जिस पर वह कृपा-दृष्टि करे और नाम दान दे।[3] गुरु नानक मानते हैं:—

---

१. जिउ जल बाहरा कछु नाहीं सा धोतिआ.
तिउ नामै बिनु देहुरी सभु मारी संसार दोखु. [illegible]. सोरठ पृ. [illegible].
२. जिन पलु नामु रिदै वसै भाई, नानक तिन कुरबाई. [illegible]. सोरठ अष्टपदी पृ. [illegible].
३. वडा साहिबु ऊचा थाउ. ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ.
एवडु ऊचा होवै कोइ. तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ.
जेवडु आपि जाणै आपि आपि.
नानक नदरी करमी दाति. जपुजी पउड़ी २४.

—— ८.

तू अकाल पुरुख नहीं सिर काला. पुरुख अलेख अभेद निराला.

सत संतोख सबद अत सीतलु सहज भई लिव लागा.२. मारू पृ. १०३८.

और भी कहा है....

बडे मेरे साहिबा, गहिर गंभीरा गुणी गहीरा—

कोई न जाणै तेरा केता केवडु चीरा.

सभि सुरती मिलि सुरति कमाई. सभ कीमति मिलि कीमति पाई.

गिआनी धिआनी गुर गुरहाई. कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई. आसा पृ.९.

ख– मात्र सत्य

गुरु नानक निरंकार ब्रह्म को चिर-सत्य स्वीकार करते हैं. जपुजी साहिब के प्रारम्भिक पाठ में ही "आदि सचु, जुगादि सचु. है भी सचु नानक होसी भी सचु" कहकर अकाल-पुरुष के सत्य स्वरूप को मान्यता दी गई है. इसीलिये गुरु नानक ने उसके सम्बोधनों में "सतपुरुख" शब्द को महत्व दिया है. क्योंकि उसका आदि और अन्त कोई नहीं, वह देश-कालेतर और अपरिवर्तनशील है, स्थिर-स्थायी और सर्व-जन-व्याप रूपता है, इसीलिये वह सत्य है. वह दुनिया के कण-कण में समाया है, तो भी उससे जुदा सच-खण्ड में आसन जमाये बैठा है; उसने अनेक सत्यों को उपजाया है; वह अमर, अजर, अनश्वर है, इसीलिये वह सत्य है. माया सत्य है, उसी की रचना है, सृष्टि का सम्पूर्ण प्रसार उसी द्वारा हुआ है, परन्तु क्योंकि वह मुमुक्षु जीव का आत्म-लक्ष्य नहीं बन सकती, वह असत्य ठहरती है. ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देव-देवी सब सत्य हैं, सत्य के ही अंश हैं, परन्तु क्योंकि उनके लिये भी जन्म-मरण का चक्र लागू है, वे अपूर्ण और असत्य कहे जाते हैं. विश्व की अनेक क्रियायें, धन-सम्पत्ति-सम्पन्नता, घर-बाहर-परिवार, सब सत्य हैं, क्योंकि परमेश्वर की देन हैं, परन्तु क्योंकि उनमें कोई भी स्थिर नहीं, वे काल-चक्र के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकते. मानसिक-वृत्तियाँ तथा— सुख, शान्ति, सात्विकता, साहस, भय और प्रेम, सब सत्य हैं, स्वयं परमात्मा का अंश "आत्मा" की ये अनुभूतियाँ हैं, परन्तु क्योंकि वे चंचल और परिवर्तित हैं, उन्हें पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता. अस्तु:, केवल सतपुरुष या ब्रह्म जो ऐसी शक्ति बन जाते हैं, जिनमें अमरता अचंचलता, अपरिवर्तनशीलता, अकालता के गुण तथा अपने में आत्म-लक्ष्य होने की अपरिमितता, सब एक साथ उपलब्ध होते हैं—वही मात्र-सत्य कहला जाता है. गुरु नानक का कथन है, "वही एक मात्र सत्य है, उसी ने चारों ओर अपने सत्य प्रकाश की किरणें बिखेर रखी हैं. जिस पर उसकी कृपा हो जाये, उस पर अपनी वास्तविकता प्रकट कर देता है,

और जीव-विविध रूप की कमाई करता हुआ उस में ही समा जाता है।¹ आगे फरमाते है,"वह अकाल-पुरुष ही सब सर्वत्र व्यापक है. वह स्वयं दीपक है, विश्व के पालन में उसी की लीला कार्य-निहित है. वह अदृश्य और अपारम्पार तत्व, जिसको रचने वाला कोई नहीं, जो स्वयंभू है, अपना रचयिता आप है, केवल वही सत्य है.[2] (देव सब ब्रह्म)

ख- भाव विभु

अकाल-पुरुष कल्याण का प्रत्यक्ष स्वरूप है. उसके दरबार में उपस्थित होने वाला व्यक्ति कुटिल, या कितना ही पापी क्यों न हो, उसके कल्याणकारी वरद्-हस्त की छाया मिलते ही विशुद्ध हो जाता है. भोगासक्त माया-मोह के अन्धकार में ठोकरें खाने वाला मनुष्य यदि अन्तिम समय भी किसी "अनुभवी-पुरुष" का दामन थाम ले, तो वह विभु के नगर विभकोष (बेगमपुर) का नागरिक बनने का अधिकारी हो सकता है. अकाल-पुरुष सब का हितैषी है, कृपासिन्धु है, स्वयं दयावान् शिव[3] है. उसने विश्व की रचना की, प्राणी और प्रकृति बनाये और माया जाल में पड़े हुये जीवों के कल्याणार्थ प्रत्येक वस्तु का आयोजन भी किया, इतना ही नहीं, अपने से बिछुड़े जीवों के लिये पुनर्मिलन के सरल सहज मार्ग भी प्रस्तुत किये. उसके द्वारा समय समय पर अमर महान आत्माओं का विश्व में भेजा जाना, अपने भटके हुये जीवों को सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य तथा निजी प्रीति से उनका पथ-प्रदर्शन करना और अपने से वाम-मार्गी[4] हुओं को पुनः अपने में मिला कर सुशोभित करना, उसके कल्याण-स्वरूप के प्रतीक हैं। सर्वज्ञाता होने के नाते वह हमारी सब आवश्यकताओं को जानता है; और उदारतावश उनकी पूर्ति भी करता है. वह पूर्ण शिव है, इसीलिये उसका प्रत्येक प्रबन्ध हमारे हित में होता है। और भी "अकाल-पुरुष आनन्द का सर्वोपरि सागर है, क्योंकि अपने प्रिय जीवों के प्रति प्रेम की हिलोरें ले रहा है. कल्याणानन्द के ठाठें मारते हुये इस सागर में हम लोग लघु मीनों की भांति उसी में मग्न होकर जीवन बिता रहे हैं. जो उसे पहचानता है, वह कभी पतित नहीं होता,

१. सचा साहिबु एकु तूं, जिनि सचो सचु वरताइआ.
   जिसु तूं देहि तिसु मिलै सचु, ता तिन्ही सचु कमाइआ. सलोक ५, आसा पृ०४६८.
२. सभु निरंजन तथा भगति तखतु परवरदगारी.
   जिन आपनी भगतु सतिगुरु, तखतु भगत भण्डारी. १:१. मलहार, पृ०५८०.
३. प्रमाण रूप यहां 'शिव' का अभिप्राय विवेचन से भेद नहीं, कल्याणकारी से है.
४. 'वाम-मार्गी' यहां किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये प्रयोग नहीं किया गया है. अभिप्राय भटके हुये जीवों से है.
५. गोविन्द सिंह गुरु ग्रंथ साहिब—डॉक्टर प्रीतमसिंह. पृ० ४०.

—— २३.

गुरु-मालिक का अनुराग उसके हृदय में स्थायित्व प्राप्त कर लेता है. परमेश्वर कल्याण का प्रसाद लिये सबके हृदयों में निवास कर रहा है, वह हम से कभी जुदा नहीं होता. वह हमारा परम-ईश्वर है, सबको समान रूप से प्रकाशित और आनन्दित करता है! बाइबल के गीत पद १५:९.२६ में भी परमेश्वर के विभु होने पर जोर डाला गया है. वह सबकी भलाई करता और चाहता है. दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति से भी उसका उतना ही प्रेम है, जितना कि अपने भक्तों से—यूहन्ना पद ३.१६ इस बात का साक्षी है. उसे बुरे से कभी घृणा नहीं, बुराई से घृणा है. वह बुरे व्यक्ति से इसीलिये इतना प्रेम करता है कि वह (बुरा आदमी) प्रेम-पाश में बन्ध कर बुराई छोड़ दे. सत्पुरुष द्वारा लोक-कल्याण का यह एक सजीव उदाहरण है. गुरु नानक ने प्रभु के व्यापकतारूपी-रूप का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—

जैसी है तैसी बुधि आवै तू अवर कोई दइआला.

तुम्हारी सरणि परे पति राखहु साचु मिलै गोपाला. ग्र०१.मलार म०१ पृ०१२५४.

गुरु अर्जुनदेव ने सुखमनी में भी प्रभु के विभु रूप के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं. लिखते हैं, "अगणित विश्व के प्राणी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के तूफानी झोंकों की झपट में आये हुये बार बार जन्म ले रहे हैं, उनके लिये कहीं मोक्ष नहीं. परन्तु कल्याण का प्रत्यक्ष रूप सत्पुरुष सब जीवों पर कृपा का वरद्-हस्त उठाता है और उनके जन्म-मरण के चक्र में पड़ने के कष्टों का हरण कर रहा है!"[२] स्पष्ट ही अकाल-पुरुष प्रभु जीवों की भलाई के लिये ही सब कुछ करता है. वह परम-पुनीत है, उसके विचार मात्र से कुटिलतम व्यक्ति भी पावन हो जाता है. जैसे पारस हर प्रकार के लोहे को, चाहे वह कड़ाई का टुकड़ा हो या तलवार का त्रिशूल, बिना किसी भेद-भाव के स्वर्ण बना देता है, वैसे ही सत्पुरुष पर विश्वास लाने वाले नीच हों या उच्च, सब पर उसका करम होता है. वह सबका हितैषी है. वह स्वयं तो है ही, उसका स्मरण और नाम भी शिव है. एक बार उसे स्मरण करने वाला जीव विश्व की सभी यातनाओं से निवृत्त हो जाता है. गुरु अर्जुन लिखते हैं—

---

१. सिख धार्मिक भक्ति गुरु ग्रंथ साहिब—[illegible], पृ०४१.

२. बैर बिरोध काम क्रोध मोह. झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह.
इआहु जुगति बिहाने कई जनम. नानक राखि लेहु आपन करि करम. १. सुखमनी म ५. पृ०२६८.

प्रभ के सिमरनि गरभि न बसै. प्रभ के सिमरनि दुखु जमु नसै.
प्रभ के सिमरनि कालु परहरै. प्रभ के सिमरनि दुसमनु टरै.
प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै. प्रभ के सिमरनि अनदिनु जागै.
प्रभ के सिमरनि भउ न बिआपै. प्रभ के सिमरनि दुखु न संतापै.

सुखमनी [illegible] म. ५. पृ. [illegible].

८- मात्र लक्ष्य

यह तो पीछे सिद्ध हो ही चुका है कि ब्रह्म से जग की उत्पत्ति हुई है, और उसकी अपनी इच्छा ही उत्पत्ति-कारण है. अब देखना है कि गुरु नानक विचारधारा के अनुसार उस सम्पूर्ण उत्पत्ति का मात्र लक्ष्य भी वह स्वयं ही है. सबको उसी में समा जाना है. जैसे अग्नि से कोटि कोटि चिंगारियाँ निकलती हैं, वह पृथक पृथक उड़ती हुई पुनः अग्नि में ही समा जाती हैं; जैसे धूल के कण वायु के जोर से पृथक पृथक ही उड़ते रहते हैं, परन्तु अन्ततः उसी [illegible]-धूल में लीन हो जाते हैं, जैसे नदी में अनेक-अनेक तरंगें उठती हैं, परन्तु जल पानी होने के कारण अपने परम-लक्ष्य पानी में ही निमग्न होकर अपना अस्तित्व खो देती हैं. वैसे ही परमात्मा-पुरुष (विश्वरूप) से विश्व की उत्पत्ति हुई और विविध भाँति वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं और उनका परम-लक्ष्य भी स्वयं वही है, उन्हें उसी में समा जाना है।[१] कस्तूरी मृग की भाँति [illegible] सुगन्धि [illegible] हृदय में छिपाये हुए बाहरी कारण की खोज कर रहा है. घाट घाट वासी परमात्मा की खोज फिर पुकारने और नाम जपवाने में जो लगा रहा है, विचित्र विडम्बना है. वाहिगुरु तब है, वाहिगुरु कोई नहीं बनता. जो कोई वाहिगुरु हो, हृदय-सिंहासन पर विराजे हुए उस ब्रह्म रूप को प्राप्त करले, तो उसे [illegible] मिले, उसको आ गये, उसने पूर्ण हो और उसके पुन-जन्म की [illegible] होने लगे![२] वास्तव में हमारे [illegible]-कष्ट होने का कारण है, हमारा अज्ञान. हम लोभ, मोह, क्रोध और माया के विकारों में पड़े हुए हैं. अपने माया के झूठे परन्तु आकर्षक रूप के झूठे आकर्षणों में फँस कर अपनी वास्तविकता को स्वयं विलोप कर दिया है, अन्यथा वाहिगुरु तो ऐसा लक्ष्य है जिसको खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह तो हर समय हमारे पास रहता है. उदाहरण देकर

१. जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे, निआरे निआरे हुइ कै फेरि आग में मिलेंगे.
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है, धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे.
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है, पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे.
तैसे विश्वरूप ते अभूत-भूत प्रगट होइ, ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे.
अकाल-उसतति पद १०:८७.

२. दूरी दूरी जाकी दूरे बसति निवास, दूरे पान सुहावली दूरे [illegible] निवास.
नानक दूरा के मिले किउ बाटै गुप्ताल. राग सिरी पृ० [illegible].

—— ७.

समझाते हुए गुरु नानक लिखते हैं, "जिस प्रकार घड़े आदि में भी वायु का आकाश होता है, वैसे ही जीवों के पृथक पृथक होने पर भी उनकी भीतरी-आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है. घड़े के फूट जाने पर आन्तरिक शून्य बाहरी शून्य से मिलकर एक ही हो जाता है, वैसे ही मायाग्रस्त जीव जिस समय गुरु-कृपा से ज्ञान प्राप्त कर लेता है, माया का पर्दा हटा कर, जिसे वह बाहर खोज रहा था, उसे भीतर पा लेता है. स्वयं ब्रह्म बन जाता है? यही आत्म-ज्ञान है.

७- निष्कर्ष

उपर्युक्त अनुच्छेदों में ब्रह्म के जिन गुणों का और वर्णन किया गया है, वो गुरु नानक के ब्रह्म में यथा-तथा दृष्टिगत होते हैं; परन्तु क्या वह उन्हीं परिगणित गुणों का स्वामी है? नहीं, अनन्त के गुण भी अनन्त हैं, अपार का रूप भी अपार है; वह उपचारिक है, सर्व-उत्पत्ति उसी में से हुई है, अतः सृष्टि की असंख्य रचनाओं के नाम, रूप और गुण उसी के ही हैं; अतः उनका वर्णन इने थोड़े में व्यक्त करना है? यह तो असंभव का भी नहीं. वस्तुतः देश-काल के बाहर की सर्वव्यापकता है, इसलिए देश-काल में बद्ध भाषा उसके वर्णन में असमर्थ है. जब से मानव को वाणी मिली है और उसने ब्रह्म की अपारमितता का अनुभव अपनी बुद्धि-द्वार से किया है, तभी से वह उसकी परिभाषायें खोजने के यत्न में है—परन्तु, जैसा कि स्वाभाविक भी था, ससीम मानव असीम ब्रह्म को कभी परिभाषा-बद्ध न कर सका.

कोई महापुरुष भी उसकी यथार्थता का ज्ञान करा, जैसे तो अन्धे कुँए में बैठ कर यह विचार कर बैठे कि नीचे सुदूर किसी का सिर फूट गया होगा. गुरु नानक उन अनुभवियों में से थे, जो उसके साक्षात्कार करते ही नहीं, बखानना भी जानते हैं. उपदेशात्मक होने के नाते, वे ब्रह्म की महत्ता को जनता समझाने में तन्मयता अनुभव को उन्होंने वाणी भी दिया, लेकिन क्योंकि वे जानते थे कि उसके गुण वर्णन से बाहर हैं, इसलिए वस्तुतः की ओर-छोर रहित अनन्तता की स्तुति के बखान में वाणियों की धृष्टता से वे सदैव बचते रहे. आत्म-परमेश्वर के सम्बन्ध में जो भी उन्होंने कहा, उसके अनुरूप ही गुरु नाम स्वीकार करते रहे. स्पष्ट कहा कि ब्रह्म केवल अनुभव की वस्तु है, बौद्धिक बौद्धिकता की नहीं. किसी भी नाम से उसे याद करो, लेकिन उसमें कुछ विश्वास बनाओ,

---

१. जैसे घट माहि नेहु समाइ, घटि फूटे तो जोति समाइ.
सरब जोत मैं आतमा मिलाइ, घट फूटे ते मिलाई. रा०र० पूरी सं० पृ०४८९.
— मैं जोति बनीं गुरु—... में गुर, गुर ...
...मातु गोपी पद ...: ६. पृ० १०१
... can understand the ineffable story.— ...

अपने आप वह तुम पर प्रकट हो जायेगा. उसका वर्णन असम्भव है, उसे तो पा जाओ तो परमानन्द की तरंगों में किलोलित होते फिरो, परन्तु फिर भी गूंगे द्वारा खाये जाने वाले मिठाई के आस्वादन की तरह तुम अपनी भीतरी स्थिति का विवरण न कर सकोगे, यही दशा मेरी भी है (गुरु नानक की)—यथा:

> जिन चाखिआ सेई सादु जाण्नु जिउ गुंगे मिठिआई.
> अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई. (सोरठ म० १ पृष्ठ ६३५.)

और भी,

> गूंगे गूंगे खाहि केतो बाजो, गूंगे कहिबे को अंतु न जाणी.
> ना कछु कहयु लखीये आपे अकथ कथा गुण गाथा है.[1]

अतः निश्चय ही हमें ब्रह्म की अवर्णनीयता को स्वीकार करते हुये पंजाबी के उस कवि के स्वर में स्वर मिला लेना होगा, जिसने कहा था—"जेहा तेहा है, ओह आप वरगा, नहीं है कोई उसदी ओहदा".

७— उसका यथोचित स्तुति-गान

अनादि-अनन्त, सर्व-कर्ता, सर्वव्यापक और स्वयम्भू-स्वयम्भू अकाल-पुरुष के गुण निश्चय ही अवर्णनीय हैं. उसकी पूर्णता तक किसी की पहुँच हो नहीं हो सकती, परन्तु फिर भी बहु-बेला सृष्टि का कण-कण उसका स्तुति-गान कर रहा है. विश्व के प्रमुख वातावरण में उसने ऐसे अमित मौलिक शक्ति का आभास भर दिया है. सृष्टि की आत्मिक-रचनायें भी स्वभावतः उस चिर-आनन्द को अनुभव करने लगी हैं, जिससे वे सब आयी हैं और जहाँ उन्हें जाना है. उस अनुभव के ही कारण आज अनुपम जीवात्मायें अबाध अखण्ड उस ब्रह्म की महिमा गान करती रही हैं. जीवों ने जान लिया है कि महान की महानता में लीन होने के लिये उसकी कृपा-दृष्टि अपेक्षित है, उसे कुदरत को पहचानना ज़रूरी है, और उसकी इच्छा के अनुसार जीवन-यापन करते हुये उसी की प्राप्ति को चरम-लक्ष्य बनाना मातोचित है. अतः दुनिया के माया-जाल में फँसे स्वार्थी बन्दों ने वाहिगुरु का आँचल पकड़ा और उस सर्व-शक्तिमान की शरण में जुट गये. अतएव जीवों को अपने जीवन का यह स्वार्थ और वाहिगुरु प्रिय है, क्योंकि उसकी अनुभूति से उनमें नाम-स्मरण, भक्ति-भाव, प्रेम, श्रद्धा और विश्वास की वृत्तियों का उदय होता है.

१. देखिये पिछले पृष्ठ की पाद-टिप्पणी-२.

इन सब के सम्मिश्रण से भक्ति की उत्पत्ति उन जीवों को अकालपुरुष के निकट ले जाती है और अन्ततः वह दिन आ ही जाता है, जब बूंद-भर पानी सागर में मिल सागर कहलाने लगता है— आत्मा प्रभु को पा जाती है, स्वयं परमेश्वर बनती है. यही वह पृष्ठभूमि है जिसपर अकाल-पुरुष की स्तुति-गान और प्रशंसा का प्रासाद आधारित हुआ है टिका है.

गुरु नानक उसकी महिमा-गायकी तथा स्तुतियों की कोटि में अपवाद नहीं, प्रत्युत यदि उन्हें अग्रगण्य कहा जाये तो भी कोई अत्युक्ति न होगी. यही कारण है ऐसा किया जा सकता है कि गुरु नानक "धरती-अम्बर-सृष्टि" के धनिक हैं, ज्योतियों के प्रदीप अपने को पूर्णतः अकालपुरुष के आश्रय छोड़ कर उसी स्तुतिगान में निमग्न रहते थे. लिखते हैं,"मेरे प्राण, बुद्धि और विद्या तुम पर आश्रित है, यह शरीर भी तुम्हारे ही सेवापण में अर्पण रहा है. हे मेरे स्वामी, मैं तुम्हारे आधारत्व और शक्ति को नहीं जानता, इसीलिये निःसंदेह तुम्हारे ही गुण गाता हूं. मेरे लिये तुम्हारी प्रसन्नता उत्तम श्रेयस्कर है. मैं सेवक हूं और सेवक को तो नतमस्तक हो स्वीकार करना ही है."[१] गुरु नानक अकाल को उस रूप-रंग में अपना ठाकुर स्वीकार करते हैं, और उसके सम्मुख करबद्ध-प्रार्थी हैं कि कृपा की नेक दृष्टि से जीवोद्धार करने वाला वह अकालपुरुष उन पर भी नेक नजर डाले।[२]

सार यह कि जड़-चेतन चराचर में ऐसा एक भी कण अपवाद न मिलेगा जो उसकी महिमा का गान न करता हो, उसकी इच्छाओं और आज्ञाओं के सामने नतमस्तक न हो. गुरु नानक अन्त में यह संकेत देना नहीं भूले कि जिसकी स्तुति स्वीकार हो गई वह तर गया, भवसागर से पार उतर गया. वह अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर से ही परमेश्वर को पाता और आनन्द से नाच उठता. कहते हैं—

हम घर साजन आये. साचे मेल मिलाये.
सहजि मिलाये हरि मन भाये पंच मिले सुख पाइआ. (सुव बाहु)

---

१. जिउ प्राण तनु धनु तुम्हारो मंदर जावा तेरे.
गुण बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे.
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदास. ४:२, बिलावल, पृ०७९५.

२. गुर बिनु अवरु न कोई, मेरे पिआरे गुर बिनु अवरु न कोई.
हरि रंगी तुठो हे सिव बखसे जिसु नदरि करे. ३:११, आसा, पृ०४५५.

वाई वसतु परगास होई जिउ देखै गुरु लोअणा.

अनहदु गीतु गावा गु मानिआ घर मन्दिर जोहते.

पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घर साजन आये.१.(सूही म०, पृ०७६४.)

७— अ का ल पु रु ष का स्था न

केवल व्यापकता का स्वरूप होने के नाते वह सर्वाङ्ग है, परन्तु क्योंकि वह सर्वज्ञ और साक्षी भी है, इसलिये सृष्टि के कण-कण में समाया है. सर्वव्यापकता उसकी परिपूर्णता (ऐब्सोल्यूटनेस) की परिचायक है, तो कण कण में अन्तर्निविष्ट उसकी व्यापकता है. इसी आकार-निराकार पर गुरु नानक वाक्य में ब्रह्म का स्थान निरूपण दोनों ओर संकेत करता है. पीछे निवेदन किया जा चुका है कि जब विश्व-प्रकृति का कोई अस्तित्व ही न था, तो भी अकाल का अबुद चहुं ओर गुंजरित था. धीरे धीरे अबुद से संसृति की रचना हुई, खण्डों-ब्रह्माण्डों का सर्जन हुआ, जीव-जगत को जन्म दिया गया, और जगत का ताना-बाना फैलाकर उसकी ओट पर वह अलौकिक सत्ता स्वयं अपनी चमत्कारपूर्ण रचना का आनन्द लेने के लिये उससे ऊंचे जा बैठी, और वहीं से अपनी कृति के रास-रचना तथा लीला-विलास-विद्युत अभिनय का रसास्वादन करने लगी. इसी तो अनुभूति में गुरु नानक ने खण्ड-विवरण करते हुये धरम, ज्ञान, सरम और करम खण्डों के वर्णनोपरान्त उपर्युक्त सच खण्ड में अकाल-पुरुष के निवास होने का उल्लेख किया है.

"सचखण्ड वसै निरंकार, करि करि वेखै नदरि निहाल.—जपुजी ३७."

विशेषता यह है कि सर्वोत्तम-सम्पन्न-प्रभु केवल पुरातन कालों से लेकर अब तक ही सीमित नहीं, आकाश और पाताल, दोनों पर उसका नियन्त्रण है; वायु और पवन दोनों उसके वश में रहे हैं, जो भी ब्रह्माण्ड (ब्रह्म आकार) तारामण्डल, चन्द्र और सूर्य मण्डलों के ऊपर उस गगन का स्वामी बना बैठा है; जो उसके पदस्थान की सम्पूर्ण स्वरूप का सूक्ष्म चिन्ह कहती है. गुरु नानक का कहना है कि अकाल-पुरुष तीन लोक (देश-कालीन रचना) से न्यारे चौथे लोक में निवसता है, और उसका स्थान जो परिसीमताओं से बाहर रह कर सम्पूर्ण-संसृति को नीचा-नीचा देखता है. उसकी पहचान केवल गुरु की अनहद वाणी या उस अनहद की विश्वजनीन पृष्ठभूमि पर ही सम्भव है.[१]

१. गगन गम्भीर गगनंतरि वासु. १०. रामकली दखणी, पृ० ९३२.
२. है बरताई चौथे पार वसा. गउ० किरति सभै ... ठाउ.
निरमल जोति सरब जगजीवनु. गुर अनहद सबद दिखाइआ.३. मारू, पृ०१०३८.

है [illegible] गयी, गुरु नानक—वाणी में वृक्ष [illegible] की [illegible] की [illegible] गयी, वह [illegible] होते हुए भी [illegible] स्थापित होने का [illegible] है. [illegible] प्रकार पेड़ [illegible] मूल, तना, शाखाएँ, पत्र—पुष्पादि [illegible] दूसरे से पृथक होते हुए भी मूल को [illegible] बनाये रहते हैं; ठीक वैसे ही [illegible] रचयिता रूपी मूल से जुदा होकर भी उसी पर आश्रित है, मूल का [illegible] है. [illegible] नहीं [illegible] है. वृक्षों के पेड़ों [illegible] नीचे होती हैं, परन्तु संसार का मूल (ब्रह्म) ऊपर है; उसकी शाखाएँ, पत्र—पुष्प, फल नीचे की ओर लटक रहे हैं. गुरु नानक लिखते हैं—

"उरध मूल जिसु साख तलाहा" ([illegible] पृष्ठ [illegible].)

प्रस्तुत [illegible] प्रयोग है. [illegible] रचयिता का मूल [illegible] शाखा—प्रशाखाओं का [illegible] कहीं कहीं उपनिषदों और गीता में भी उपलब्ध है। गुरु नानक के अन्य समकालीन [illegible] की वाणी में भी ऐसी [illegible] प्राप्त हैं.

[illegible] आदि—पुरुष [illegible] के [illegible] होने से [illegible] पौराणिक [illegible] विद्यमान है; [illegible] उसे [illegible] कहा गया है. [illegible] है [illegible] यह [illegible] अपने मनोयोग से सृष्टि की रचना [illegible] है, [illegible] भी कहा गया है. डॉ० इकबाल के शब्दों में [illegible] कुदरत [illegible], [illegible] दिया [illegible]. [illegible] मैं जो [illegible] विद्यमान है, वह निरंजन का ही [illegible] है।

---

१. (क)— कबीर ने लिखा है— कबीर मूल पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार.
तिरदेवा शाखा भये पात भया संसार.

(ख)— गीता में इसी अनुभव का प्रथम श्लोक इस प्रकार है:—
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्.
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्.

(आदिपुरुष परमेश्वर रूप मूलवाले और ब्रह्मा रूप मुख्य शाखा वाले जिस संसार रूप [illegible] को अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद [illegible] कहे गये हैं, [illegible] संसार रूप वृक्ष को जो पुरुष मूल [illegible] से जानता है, वही [illegible] में वेद— [illegible] को जानने वाला है— गीता—प्रेस, छोटा सं. [illegible])

(ग)— कठोपनिषद् अध्याय २, वल्ली ३, मंत्र १, इस प्रकार है:—
ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः,

(ऊपर को मूल और नीचे लटकती हुई शाखाओं—प्रशाखाओं वाला यह अश्वत्थ—वृक्ष प्राचीनतम और अनादि है.)

२. [illegible] निर्मल [illegible], [illegible] नानक वाणी [illegible] [illegible], [illegible], पृ [illegible].

[illegible] भी ज्ञानी भक्त अपनी चतुर्दिक आकार-प्रकार में प्रभु को ही नहीं देखता, प्रत्युत उसका स्पर्श-दर्शन भी करता है. उसके लिये भेद की मायावी मृगतृष्णा का अन्त हो जाता है. वह बाहर-भीतर, प्रत्येक जीव में प्रभु [illegible] देखता है। प्रकृति के कण-कण में भी वही समाया हुआ है.

बलिहारी कुदरत वसिया. तेरा अन्त न जाई लखिआ. १२.४. वार आसा, विचारवान मनुष्यों के लिये तो यह बातें और स्पष्ट है. गुरु अर्जुनदेव ने कहा है—

[illegible] जीव [illegible] जाहरा. नानक का [illegible] [illegible] जाहरा.॥२॥२॥१०५. (आसा म०५.)

वस्तुतः [illegible] जीवों के रूप में [illegible] प्रत्यक्ष है. [illegible] ज्योति [illegible] है. [illegible] जीव में प्रभु [illegible] है [illegible] अपेक्षा गुरु नानक उसे [illegible] अवश्य पुकारते है; और जीव को प्रभु रूप में देखते थकते है. [illegible] है, [illegible] प्राणी के अन्दर स्वयं प्रभु [illegible] है, उसकी ज्योति उसके अन्तःकरण को आलोकित कर रही है, परन्तु [illegible] परमात्मा ने जीव को [illegible] होकर बाहर भटकने को [illegible] किया है, और स्वयं उसी के अन्दर [illegible] लगा बैठा है. प्रभो-[illegible] के [illegible] में [illegible] को [illegible] है, अपने ही अन्दर के [illegible] बुद्धि से बाहर की [illegible] में [illegible] कर रहे हैं.[1] यहाँ गुरु नानक यह [illegible] भूलो नहीं कि [illegible] प्राप्त [illegible] के [illegible] है, [illegible] को [illegible] है. कहीं कहीं तो [illegible] को चोट पर [illegible] किया जाता है कि मनुष्य देह ही प्रभु का निवास-[illegible] है.

[illegible] माहि [illegible] बाहर [illegible], [illegible] राखी [illegible].

नानक गुरमुख [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]. ([illegible])

यहाँ [illegible] [illegible] का [illegible] "[illegible] [illegible] नहीं, पर [illegible] नहीं" [illegible] ही [illegible] है. अन्दर में चिर-[illegible] ज्योति देखने [illegible] को

---

१. [illegible] नदार करे [illegible] देखा हुआ [illegible] नाही.

[illegible] [illegible] थाई, [illegible] [illegible] नाही. १२. [illegible] [illegible] [illegible].

२. घटि घटि [illegible] प्रभु [illegible], घटि घटि [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible]. [illegible], [illegible].

अपेक्षा है. कोई सच्चा अनुभवी महापुरुष ही कृपा-दान करे तो खोई यथार्थता (हरि-मिलन) की पुनर्प्राप्ति हो. खेद का विषय तो यह है कि जन-साधारण माया से मोहित-ज्ञान की भूल-भुलैया में इतना खो जाते हैं कि गांठ बन्धे रत्न को ढूढते तीर्थों, मेलों, नदियों और पर्वतों में खोजते फिरते हैं. घर में रखी वस्तु अन्धेरा होने के कारण बाहर खोजे नहीं पा सकोगे, उसके लिये ज्ञान-मार्ग घर में दीपक जलाने का है. प्रस्तुत स्थिति में भी अन्तर में छिपे प्रभु की प्राप्ति के लिये किसी सच्चे गुरु के चरण पकड़ना अनिवार्य है, जो स्वयं अनुभवी हो, यथार्थता का जानकार हो और स्थिति का अनुभव तथा ज्ञान दे सके. सन्त की तो विशेषता ही यह है कि वह जो कुछ है, अपने अनुयायी को वही बना लेता है. कोई मैला ही सन्त-महात्मा या फकीर के स्थान का "आत्म-विश्लेषणात्मक-ज्ञान बोध भी दे सकता है. गुरु नानक ने हरि-मन्दिर के सम्बन्ध में लिखा भी है:—

हरि मन्दिर सोई आखीऐ जिथहु हरि जाता.
मानस देह गुर बचनी पाइआ सभु आतमराम पछाता.
बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता.
मनमुख हरि मन्दर की सार न जाणनी तिनी जनम गवाता.

सभ महि इक वरतदा गुर सबदी पाइआ जाई. ११. (रामकली सलोक, पृ०९५३.)
यहाँ इस बात की पुनर्पुष्टि प्राप्त है कि ईश्वर सब में है और गुरु के मार्ग निर्देशन से उसकी ज्योति का साक्षात्कार हो सकता है.

अब प्रश्न उठता है कि प्रभु यदि सामान्यतः अदृश्यमान है और विवेकपर उपलब्ध-योग्य, तो इन दोनों को एक रूप स्थापित क्या होगा? ऐसे उदाहरण प्रस्तुत हैं. बाजारों, गलियों, घरों-दुकानों एवं अन्य सब स्थानों में आकाश तारों द्वारा बिजली की लहरियाँ पहुँचती दिखाई पड़ती हैं. वे लहरियाँ तेज और रोशनी की तरह हमारा उपयोग करती रहती हैं; हमारी क्रिया-प्रदाता हैं, सीमित वातावरण को उसे उपयुक्त है और वे ऐसे चमत्कार दिखाती जो आँख हमें प्रत्येक पल, यह सुविधा पहुँचाती है. विचार करें कि वे लहरियाँ या तार-तारें क्या अपने में उसी शक्ति को प्रयोग करते हैं या नहीं, तो विद्युत शक्ति के उत्पादन का सामर्थ्य वे किस माध्यम से प्राप्त करते हैं? उत्तर में

---

१. पारस की संग में बहु अन्तरा जान,
वह लोहा कंचन करे, वह कर ले आप समान.—अज्ञात.

[illegible] पावर-हाउस की ओर आकृष्ट होता है. [illegible] है [illegible]

[illegible] बल्ब पर प्रदीप्त प्रकाश रूपी बाहरी विद्युत-शक्ति उसकी जड़ों में उसकी [illegible]
का नाम नहीं, बल्कि उसकी [illegible] पावर-हाउस की [illegible] का [illegible] है. [illegible]
[illegible] नगर के [illegible] बाजार और घर में [illegible] प्रवेश [illegible] में प्रकाशमान
करती है, क्योंकि पावर-हाउस स्वयं वहाँ तक नहीं पहुँच जाता. [illegible] भी विद्युत-
धारायें [illegible] के प्रदेश [illegible] और [illegible] बराबर में व्याप्त है, यद्यपि उस
का निर्दिष्ट स्थान (पावर-हाउस) एक ही है. [illegible] एक [illegible] प्रकार बिजली
के [illegible] पावर-हाउस की शक्ति(विद्युत) धारायें प्रसारित [illegible] नगर या प्रदेश में फैली रहती
है; [illegible] स्थान पर स्थिर रहते हुए भी विद्युत-धारायें [illegible] आवि-
ष्कार [illegible] में [illegible] है—ठीक वैसे ही ब्रह्म [illegible] स्थिर रहते हुए भी उसकी प्रदीप्त
का [illegible] अनुभूतियों में ब्रह्म की धारायें प्रसारित प्रवाहित होती रहती है.
इसी रूप में ब्रह्म की [illegible] बातों का सर्वव्यापक [illegible] जाता है. विद्युत-शक्ति
की तरह ही [illegible] उद्गम पर ~~[illegible]~~ होता हुआ भी सब स्थानों पर विद्यमान है और
[illegible] होने पर भी [illegible] सर्वत्र [illegible] है. [illegible]
है, [illegible] में [illegible] ब्रह्म, [illegible] प्रदीप्त शोभा कर रही
है और [illegible] प्रकाशित [illegible] करवाती है, वह [illegible] प्रभु
[illegible] विद्युत-धारायें की नाईं ही अदृश्य है. पुनः विद्युत [illegible] का परीक्षण होता है
दीप जलने के बाद. इसी प्रकार जीव में ब्रह्म [illegible] उपलब्धि का परीक्षण किसी
अनुभवी महापुरुष (सद्गुरु) से पथ-प्रदर्शन [illegible] है, जब वह ब्रह्म-धारायें
को पकड़ायेंगे, [illegible] देंगे अन्यथा पावर-
हाउस पर [illegible] ही रहेगा, कोई उसे ~~[illegible]~~ पकड़ने का [illegible] प्रयत्न
करे अथवा नहीं, ब्रह्म तो [illegible] में [illegible] है, और [illegible] नाद-शक्ति
विश्व को बनाती, चलाती या मिटाती चली जा रही है! [illegible] जीव
[illegible] है, और [illegible]
[illegible] स्थिर-

---

१. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] रामबंदी, [illegible]

पोषित करते रहते हैं. परन्तु ध्यान रहे, ब्रह्म मनुष्यों में भी है और पशुओं में भी; एक ने पहचान लिया और दूसरे ने नहीं. लिखा भी है—

[illegible] मिलि मिलि मिलि मिलि करोति. [illegible] श्रुति, [illegible]

५— विश्व में ब्रह्म का [illegible] : यीशु

भारत के [illegible] गति में यदि जीव जब ईश्वर के अंशों से [illegible] उठते हैं, अपने [illegible] से दुःख-दुर्भाग्य-अत्याचारों को भोगकर [illegible] प्रभु को पुकारते [illegible] जाते हैं, तो ही अपना भाग [illegible] भगवान अवतीर्ण होकर आविर्भाव करते हैं, तब दया का अद्भुत अवतार, वह पुरुषोत्तम अपने भक्तों को [illegible] प्रकार सहायता देकर स्वयं प्रकट होता है. अभी में [illegible] प्रत्यक्ष मानवों में से किसी [illegible] व्यक्तियों को [illegible] करने और [illegible] भाषा में [illegible] हेतु [illegible] प्रदान करने के लिये भेजता है. वह [illegible] ब्रह्म का [illegible] होने के कारण निश्चय ही ब्रह्म की अनुभूति [illegible] से [illegible] उसके [illegible] से [illegible] होता है. [illegible] में रहने [illegible] से [illegible] पड़ता है, [illegible] में कुछ [illegible] भी [illegible] होती है, परन्तु वह [illegible] के [illegible] चिर-मुक्त होने के कारण [illegible] प्रकट होता है. [illegible] आकर वह [illegible] पापों को [illegible] कर [illegible] जाता है, [illegible] पुनः [illegible] (स्वर्ग में) लौट [illegible] है, और [illegible] साथ न जाने [illegible] विश्वासियों [illegible] उद्धार [illegible] सकता है. [illegible] में [illegible] वह [illegible] में पुनरागमन [illegible] रहता है और [illegible] है, [illegible] के [illegible] रूप में [illegible] है. वह प्रभु का [illegible] प्रकाशित होता है, [illegible] के [illegible] रूप में [illegible] को [illegible] जाता है, [illegible] में [illegible]-[illegible]-[illegible], [illegible] है. [illegible] ने [illegible] किया है:—

[illegible] राखना करतारे, [illegible] करि [illegible][1] =

---

१. यह [illegible] नहीं कि [illegible] में [illegible] ही [illegible] करे. [illegible] और [illegible] की [illegible] के अनुसार [illegible] कई [illegible] होते हैं.

२. [illegible] = [illegible] में भी [illegible] है कि [illegible] में हमारे [illegible] और [illegible] का [illegible] किया.

The Word was made flesh and dwelt among us full of

Grace and Truth.

७- जीव-ब्रह्म में सम्बन्ध

जीव और ब्रह्म भेद तो [illegible] है, परन्तु जीव ब्रह्म का [illegible] है और [illegible] से [illegible] जाने से पार्थिव [illegible] में [illegible]-[illegible] का भाव है और माया के आवरण में अपने को भूला हुआ है [illegible] के पर-ब्रह्म [illegible] नहीं रहता, [illegible] मायावरण की स्थूलता [illegible] है [illegible] और [illegible] धर्म-क्रमों के [illegible] में [illegible] को [illegible] प्राप्त हो, जो [illegible] सद्गुरु [illegible] में [illegible] है, [illegible] कोई [illegible] [illegible] को [illegible] गुरु [illegible] सहायक हो। [illegible] हुआ है [illegible] [illegible] [illegible] नहीं और [illegible] पूर्व-जन्म के [illegible] है, जो निश्चय ही जीव [illegible] पूर्व-[illegible] (कोई सच्चा गुरु) [illegible] होगी। [illegible] की स्थिति में उत्तर-[illegible] कुछ [illegible] में [illegible] होगी। [illegible] है, [illegible] जीव और ब्रह्म के [illegible] ब्रह्म को [illegible]-[illegible] करने में कुछ [illegible] है।[1] [illegible] स्पष्ट करते हुये कुछ [illegible] है [illegible] विषय-वासनाओं [illegible] और [illegible] (देह), में [illegible] उदय न हो।, [illegible] ब्रह्म [illegible] नहीं [illegible]। कुछ [illegible] है [illegible] जीव [illegible] कुटुम्बों को [illegible] से [illegible], [illegible] नाम-रहस्य [illegible] है। कुछ के [illegible] से ही [illegible] होती है, [illegible] रह [illegible] है।[2] [illegible] कुछ जीव और ब्रह्म में [illegible] है। [illegible] को [illegible] [illegible] है। [illegible] में कुछ [illegible] कर [illegible] है [illegible] ब्रह्म के [illegible] कुछ [illegible] है। [illegible] नहीं, [illegible] है।[3] कुछ [illegible] को

1. माया के आवरण [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] के [illegible] है [illegible] कुछ [illegible] है।
2. [illegible] [illegible] कुछ [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] कुछ [illegible] [illegible] है [illegible] और [illegible]।
3. [illegible] कुछ [illegible] न [illegible]। [illegible] कुछ [illegible] की, [illegible] [illegible]। कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
4. [illegible] कुछ [illegible] में [illegible]।
   [illegible] [illegible], हार [illegible]।

इसी भाव को प्रस्तुत करते हैं. जिस प्रकार व्यापार या वैवाहिक अवसरों में मध्यस्थ-जन दो दलों का मेल करवा देते हैं, वैसे ही गुरु मायाग्रस्त ब्रह्म (जीव) तथा निरंजन-ब्रह्म (अकाल-पुरुष) के मिलन का कारण बनता है. सोचने की बात है कि ज्यों जीव में से माया के पर्दे का हटाना होता है और तत्व स्वतः ही तत्व में मिल जाता है. गुरु [illegible] फरमाते हैं कि उस [illegible] द्वारा [illegible] जीव अंश है. वह [illegible] है, [illegible] है. परन्तु जीव उसे विस्मृत कर चुका है और जिसको गुरु की [illegible] हुई उन जीवों की दीवारें तोड़ सकता है. आगे लिखते हैं कि जीव चाहे पूर्ण-आनन्द के रसीले [illegible] का विचार चाहे दिन-रात क्यों न करे, जिसका गुरु की कृपा है, न यह [illegible] के चक्करों में उलझा ही रहेगा.[1] इसी का तात्पर्य यह कि गुरु जीव [illegible] होता है, और जीव तथा ब्रह्म के [illegible] में मध्यस्थ पुरोहित का काम करता है.

केवल यही नहीं, वह केवल मध्यस्थ ही नहीं, वह तो जीवों के उद्धार हेतु व्यापक रूप में व्यापक हुआ स्वयं ब्रह्म का प्रतिनिधि होता है.[2] वह जो कुछ भी करता है, प्रभु की ओर से करता है, और सच तो यह है कि प्रभु को गुरु की की हुई प्रत्येक बात मंजूर है. गुरु द्वारा [illegible] जीव का अमरत्व की अवस्था में कोई प्रश्न नहीं उठता — जब सिख को गुरु ने पकड़ लिया, तृष्णा-रूपी [illegible] [illegible] में सिख को नाम प्रदान कर दिया, वह मुक्ति पा गया. स्वयं करतार को भी उसमें कोई आपत्ति नहीं होती. ठीक जिस प्रकार वैधानिक-रूढ़ि या प्रतिनिधि के स्वीकृत कार्य का उत्तराधिकारियों को कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चे गुरु का, जो हरि [illegible] को प्राप्त [illegible] आध्यात्मिक [illegible] में भी मान्य है?

---

१. [illegible] परवरदगारी.
[illegible]
[illegible] गुरु [illegible]
[illegible] १:२. [illegible] पृ ५८७.
२. [illegible] (मूल) बार [illegible] २, म०५.
३. [illegible] गुरु [illegible]
[illegible] १०. [illegible], पृ ५८.

ख- गुरु और ब्रह्म में अभेद:

नानक वाणी गुरु को केवल ब्रह्म का प्रतिनिधि अथवा दिग्दर्शक मात्र ही मान कर संतुष्ट नहीं. ज्यों ज्यों चिन्तन का क्षेत्र विस्तृत होता है, गुरु ही ब्रह्म रूप में दिखाई देने लगता है, और साधक की वह अवस्था भी दूर नहीं रह जाती, जब वह गुरु को साक्षात् ब्रह्म स्वीकार करता है और दोनों में अभेद की स्थापना कर गुरुमय हो जाता है. गुरु नानक ने स्वयं गुरु को अपरंपार, पारब्रह्म और परमेश्वर कह कर पुकारा है.[1] गुरु नानक पंचम (गुरु अर्जुनदेव) ने तो अतीव विचारोपरान्त यह निर्णय दिया था कि गुरु और गोविन्द में कोई अन्तर हो ही नहीं सकता.

बुंद विरोधि शरीर हम देखिआ, एक वस्तु अनूप दिखाई.

गुरु गोबिन्द, गोबिन्द गुरु है, नानक भेद न भाई. ८८. (आसा पृ० ४४२)

और भी कुछेक स्थानों पर यह निर्णय इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

गुरु परमेसरु करणैहारु. सगल सृष्टि कउ दे आधारु.१२. (~~गोंड म०५~~ गउड़ी, पृ०[illegible].)

और भी — गुरु परमेसरु एको जाणु. जो तिसु भावै सो परवाणु.+ १२.(गोंड म०५,पृ०८६४.)

स्पष्ट ही गुरुवाणी गुरु और अकाल-पुरुष में कोई भेद नहीं मानती. मेरा विश्वास है कि पीछे 'गुरु और गुरुमुख' के अध्याय में इस बात पर पर्याप्त कह दिया जा चुका है, यहाँ पुनरावृत्ति करना अपेक्षित न होगा.

ग- ब्रह्म का जीव से सम्बन्ध : मिलन

ब्रह्म और जीव, दोनों एक ही तत्व के दो पहलू हैं, एक परमपद पर आसीन है तो दूसरा उसी का परिवर्तनशील अंश. अतः जो सम्बन्ध सागर और उसमें उठती वाली लहरों अथवा मरुस्थल तथा उसमें उड़ते गिरते और टकराते बालू-कणों में होता है, वही स्थिति ब्रह्म और जीव की भी है. प्रत्येक जीव में चेतना रूप में ब्रह्म सदैव विद्यमान रहता है.

---

१. अपरंपर पारब्रह्म परमेसरु, नानक गुरु मिलिआ सोई जीउ. सोरठ,म०१.

नोट:— इस पद के अनुसार कुछ विवेचकों ने गुरु नानक-वाणी में उनके गुरु के प्रति विचार करने का उपक्रम किया है, और परिणाम रूप सिद्ध किया है कि गुरु नानक का कोई गुरु न था. स्वयं प्रभु उनका गुरु था. इस विचार से हम सहमत हैं कि नानक ने किसी देहधारी-गुरु का पता नहीं बताया, परन्तु प्रस्तुत परिकल्पना की आवश्यकता ही क्या है? क्योंकि वाणी गुरु और प्रभु में भेद मानती ही नहीं. गुरु नानक ने स्वयं भी तो कहा है-

हरि गुरपूरा सेवा बरती, नानक हरि गुरु भाणा. १.मारू. पृ०१०४२.

+ कहीं कहीं हिन्दु धर्म शास्त्रों में भी ऐसी ही धारणा उपलब्ध है, यथा—
गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः. गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवेनमः,
बाईबल में क्राइस्ट ने भी कहा है- I and my father are one.

—— ३०.

उस परम-तत्व का शरीर से विलग होना ही मृत्यु है. स्पष्ट है कि दोनों का सम्बन्ध चिर-अविच्छेदनीय है. गुरु नानक ने प्रस्तुत सम्बन्ध को समझाने के लिये अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं और कहीं कहीं स्थिति को सांसारिक नाते सम्बन्धों की पृष्ठभूमि से भी आलोकित किया है.

(टिप्पणी:-ध्यान रहे ऊपर सागर और जल-बिन्दु या मरुस्थल तथा रजकण की उपमा नहीं दी गई. विशेष कारण यह है कि जल-बिन्दु या रजकण से सागर अथवा मरुस्थल के कुछ समय तक जुदा भी रहने की सम्भावना हो सकती है, लेकिन उपर्युक्त उपमा में गुरुबाणी सिद्धान्तों के अनुसार यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि दोनों रूप कभी एक-दूसरे से जुदा नहीं होते. जीव ब्रह्म में ही लीन होता है, जो भी परिवर्तनशील होने से अलग अलग दिखता है; और यदि [illegible] ऊपरी तरंगित होना छोड़ दें तो वे जल (सागर)ही हो जायेंगी, लहरें नहीं, वैसे ही यदि जीव अहंभाव छोड़ दे तो वह स्वयं ब्रह्म कहलायेगा, जीव नहीं. गुरु नानक वाणी के इस सिद्धान्त पर उनके दार्शनिक स्वरूप को भेदाभेदी कहा जा सकता है.)

ख- रचयिता-रचना सम्बन्ध (जीव ब्रह्म का अंश है)

पीछे बताया जा चुका है कि जीव ब्रह्म का अंश है; यहाँ केवल दोनों के सम्बन्ध का स्वरूप, गुरु नानक द्वारा दिये उपदेशों के माध्यम प्रस्तुत किया जायेगा. ब्रह्म या प्रभु सृष्टि का अमर-जीवित-सम्बन्ध रचयिता है. उसी ने जीव-ब्रह्मांड, प्रकृति तथा पदार्थ की रचना की है. मानव देह के स्वरूप-संतुलन के साथ ही उसने उसमें अनोखापन और सम्पन्नता के महान गुणों का प्रावधान भी किया है. मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन उस कलाकार की पैनी दृष्टि है, जिस पर वह सदैव तूली और रंग लिये चित्र रचता है और अपनी रचना का आनन्द लेते लेते नितान्त सुन्दर बनाता ही जाता है. कभी बनाता है, कभी बिगाड़ता है, और मनोभाव के अनुसार मानव-जीवन को [illegible] या उत्थान-पतन का कारण बनता है. आत्म रूप (कलाकार रूप) में वह किसी विशेष रूप-भाव मुद्रा भी दे देता है, अन्यथा उसकी प्रत्येक रचना अपने में अपूर्ण है (अन-फिनिश्ड). पारस्परिकता (म्युचुअलिटी) केवल उसी को भाती है, या फिर उसको, जिसे वह अपने में मिलाकर, अर्थात् आत्मसात-रूप कर, पूर्ण बना देता है.[१] जीव और ब्रह्म का प्रस्तुत सम्बन्ध युगों युगों से चला आ रहा है.

---

१. [illegible] आपे जिउ तिउ भावै तिवै करै.
[illegible] मैं दुख्खु [illegible] निकारे [illegible]. आसा पटी [illegible].
पृ०४३२.

क- <u>शरीर का चेतन-अंश परमात्मा</u> (जीव ब्रह्म का अंश है)

पदार्थ शरीर में आत्मा की उपस्थिति ही है जो मनुष्य को क्रिया दिखाने में समर्थ है. शरीर के अन्दर प्राणों का संचार, रक्त-प्रवाह क्रिया, मांसपेशियों की वृद्धि जैसे [illegible] की व्यवस्था उस चेतन के नियंत्रण में बनी हुई है. जब तक मनुष्य चेतन है, उसके अन्दर जीवात्मा है, तब तक उपर्युक्त सभी क्रियायें स्वचालित चलती हैं, परन्तु अन्दर की चेतना के अंत होने से सब मानसिक क्रियाओं का अकस्मात् गतिरोध हो जाता है और मनुष्य जड़-मात्र रह जाता है. जैसे घर में मेन-स्विच के बन्द कर देने से सब विद्युत-दीपक बुझ जाते हैं, बिजली द्वारा होने वाली सब क्रियायें रुक जाती हैं, वैसे ही चेतना के कुण्डलीन के बाद ~~[illegible]~~ शरीर का सम्बन्ध कट जाने तो मनुष्य की मृत्यु कही जाती है. कहने का तात्पर्य यह है कि मानव-शरीर में जो चेतना की लहर बह रही है, उसका उद्गम वही परम-चेतन ब्रह्म है, अर्थात् ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध अंशी और अंश का है. गुरु नानक ब्रह्म को ~~[illegible]~~ स्तुति में लिखते हैं कि वह प्रभु होता ~~[illegible]~~ स्वयं सृष्टि के जीवों में प्राण-रूप बना बैठा है. ज्ञान-ध्यान से रहित मनुष्य उसे नहीं पहचानता. जो वेद पाठ करते, तुलसी-माला पर [illegible] को [illegible] करते हैं [illegible] ब्रह्म को जीवों में [illegible] रखता है, उसकी दृष्टि [illegible] पर [illegible] है।

ख- <u>दोनों में [illegible] नहीं...</u> ..

ब्रह्म परमात्मा का चेतन [illegible] है और [illegible] उसका आत्मा-अंश. दोनों की वास्तविकता बराबर है, क्योंकि स्वरूप [illegible] है और [illegible] का [illegible] होता है. 'ब्रह्म-जीवी' नहीं प्रभु [illegible] का [illegible] की [illegible] की पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालता है.¹ "<u>जितने जानदार हैं, वे सब उसी [illegible] से उत्पन्न हुए हैं जो प्रभु का है. जितने जीव हैं [illegible] है. इस तरह दृष्टि से सब जीव उसी के बालक हैं.</u> जिस प्रकार बालक माँ के गर्भ का अंश है, उसके गर्भ में रहता और पलता है, उसी तरह सब प्रभु से पैदा होते हैं, [illegible] उसी से हमारा पोषण [illegible] होता है और उसी में हम [illegible] रहते हैं, जैसे बालक अपनी माता से — "हमारा सम्बन्ध [illegible] से और [illegible] है, सब उसी [illegible]

. [illegible] हमारा [illegible] साथ [illegible] स्वरूप हु [illegible].
[illegible] द्वितीय [illegible] हरिसिंह [illegible].
[illegible], [illegible], [illegible] सं०. [illegible], पृ० ८८१.
२. शरीर में [illegible] है — प्रभु शरीर [illegible] राम [illegible], [illegible], पृ०८८२. [illegible].

है, हमारा और उसका अंशांशी सम्बन्ध है. सागर और उसकी लहरों में अन्तर नहीं, सूर्य और उसकी किरणों में कोई भेद नहीं. हम मालिक से कभी जुदा नहीं हुये और वह हमेशा हमारे अंग-संग, और अन्दर-बाहर मौजूद है. गुरु नानक फरमाते हैं—"दरिआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अन्तु लहा." (सिरी म०१, पृ०२५९.)[1] तात्त्विक-साम्यता के सम्बन्ध में गुरु अर्जुनदेव ने जल में तरंग का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कहा है कि जीव की मानव-देह में प्रकट होने से किसी प्रकार प्रभु से कोई अन्तर पैदा नहीं होता. जीव वैसा रहता है जो उसका परमात्मा—

> हरि का सेवकु सो हरि जेहा, भेदु न जाणहु माणस देहा.
> जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती, फिरि सलले सलल समाइदा. (मारू सोलहे)

५- पति-पत्नी सम्बन्ध

संसार के भोले जीवों को ब्रह्म और जीव के गहन तत्त्व को समझाने के लिये गुरु नानक निरंकारी ने सांसारिक नाते पति और पत्नी के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं. पति-पत्नी के आदर्श में कहा जाता है कि वे दो शरीर और एक प्राण (आत्मा) होते हैं. उनमें परस्पर किसी भी पृथकता का भेद नहीं रहता, गोपनीयता का प्रश्न ही नहीं उठता और वे आपस में इतने सम्बद्ध हो जाते हैं कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण और अस्थिर हो जाता है. यही स्वरूप ब्रह्म और जीव का है. दोनों दो शरीर और एक प्राण हैं, यद्यपि पृथकता अनुभव की जाती है, परन्तु तत्त्व एक ही है. ब्रह्म पति है तो जीव उसकी पत्नी. पत्नी हर क्षण पति का संयोग चाहती है, परन्तु दुनियादारी के बन्धन सामाजिकता के प्रतिबन्ध आदि, और घर के अन्य सदस्यों के प्रति कर्त्तव्यानुभव, सब मिल कर पति-पत्नी-मिलन के मार्ग की बाधायें बन जाते हैं. इसे गुरु-मत में माया-जाल कहा गया है. जो जीव (पत्नी) इन बन्धनों (माया-जाल) को तोड़ कर या उनकी उपेक्षा करते हुये प्रभु (पति) से मिलन को कटि-बद्ध रहता है, वह अन्ततः सफल होता है, दोनों का संयोग होता है— जीव और ब्रह्म (पति-पत्नी) मिलकर एक हो जाते हैं. गुरु नानक इस सम्बन्ध को विप्रलम्भ शृंगार के अनोखे रूप में प्रस्तुत करते हैं. आत्मा रूपी पत्नी, परमात्मा-रूपी पति से बिछुड़ गई है (माया-जाल के कारण), कोई उसका रक्षक नहीं, स्वामी नहीं; अकेली मारी मारी फिरती है और अपने उदार-हृदय मालिक को प्रार्थना पुकार रही है. कहती है," हे मेरे बेपरवाह पति-प्रभु, मैं तेरी अनुपस्थिति में इस अन्धकार-अरण्य में

---

१. गुरुमत सिद्धान्त—सम्पादित गेवी प्रकाशिका महाराज सावन सिंह जी, पृ०११-१२.
**- सेवाग्रन्थाद का निर्देश यहाँ उपयुक्त है.

अकेली अधिकतर मैं धारण कर सकती हूँ? पति के बिना पत्नी अकेली, अन्धेरी और सूनी रातों को सुन्यकुंज जैसे काट सकती है? हे प्रभु, तेरे बिना मुझे नींद भी नहीं आती, तेरी याद सताती है, तुम्हें मुझे भाता है. —कि अपनी प्रिय ... के आलिंगन ... दुखिया विरहणी की आह और कौन है?[११] यहाँ तक लौकिक रूप में पति विमुख पत्नी की पुकार का चित्रण कर अन्त में गुरु नानक इसे आध्यात्मिक रूप से पेश करते हैं, आत्मा अपने पति से बिछुड़ कर ... विरह-विदग्ध हो रही है, मिलन चाहती है, परन्तु ... के बिना आनन्द-प्राप्ति क्योंकर सम्भव हो?[१२] स्पष्ट ही कवि आत्मा-परमात्मा के मिलन-पक्षों (जीवात्मा, ब्रह्म और नाम-स्मरण) की ओर है. गुरु नानक आध्यात्मिक ... लौकिक चित्रण की पूर्ति में प्रेम की आवश्यकता की अपेक्षा मानते हैं. यदि पति-पत्नी में प्रेम हो न हो, या पति अपनी पत्नी को पसन्द हो न हो, तो क्या पत्नी-जीवन सुखकर हो सकता है? कदापि नहीं. जैसे मैं स्त्री को पति को आकर्षित करते रहते हुए, अन्तर में ... करने होंगे. अपने को पति की प्रेम-पात्र बनाना होगा, और वह तभी सम्भव होगा जब स्त्री (आत्मा) पति (प्रभु) की इच्छाओं को जानकर अपने में अपेक्षित परिवर्तन लाने का प्रयत्न करेगी. तब वह अपने प्रिय के घर को सुशोभित भी कर सकेगी. गुरु नानक लिखते हैं कि "पिर के घर सोहै नारी, जे पिर भावै बोल." (धनासरी, पृ०६८९.) यहाँ पति-पत्नी प्रतीक से आत्मा-परमात्मा के स्पष्टीकरण में गुरु और ... प्रतीक अपनाया है. लिखते हैं कि यदि नारी (आत्मा) गुरु के अमृत-उपदेश का विचार कर अपने को पति के रंग में रंग ले, तो निश्चय ही वह पति की प्रेम-पात्र हो जायेगी—क्योंकि जब तक पत्नी को ही पति से प्रेम नहीं, पति के मन में उसके लिये स्थान क्योंकर बन सकता है. अर्थात् जब तक जीव प्रभु से मिलने को आतुर नहीं होता, प्रभु उसकी उपेक्षा ही किये रहता है. परन्तु जब गुरु-कृपा से स्त्री (आत्मा) पति (प्रभु) का ज्ञान प्राप्त करती है, श्रद्धा और भक्ति के बल में अति-विनम्र हो उससे मिलन की प्रार्थना करती है, सांसारिक बन्धनों को त्यागती है और मोह-माया का अन्त करती है, तब वह प्रिय-मिलन के परमानन्द में रंग जाती है; ज्योति-ज्योति में पारिवर्तित हो जाता है और वह (नारी) (आत्मा) अपने पति (प्रभु)

११. सुणि नाह प्रभु जीउ एकलड़ी बन माहे, किउ धीरैगी नाह बिना प्रभ बेपरवाहे.
धन नाह बाझहु रहि न साकै बिखम रैणि घणेरीआ, नह नीद आवै प्रभु भावै सुणि बेनति मेरीआ.
बाझहु पिआरे कोई न सारे एकलड़ी कुरलाये.
नानक सा धन मिलै मिलाई बिनु प्रीतम दुखु पावै.१:२. गउड़ी पूर्वी पृ०२४२.

का प्यार प्राप्त कर उसकी हवेलियों में निवास करती है और वास्तविक रूप में सुहागिन होने का गौरव उसके पद-चुम्बन करता है। स्पष्ट है कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिये जीव को आत्म-समर्पण करना होगा, ठीक वैसे ही जैसे पति को प्रसन्न करने के लिये पत्नी किया करती है. पति-पत्नी के इस घनिष्ठतर सम्बन्ध का दृष्टान्त जीव और ब्रह्म के सम्बन्धों की गुत्थी को सुलझाने में पर्याप्त सहायक हो सकता है. अन्त में, जैसे पति की प्रेम-पात्र बनने वाली नारी धन्य होती है, चिर-आनन्द एवं मधुर सुख की भोगी बनती है, ठीक उसी प्रकार मार्ग की बाधाओं (माया-जाल) का मर्दन कर जो जीव प्रभु के चरण पकड़ता है, सद्गुरु प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करता हुआ महापथ का अनुगामी बनता है, वह ब्रह्मैक्य को प्राप्त करता है. स्वयं तो वह विरह सिंधु को तरता ही है, अपने साथियों एवं सम्बन्धियों-नातेदारों को भी मुक्त करवा लेता है। यह सब उस विवाहित आत्मा (सुहागिन-नारी) की महानता का द्योतक है.

ङ- जीव और ब्रह्म की पृथकता (माया-जाल, नामाभाव, विषय-वासना, मनोविकार एवं सांसारिक बन्धनों के कारण)

जीव और ब्रह्म में तात्विक अभेद और घनिष्ठतम ऐक्य सम्बन्ध होते हुए भी, आत्मा-परमात्मा से पृथक रहकर वियोगिनी-सी तड़प रही है. दोनों के मिलन-पथ पर भ्रम की भयानक खाई खुद गई है, स्थूलता का आवरण छाया है और जीव मृग-मरीचिका के वश में यथार्थता को भूल कर विषय पर ही न्योछावर हुआ जा रहा है. यद्यपि प्रभु मिलन की जिज्ञासा होती भी है, तो भ्रममूलक अपवादों के कारण वह अन्तर्मुखी अनुसन्धाता बनने की अपेक्षा इधर-उधर तीर्थ-मठों में उसे खोजने लगता है. परन्तु पारस्परी-मार्ग पर चले पूर्व के अन्वेषक की भाँति वह जीवन भर ठोकरें खाता, मंजिल से दूर ही बना रहता है. उक्त दूरी का कारण है—पद-बन्धन, विषय-वासना, नाम-स्मरण का अभाव और माया का भ्रम. आत्मा-परमात्मा-तत्व होने के कारण अपने में कभी निस्तेज नहीं होती, परन्तु देह-धारण करने से उस पर सांसारिक सम्बन्धों के स्थूल आवरण पड़ जाते हैं, जिससे पृथकता का उदय होता है। खेद का विषय तो यह है कि जीव बंदियों और दुष्कर्मों के इन पर्दों में

१. पिर प्रभु भावै जा पिर भावै नारी जीउ, रंगि प्रीतम राती गुर कै सबदि वीचारी जीउ.
गुर सबदि वीचारी नाह पिआरी निवि निवि भगति करेई.
माइआ मोहु जलाए प्रभु रस महि रंगु करेई. प्रभ साचे सेती रंगि रंगीती लाल भई मनु मारी.
नानक साची वली सोहागनी पिर सिउ प्रीति पिआरी.३:१. धनासरी पृ०६८९.

२. हरि वरु जिनि पाइआ धन नारी, हरि सिउ राती सबदु वीचारी.
आपि तरै संगति कुल तारै, सतिगुरु सेवी ततु वीचारै.३:१४. आसा पृ०३५५.

३. उदाहरणार्थ:— विद्युत-दीपक जब तक बिजली की लहरों से सम्बन्धित रहता है, अपने

(अगले पृष्ठ पर देखें)

ही अपनी यथार्थ स्थिति समझने लगता है, और ब्रह्मरूप होते हुये भी उससे भिन्न बना रहता है... उसकी प्रवृत्ति. अच्छाई को छिपा कर झूठ को और किसी को प्रकट करना ही मायावी रूप है और छल-कपट उसी मायावी रूप के प्रतीक हैं. प्रस्तुत स्थिति का महत्तम कारण है ठाकुर(प्रभु) से प्यार तथा नाम (जप) की उपेक्षा. गुरु नानक लिखते हैं, "बिनु नावै भ्रम भुलिया ठगि मुठि कूड़िआर जीउ." (१:१, गुरी पृ०७५.), अर्थात् अकालपुरुष स्मरण के बिना जीव विश्व में चारों ओर से ठगा जा रहा है और फिर भी भ्रमित हुआ सच्चाई से कोसों दूर छिटक पड़ा है.

७- निदान

अब प्रश्न उठता है कि जीव और ब्रह्म की यह अमिट पृथकता क्योंकर दूर की जा सकती है? मानव होकर ही पथ-भ्रष्ट जीव को अन्तर्दृष्टि से आभास मिलता है कि वह गलत मार्ग पर चल रहा है, तो भी ठीक मार्ग कौनसा है? यह उसे ज्ञात नहीं होता. अतः सत्पथ के प्रदर्शक की आवश्यकता पड़ती है. इससे निदान की उपयोगिता ज्ञात होती है, जब तक पथ-प्रदर्शक के आदेशों का पालन न किया जाये, उसकी उपयोगिता मात्र-सैद्धान्तिक ही रहती है, जिस से वास्तविक लाभ नहीं हो सकता. अस्तु, जैसा कि कहा गया है कि माया के बन्धनों से छूटने, आत्मविकारों से बचने, जीव को परमात्मा की प्राप्ति करने हेतु एक प्रकार का साधना पड़ता है, जिसका स्वरूप ज्ञान-क्रियात्मक एवं भावात्मक पद्धतियों में प्रस्तुत किया जाता है.

८-विकारों का अन्त...

किन्तु जीव को सर्वप्रथम अपने मानसिक विकारों का अन्त करना अत्यावश्यक है. पंच-दूतों को निरस्त करना, मोह-माया के बन्धनों को काटना एवं सांसारिक-आकर्षणों को त्यागना ऐसी व्यावहारिक-क्रियायें हैं, जिन से भटका हुआ जीव स्थिरता प्राप्त

—? कभी निरर्थक नहीं हुआ. स्वयं प्रकाशित होता है, दूसरे को प्रकाशित-दान देता है. परन्तु यदि उसी पर कुछ मोटे आवरण डाल दिये जायें, तो वह प्रकाश देने में असमर्थ हो जाता है. यद्यपि तब उसका आलोकित स्वरूप ज्यों का त्यों ही बना रहता है और उस मोटे-आवरण स्थूल पर्दों को हटा देने से वह पुनः देदीप्यमान दिखने लगता है. ठीक वैसे ही आत्मा पर दुष्कर्मों और विषय-वासना के पर्दे पड़ जाने से वह अपनी ज्योति खोकर ब्रह्म से जुदा हो गई है, ज्यों ही ये पर्दे हटाये जायेंगे, प्रकाश स्वयमेव दीप्त हो उठेगा.

१. गुरमत के अनुसार सत्कर्मों(पूर्व-जन्म के) बिना मेल [illegible] कभी नहीं होता. प्राप्ति से जाता है, [illegible] लोगों की संगत, सत्-कर्मों का [illegible] एवं अन्तःकरण की शुद्धि.

करता है. मन की चंचलता के अभाव में मनुष्य दुनिया के विषय-विकारों में फँसा, माया के हाथों की कठपुतली बना नाचता रहता है. ऐसी स्थिति में प्रायः विज्ञता भी नष्ट हो जाती है! जीव अपनी पतित स्थिति में ही संतुष्टि-लाभ करने लगता है. उसकी गिरावट यहीं तक सीमित नहीं रह जाती, वह और भी दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है तथा अपने हाथों अपनी भलाई का पथ-रोध करता है. गुरुवाणी में विकारी मन की जो यह हेय स्थिति है उसे अपराधी ठहराया गया है, और इसे वश कर लेने को विश्व-विजय बरोबर महत्व दिया है! गुरु नानक लिखते हैं कि मन को समझाने और वश में करने से ही स्वामी-प्रभु (प्रिय-मिलन) सम्भव है—

बोलै बोलि अडोयरु होवै किउ कार अव्यु लाजै.
कुदि कुशमी सु नानकु प्रवचै अपणे मन समझावै.[२]

आगे लिखते हैं कि मन को समझाने के साथ साथ पंच-विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) का अन्त करना भी परम-तत्व की प्राप्ति में अनिवार्य है. कृत्रिम आडम्बर (योग-धारण, जटा-वर्द्धन, भगवा पहनावा, घर-बार का त्याग, आदि), जीव की निर्बलता का द्योतक होगा. उसे तो किसी अनुभवी महापुरुष के चरण पकड़ने चाहिये और उसके उपदेशों-आदेशों से ज्ञान की पात्रता प्राप्त कर अपने को प्रभु के समीप लाने का उपक्रम करना चाहिये. गुरु की कृपा और विवेक साथ वश से मन की चंचलता भी शान्त होगी और, तभी परम-पद प्रभु की अति-निकट आत्मकारी भी मिल सकेगी.[३]

प्रिय-मिलन के पथ पर मनोविकारों के अन्त से पहले रखा गया प्रथम-चरण ही "गुरु की आवश्यकता" की ओर संकेत कर रहा है. अर्थात् ऐसा प्रतिभासित होता है कि गुरु की प्राप्ति के बिना कोई जीव मिलन-पथ का अनुगामी नहीं बन सकता. (पीछे इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है) अतः किसी सच्चे गुरु की खोज अवश्यम्भावी है; वह ज्ञानचेतना से पूर्व की जाये या बाद में, परन्तु मार्ग का ठीक-निर्देश उसके अभाव में असम्भव-प्राय है.

---

१. जिस प्रकार नाली का कीड़ा गंदी जगह में जन्म लेता, और पलता है; वह धीरे धीरे अपने वातावरण का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि नाली की "दुर्गन्ध" छोड़ कर वह उपवन की "सुगन्ध" में भी रहना नहीं चाहता.
२. मनु मीतै, अतु भीतु— अनुभी.
३. पद ११. राग रामकली, पृ० ९०४.
४. अहंकार जेतु निरंकार हुआ, हउमै ममता दूर करी. काम क्रोध अहंकार निवारे गुर के सबदि सु मनि वसी. जिनि सोहि नारायण रसना नानक तारे जेते लोक.
ताणा ताणि सु जोबी नाई मरी गुर की बात सरी. रामकली सिद्ध, पृ० ९९५.

ख- गुरु की आवश्यकता: आत्म-ज्ञान एवं तत्व की जानकारी

यह मानते हुए कि गुरु की आवश्यकता के बिना जीव मुक्तावस्था के चरम उद्देश्य में [illegible] नहीं हो सकता, कबीरदास के साथ साथ नानक-पंथ भी मानता है कि वह अपने और अनुभवी महापुरुष को पहचाने, सेवे और उसका वचन माने. गुरु नानक ने [illegible] इस सिद्धान्त पर प्रकाश डाल दिया है...

गुरि मिलिऐ [illegible] पछाणीऐ सचु नानक [illegible] [illegible]. (महला [illegible] पृ० १०१०.) [illegible] गुरमति [illegible] सचु [illegible] [illegible]. (महला [illegible] १०१०) यहाँ [illegible] है कि गुरु [illegible] है तो [illegible] जीव और [illegible] का मिलन हो जाता है [illegible], तब भी [illegible] है. गुरु [illegible] है [illegible] के [illegible] में भी [illegible] की जानकारी [illegible] है. उसी उपदेशों से [illegible] की प्राप्ति होती है, यथार्थता जीव से [illegible] हो जाती है. गुरु की आवश्यकता से जीव अपने और ईश्वर के बीच की [illegible] को पहचानता है [illegible] गुरु [illegible] मार्ग पर [illegible] को [illegible] को पाटने में [illegible] करता है. उसी [illegible] में [illegible] को देखता है. [illegible] का मुक्ति [illegible] है [illegible] का [illegible] करता हुआ [illegible], [illegible] जन्म-मरण के [illegible] से मुक्त हो जाता है.[1] [illegible] गुरु [illegible] की जानकारी [illegible] हुए गुरु नानक ने [illegible] है "सतिगुरु [illegible], [illegible], [illegible] हो [illegible]." [illegible] यह कि [illegible] गुरु की [illegible] न [illegible] जावे, गुरु [illegible] में [illegible] न [illegible] जावे, [illegible] में [illegible] रहेगा.

ग- नाम-स्मरण

कोई हमें [illegible] पर प्रवचन सुनावे, [illegible] जीवन [illegible] की [illegible] बतावे, तो क्या उन विधियों के अनुसार जीवन बनाने और [illegible] के बिना, [illegible] से ही हम [illegible] आत्मबोधन कर सकते हैं? कदापि नहीं. बातों से पेट नहीं भरता, पेट भरने [illegible] बातों [illegible] प्रायश्चित [illegible] होगा. [illegible] प्रकार गुरु की [illegible], [illegible] उपदेश [illegible] उसकी [illegible] बातों को [illegible] से [illegible] के [illegible]

1. [illegible] नाम [illegible]. [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible], [illegible].
2. [illegible] में [illegible] न [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].
महला [illegible], पृ० [illegible].

—— [illegible].

कोनों में छिपा रहने से भगवान् नहीं मिल जाता. आवश्यकता है, गुरु के उपदेशों को व्यावहारिकता प्रदान करने की तथा उनकी बताई बातों पर अनुपालन करने की. गुरु वाणी अनुभूति के सिद्धान्त को स्वीकार करती है और निर्विवाद रूप से कहा गया है कि जीव जब तक आज्ञापालन नहीं करता, प्रभु का नाम-स्मरण नहीं अपनाता, तब तक प्रभु से उसका मिलाप नहीं हो सकता. गुरु का कार्य है मार्ग-दर्शाना, वे नाम के स्वरूप का परिचय देता. उसके आगे के मार्ग पर अभ्यास-परिश्रम-रत जीव को गुरु के प्रति आत्म-समर्पण कर स्वयं उस-पर चलना है. उसमें लगन, स्थिरता, साधना और प्रेम की आवश्यकता है— और उसका सहारा-मात्र है गुरु द्वारा बताया हुआ नाम-रहस्य तथा उसका अनुभव. गुरु नानक ने नाम को शब्द और अक्षर (अक्षर) भी कहा है और उसके स्मरण में रहस्य-ज्ञान का महत्व प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

[illegible] सतिगुर जीवति का नाम [illegible] सिरी लिखत भा.

सरधा भेट [illegible] गुरमती [illegible] रा.मा. प. रामकली पृ. ८०८.

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि गुरु मुक्ति का मार्ग सुझाता है, और जीव उसमें विश्वास बनाकर प्रभु का स्मरण करता हुआ भव-सिन्धु से पार हो जाता है.

हरि नाम बेचि फिर पवांह न सुणी. गुरमति सार हरि नाम विहुणी.
(रामकली पृ० ९३३)

मार्ग का अधिकारी वही जो उचित पथ-प्रदर्शन कर सकता है, दूसरा कोई नहीं. इसी लिये गुरु वाणी में नाम-स्मरण के लिये भी गुरु द्वारा दीक्षा को अनिवार्य माना गया है. वह आध्यात्मिकता के इस पथ का ज्ञाता होता है, और उसकी ज्ञानवान वास्तविकता के आगे में दुर्लभ.[1] विशेष विचारणीय बात यह है कि जीव-ब्रह्म मिलन में अकेली आर्य उपस्था-दायी नहीं हो सकता. मात्र गुरु की प्राप्ति या केवल गुरु-विहीन अनुष्ठापालना, दोनों ही अपने में अपूर्ण हैं. जीव की सफलता तभी संभव है, जब उसे सच्चा गुरु मिल जाये, वह उसमें विश्वास बनाकर आत्म-समर्पण कर दे, और फिर उस द्वारा सुझाये मार्ग का एक-निष्ठ अनुगामी बने. तदोपरान्त जब जीवात्मा की सीमा प्रभु गुणगान तक पहुँचे तो मिलन अवश्यंभावी होगा. गुरु नानक लिखते हैं," प्रभु-मिलन के रूप में सर्वप्रथम वचन-बुद्धि

१. इस स्पष्टीकरण का उद्देश्य उन जिज्ञासुओं की शंका समाधान करना है, जो प्रभु नाम का जाप करने के लिये मनुष्य रूप में गुरु को अनावश्यक समझेंगे. गुरु-सिद्धान्तों में गुरु केवल मनुष्य ही नहीं, वह स्वयं ब्रह्म है (पीछे बताया जा चुका है), परन्तु एक विशेष दृष्टिकोण से वह पथ-प्रदर्शक बन कर अवतरित हुआ है, ताकि भटके हुए जीवों को ज्ञान मिल सके.

(कौमिशर) [illegible] करते हैं जो [illegible] और [illegible] नाश और दूध से सुरक्षित रखता भी उत्पन्न होता है. [illegible] का सुधार करते हैं जीव को सुनी सुनी की [illegible] सुनाया [illegible] है.[1] परन्तु [illegible] होता है ? उत्तर में कहते हैं, जब कोई सद्गुरु जीव पर कृपा करता है उसे उपदेशामृत प्रदान करता है, यथार्थ उसकी पुकार सुनकर [illegible]-निदान प्रभु [illegible] दरद्-हरन [illegible] करता है और [illegible] परमात्मा के रंग में रंगा जाता है.[2]

घ- सेवा-भक्ति और श्रद्धा

प्रभु-मिलन के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए [illegible] अनेक [illegible] गुणों की भी विशेष आवश्यकता है. हरि-नाम [illegible] तब तक उत्पन्न नहीं हो [illegible], जब तक कि उसमें श्रद्धा और [illegible] की प्रगाढ़ पुट न दे दी जावे. [illegible] के वचन को यथार्थ समझते हुए, सेवा-भावी गुरु-कृपा में परम-[illegible] के निवास की बात [illegible] गुरु नानक ने [illegible] निरपेक्ष दृष्टिकोण से कही होगी. और यही आधार होगा उनके द्वारा अपने मन को आदेश देने का, [illegible] मन, [illegible] में [illegible]-विश्वास रखना, कभी चोट न [illegible] बैठना ([illegible] न होना). [illegible] से [illegible] हुए [illegible] होता है.[3]

ङ- उपसंहार : ईश्वर-कृपा है...

जीव और [illegible] के मिलन में [illegible] जिन उपर्युक्त आवश्यकताओं की अपेक्षा बताई गई है, वे [illegible] और [illegible] में गुरु नानक पुनः [illegible] ईश्वर-कृपा की ओर [illegible] करते हैं. उनके मतानुसार [illegible] जीव के [illegible] पर [illegible] हो [illegible] अपने परम-[illegible] को [illegible] न करे, न गुरु प्राप्त हो सकता है, न जीव नाम-स्मरण का [illegible] पाता है और ना ही उसमें [illegible] [illegible] गुण उत्पन्न होते हैं. अतः संसार में [illegible] जीव [illegible] उपर्युक्त [illegible] आत्म-गुणों की [illegible] होना चाहिये, ताकि वह [illegible] से [illegible] प्रीत [illegible] की [illegible] का [illegible] बन सके.

---

1. [illegible] [illegible] पाठशाला, [illegible]. हरि [illegible] [illegible] निवारे [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] पृ. ११११-११.
2. [illegible] सिरी [illegible]. [illegible] [illegible] पृ. [illegible].
3. [illegible] [illegible] सुखारी, पृ. ११११.

च- लौकिक-वासनाओं और कर्म-काण्ड का त्याग

साथ ही ध्यान रहे कि प्रभु-कृपा के अनुकूल जीवों भक्तों को सब आडम्बर, लौकिक-इच्छाओं, कर्म-काण्ड आदि से विमुक्त रहना भी अनिवार्य है. यह सब क्रियाविधि फलाधीन है, और किसी न किसी नैतिक आश्वासन द्वारा अनुप्राणित होती है, तथा आत्म-लीन जीवों मनुष्य को आवागमन के बन्धन में पड़ा रहकर जीवन (हार-जीत) में ही रहना पड़ता है. गुरु नानक वाणी में अनेक पद लोक-दिखावों की उपेक्षा करने, एवं व्यर्थ तीर्थ-स्नानादि के त्याग का उपदेश देते हैं.

छ- जीवन-मुक्त एवं जीवित मरना.-

मिलाप के सोपान को लांघता हुआ जीव उपर्युक्त प्रत्येक स्थिति से हो कर अन्ततः जीवन-मुक्ति तक पहुँचता है. श्री गुरु अर्जुनदेव "सुखमनी" में जीवन-मुक्त का स्वरूप दर्शाते हुये लिखते हैं, "प्रभु की आगिआ आतम हितावै, जीवन मुकत सोउ कहावै". उसके लिये हर्ष-शोक, आनन्द-विषाद, स्वर्ण-मिट्टी, विष या अमृत, मान-अपमान सब बराबर है. जिसके अन्तर में प्रभु स्वयं निवास करता है, वह जीवन-मुक्त है. वह तो "आपि मुकतु मुकतु करै संसारु, नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु". गुरु नानक ने तो यही निर्देश देते हुये मारू अष्टपदी में लिखा है..

जीवत मुकत सु आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ.[1]

अर्थात् गुरुमुख जीवन विश्वास एवं भक्ति से सुशोभित तथा सात्विक गुणों से अलंकृत हो जब अहं-भाव का त्याग करता है, तो जीवन-मुक्त कहलाता है. वह जीवित ही मरना सीख लेता है. उसके लिये गुरु अर्जुन का प्रस्तुत पद चरितार्थ होता है..

आठ पहर प्रभु अपना धिआईऐ, गुर प्रसादि भउ तरीऐ.

आपु तिआगि होईऐ सभ रेणा, जीवतिआ इउ मरीऐ. (राग सूही म ५.)[2]

ज- लीनता

इस मार्ग का अन्तिम-बिन्दु जीव का ब्रह्म में लीन हो जाना है. साधक प्रगति करते हुये वह अपने शुद्ध मन से गुरु की सेवा करता है. प्रारम्भ से अन्त तक उसमें अखण्ड विश्वास से जीव उसकी आज्ञानुसार नाम-स्मरण करता हुआ ईश्वरीय-कृपा का भाजन बनता है. तभी भक्ति का उदय होता है और अपनी लौकिक इच्छाओं तथा अनावश्यक

१. पद २५, रामकली दखनी, पृ०९११. तथा उपर्युक्त गुटका, पृ०११११.
२. पद ४, धनासरी छंत, म०१, पृ०६८७.

कर्मों का त्याग कर जीव अपने प्रत्येक कर्म का हेतु उसी "[illegible]" को मानने लगता है. प्रस्तुत-भावना "निष्काम-कर्म" का आधार बनती है और उसका देखना, सुनना, चलना करना आदि सब भौतिक हेतु से हटकर परमार्थिक तक पहुँच जाता है. यह जीवात्मा-परमात्मत्व को पा जाता है और ईश्वरीय-सत्ता को पहचानकर अपने स्वामी में ही लीन हो जाता है. यथा गुरु नानक कहते हैं...

> अखीं बाझहुं वेखणा, विणु कंनीं सुणना, पैरा बाझहु चलणा विणु हथां करणा. ||
> जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा, नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा. ||
>
> (माझ, वार-भाग, पृ०१३९.)

४

जीवात्मा

आतम माह राम राम माह आतम जीवात्म गुर बोचारा.
अमृत बाणी तत्वोंह पाणी दुख काटे उजयारा.
(१:१. १२०)

चतुर्थ अध्याय

जीवात्मा

आज का वैज्ञानिक युग यह स्वीकार करता है कि मनुष्य, जो सर्व-योनि-श्रेष्ठ कहा जा सकता है, एक दीर्घ विकास का परिणाम है. प्रस्तुत विकास के अन्तर्गत आवश्यकता आविष्कार की जननी है; को चरितार्थ करते हुये, पत्थर-युग से लेकर अबतक, उच्च विचार-शक्ति, अनेक अनुभूतियाँ, उपकरण जुटाने का साहस आदि कई बुद्धियाँ मानव-जाति की शृंगार बनीं. कुछेक विचारकों ने इस सम्पूर्ण विकास को स्पन्दन का परिणाम माना, और यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मानवीय-चेतना की उत्पत्ति भी उक्त आरम्भिक स्पन्दन से ही सम्भव हो सकी है. (यहाँ भारतीय विचारधारा का तीव्र विरोध है) ऐसा हो क्यों न हो? परन्तु यह मानने में क्यों किसी को आपत्ति न होगी, कि चेतना को जिस पूर्णता तक मनुष्य ने विकसित किया है, और कोई प्राणी नहीं कर पाया. साधारणतः प्राणियों के चेतन-प्रतीकों में अनुभूति और बुद्धि का समावेश जिस स्तर पर मनुष्यों में हुआ है, और किसी में नहीं. इसीलिये मनुष्य को सर्वोत्तम-प्राणी स्वीकार किया जाता है.

जीव क्या है?

अब मनुष्य के स्वरूप का प्रश्न उठता है. भारत की लगभग सभी दार्शनिक-विचारधारायें मनुष्य में पदार्थ तथा चेतना का समन्वय स्वीकार करती हैं. शरीर पदार्थ है, उसकी उत्पत्ति कुछ प्राकृतिक-नियमों में सम्बद्ध, पदार्थ से ही होती है. वीर्य और शुक्र के मेल से शरीर ही शरीर उपजाता है. अर्थात् पदार्थ बाह्य प्रकृति की उत्पत्ति है, जबकि चेतना, परम-चेतन ब्रह्म का अंश है. श्रीमद्भगवद्गीता में क्षर, अक्षर तथा पुरुषोत्तम, जिन तीन प्राकृतिक तत्वों का वर्णन उपलब्ध है, उसमें अक्षर-तत्व(जीवात्मा) को ही जीव या ब्रह्म की परा-प्रकृति कहा जाता है(गीता ७-५). शरीर की मात्र चेतना यही है—यह जगत को धारण करता है, भगवान् का अंश (गीता १५-७) है, और यही भगवान् की वह प्रकृति है जो मरने पर एक शरीर को छोड़ दूसरे में प्रवेश करती और विषय-भोग का आधार बनती है. अंशांशी सम्बन्ध होते हुये भी भगवान् से इसकी भिन्नता का कारण दर्शाते हुये शंकराचार्य ने गीता-भाष्य (१५-७) में बताया है कि अविद्या के कारण जीव भगवान् से भिन्न दीख पड़ता है और भगवान् के सभी गुणों को उपलब्ध उसमें होने पर भी अविद्या के ही कारण जीवित दशा में इन गुणों की अभिव्यक्ति जीव में नहीं होती. अभिप्राय यह कि जीव प्रभु का अंश है, परन्तु अविद्या के अन्धकार में अपनी ज्योति को खोकर मणि-रहित सर्प की नाईं भटक रहा है.

—— १.

क्योंकि महात्मा बुद्ध आत्मा, परमात्मा तथा उनके सम्बन्धों पर मौन रहे हैं, इसलिये बौद्ध विचार-धारा को भारतीयों ने नास्तिक माना है. जैसे महायान सम्प्रदाय के योगाचारी या विज्ञानवादियों ने आत्म-विज्ञान के तथागत-गर्भ या "आलय" में जिन विशेषताओं को प्रतिष्ठित किया है, वे जीव की चेतना तथा सत्ता की ओर पूर्ण संकेत है. "आलय" को ही पुद्गल और मुक्त को अपना आत्म-विज्ञान को व्यावहारिक-जीवात्मा की कोटिमें पहुंचा देती है.

जैन-मतानुसार त्रिगुणातीत और निर्विकल्प "ब्रह्म" का शुद्ध रूप ही जीवात्मा है, जो चैतन्य है. "जीव" स्वयं भी चैतन्य है. "जीव" के समस्त गुण जीवात्मा में उपलब्ध है, परन्तु कर्मों के तंतु-जाल में बद्ध होने के कारण उसमें अनेकत्व के साथ साथ अतिरिक्त वृत्तियों जैसे विषय-वासनाओं आदि का जन्म होता है. इन्हीं वृत्तियों से बचना तथा निष्काम-भाव से आचरण रखना ही जीवों का मुक्ति-पथ है.

शंकर ने अद्वैतवाद में ज्ञानमय-कोष[1] से घिरे परम-चेतन को जीव कहा है. यही जीव लोक से परलोक जाता है. ध्यान रहे यह आना-जाना उस परम-चेतन की विशेषता नहीं, वह तो स्थिर है. अतः वास्तव में चैतन्य के प्रतिबिम्ब को पाकर "विज्ञानमय-कोष" में क्रिया उत्पन्न होती है. इसी से हमें आने जाने का भ्रम होता है. यह जीव कर्ता-भोक्ता, सुखी-दुखी होता है. यही इस संसार में रहकर भोग करता है— यह जन्म-मरण में पड़ता है, बद्ध है; अतः मुक्ति की अपेक्षा रखता है. दूसरे शब्दों में अविद्या या अज्ञान से आच्छन्न ब्रह्म को जीव कहते हैं. वेदान्ती भास्कराचार्य का मत भी यही स्वीकार करता है कि अज्ञान और कर्म के कारण जीव बन्धन में पड़ता है, और जब तक उसकी संसारावस्था रहती है, वह जीव रहता है, मुक्ति की दशा में तो वह परमात्मा में लीन हो जाता है.

रामानुज अनुसार चित्त तत्व ही जीवात्मा है, जो देह, इन्द्रियों, मन, प्राणादि से भिन्न है. यह ज्ञान का आश्रय है, ईश्वर उसका नियामक है, और यह ईश्वर का अंशभूत भी है.

मध्यकाल में गुरु नानक के सम्मुख भी "जीव क्या है?" का प्रश्न आया. परन्तु वे महात्मा बुद्ध की भाँति तर्कों और शास्त्रार्थ में न पड़ कर प्रत्येक-दार्शनिक-तत्व का व्यावहारिक

१. अन्तःकरण के भिन्न अंगों मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की वृत्तियाँ, प्रकाश-स्वरूप है, अतः उनकी उत्पत्ति सात्विक-अंश से मानी जाती है. इनके उत्पन्न होने के बाद बुद्धि और पंच-ज्ञानेन्द्रियों के सम्मिलन से कोष के समान एक सूक्ष्म-वस्तु शरीर में पैदा होता है, उसे विज्ञानमय कोष कहते हैं. भारतीय-दर्शन—उमेश मिश्र, पृ १४१.

रूप देखना भी चाहते थे. अतः उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विचारकों से भले ही कुछ-कुछ लिया और तत्कालीन परिस्थितियों के बीच में उतर कर उसे नया रूप दे डाला.

मतप्रणीत के अनुसार गुरु नानक ने जीवात्मा को भगवान् का अंश स्वीकार किया, और शंकर की तरह आत्मा और परमात्मा में अभेद माना. बाहरी भेद का मुख्य कारण उन्होंने भी माया और अज्ञान को ठहराया. पुनः वल्लभ मतानुसार त्रिगुण-बन्धनों के कारण जीव में सांसारिक प्रवृत्तियाँ और विषय-विकारों का जन्म होता है. भेदाभेदी भास्कराचार्य की तरह मुक्त जीव को परमात्मा में लीनता स्वीकार की. इन सभी पेचीदगियों को कोटि से बाहर मुक्तावस्था प्रदान करने में गुरु नानक ने जीवात्मा को विशुद्ध सत्-चित् और आनन्द ब्रह्म का अंश स्वीकार कर अद्वैतवाद की कल्पना के अन्तर्गत उसमें आनन्द का अभाव घोषित किया. यदि जीव इस अभावयुक्त अंश को भी प्राप्त कर ले तो वह ब्रह्म से अपना अभेद देखने की योग्यता पा जायेगा. आनन्द की प्राप्ति का एक मात्र साधन है, सत्कर्म और सात्विकता. यदि जीव मंगल-कार्यों की ओर प्रवृत्त हो, बुराई और छल का त्याग कर अपने वर्तमान को सच्चिदानन्द [illegible] में अपने [illegible] को [illegible] करे तो मुक्त आनन्द भी प्रकट हो जायेगा और वह भाग्यशाली जीव जन्मों के चक्कर से मुक्त हो जायेगा या अज्ञान के अन्धकार में रहते हुए भी मुक्त बन जायेगा. उसकी यह जीवन-मुक्ति कहलायेगी. ऐसा जीव "सर्व-वेदान्तसार" [illegible] के रूप में जीवन का दृष्टिकोण बदल लेगा, और प्रभु-भक्ति में तल्लीन रहता हुआ मृत्यु पश्चात् जन्म-मरण से मुक्त हो जायेगा.

स्पष्टीकरण के हेतु यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के शरीर की प्राण-शक्ति या चेतना परमात्मा के स्वरूप की वस्तु है, जो उस प्रभु की ओर से प्रदान की गई है. यह चेतना ज्योति की ज्योति (परम-ज्योति) का प्रतिबिम्ब मात्र है, जिसके प्रतिरूप-प्रकाश और उपस्थिति में शरीर गतिशील और चेतन बनता एवं संसार में जीवित प्राणी कहलाने की क्षमता पाता है. सिक्खों के पाँचवे गुरु अर्जनदेव जी ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है —

ऐ सरीरा मेरिआ, हरि तुम महि जोति रखी,
तां तू जग महि आइआ.. रामकली आनन्द पउड़ी ३३, पृ०९२१.

अर्थात् आत्मा या जीव शरीर नहीं, वह परम-ज्योति का अंश है और पिछले अनुभाग में बताया जा चुका है कि वह ज्योति चिर-स्थायी, देश-काल की सीमाओं से बाहर एवं अविनश्वर है, उसका अंश जीव भी अविनाशी है. शरीर की चेतना इसी लिये वह ज्योति प्रभु की ओर से रखी गई है, अतः शरीर के नश्वर होने पर भी वह वास्तव

है और जिस प्रकार [illegible] से छूटकर उछलकर इधर-उधर गिरते और अन्ततः उसी में समा जाते हैं, वह [illegible] भी शरीर के नाश होने पर परम-ज्योति में विलीन हो जाता है.[1] [illegible] जीव [illegible] है तो शरीर [illegible]. गुरु [illegible] लिखते हैं—

क— परमातम कुं जीवरा नाही.[2]

ख— ऊंची चढी फिरदौसी आऊं. गुरु न आता [illegible] जाई.[3]

गुरु नानक ने भी ऐसे ही विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है कि जीवात्मा वीतरागी की भाँति प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है, वह परमात्मा-स्वरूप नहीं. वह मृत्यु को प्राप्त होने के बाद [illegible] उसी की ज्योति में विलीन है.[4]

आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि [illegible] विचारकों का निष्कर्ष आत्मा, जीव या शरीर की प्राण-शक्ति अथवा [illegible]-शक्ति है. शरीर में [illegible] निर्देश करने वाला कुछ नहीं, वह आत्मा ही भासती है, [illegible] है, [illegible] है. कई विचारकों का कहना है कि आत्मा [illegible] है. परन्तु गुरु [illegible] के विपरीत है. गुरु नानक मतानुसार जीवात्मा [illegible] रूप में है, ब्रह्म नहीं. [illegible] निरंकार ने अपनी ज्योति से उत्पन्न किया है, अतः वह उसका रूप हो सकती है. [illegible] होने से [illegible] निरंकार से भिन्न [illegible] है, परन्तु [illegible] है, तो जीव [illegible] निरंकार में लीन होने पर [illegible] परम, परम ही रहेगा, जीव आत्मा का अस्तित्व उसमें विलीन हो चुका होगा. यही गुरु नानक ने लिखा भी है—

तू पूरा हम ऊरे होछे तू गउरा हम हउरे. ([illegible], पृ० [illegible])

जीव परमात्मा का अंश होता हुआ भी परमात्मा से भिन्न है. उसकी [illegible] सीमित है; वह [illegible] फैलाव नहीं रख सका, [illegible]-शरीर में निवास करने से उसकी [illegible] पदार्थ-विधानों की ओर प्रवृत्त हो चुकी है. भाई [illegible] जी [illegible] प्रकार मनुष्य की [illegible] निम्न-नियमों [illegible] में निवास है, और उसी तरह उसकी [illegible] नियमों और [illegible] पर आचरण करने से ही सम्भव है. वे नियम पूर्व-निश्चित हैं, जीव में ऐसी कोई

1. गुरु [illegible], गुरु नानक [illegible]. [illegible]. आदि [illegible], पृ० [illegible].
2. [illegible] पद [illegible]. भ० ५, पृ० [illegible].
3. [illegible], पृ० [illegible].
4. [illegible].
5. [illegible] (जीवात्मा)—भाई [illegible] जी. पृ० [illegible].

—— ९.

सोचता नहीं कि वह नये जिस्म बना ले या पूर्व-निर्धारित को बदल सके? गुरु अर्जुन देव कहते हैं—

> प्रभु जिसु सामर्थु तिसु नाहि अभिमान.
>
> नाहिन जाके कछु न हाथ.[1]

फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो सामर्थ्य प्रभु की ओर से जीव को प्रदान किया गया है, उसके प्रयोग में जीव को बहुत कुछ स्वतन्त्रता है. परमात्मा (हुकम-रजाई) का अंकुश वहाँ भी रहता है. गुरु नानक बताते हैं कि प्रभु का बनाया यह जीव किसी विशेष अवस्था में पहुँच कर भी स्वयम् के अहंभाव से कुछ नहीं कर सकता. सामर्थ्य-शक्ति-प्रीति का भी है, (बल बताना भी वस्तु है). जैसे चाहे, जहाँ दे, जैसे (बनाते हुये या जीव के) वे चलते हैं कुछ बनता-बिगड़ता नहीं.[2] पुनः कहते हैं—

> करण कारण करि हरि करता, जिसु मिलाए सोई मीत.
>
> नानक बसु गुरमति कर देवै, हुकम बताये सोई मीत.[3]

और यह कि जीव शरीर के भीतर सूक्ष्म-शक्ति का अंश है, परन्तु अपनी प्राकृत सीमाओं में प्रस्तुत होते हुए भी वह पूर्ण नहीं. इस भेद के कारण उसमें परम-शक्ति की विशालता निहित है, किन्तु प्रभु की निजी विशेषताओं को ग्रहण करने का सामर्थ्य उसमें नहीं. यह शरीर की प्राण-शक्ति है. उसकी क्रियायें, सीमायें या प्रवृत्तियाँ सब ईश्वर की इच्छा के अधीन हैं. उसका मोक्ष भी प्रभु के हुक्म पर निर्भर करता है. जब तक वह इसके भीतर कर्म-चक्र में पड़ा रहता है, तब तक वह शरीर के नष्ट होने पर नया धारण करता रहता है, निष्काम-प्रवृत्ति होने पर वह मुक्ति का अधिकारी होता है, अर्थात् परम-ज्योति में विलीन होने का सामर्थ्य पा जाता है.

जीव का मोक्ष-लक्ष्य —आत्मविकास : लीनता

उपर्युक्त पंक्तियों में लिखा जा चुका है कि आत्मा या जीव परम-तत्त्व ब्रह्म की ज्योति का अंश है. परन्तु मन, बुद्धि जैसे माया के स्थूल तत्त्वों में आवृत्त होने के कारण वह अपनी यथार्थता को खो बैठता है. इसी कारण से उसके भीतर रहकर आत्मा

---

१. गुरुमत निर्णय (पंजाबी)—भाई जोधसिंह जी, पृ० ...-....
२. पद ८:६. गउड़ी सुखमनी सलोक म०५, पृ०२७०.
३. कविता किता करै मान मानु. देवणहारे केतिम दानु.
भाई दे... ... गउड़ी... ... ...:..,१९५१, पृ० ...५.
४. पद ९:११. सोरठ, पृ० ५९८-९९.

होती है, जो परम-प्रतीति की सत्ता और चैतन्यता पर पूर्ण अधिकार पा जाती है कि जीव अपनी सम्पत्ति को पर-धन समझ अपनी भौतिक आवश्यकताओं में ही अनासक्त-सा खोया रहता है. आत्म-ज्ञान न होने के कारण जीव पुनः पुनः देह-धारण करता है. आवागमन का, मन की चंचलता ही उसकी आत्म-सम्बन्ध का प्रमाण जैसे प्रतीति-रीति विकसितता को सार्थकता बनाती है. पुराण अनुसार चौरासी लाख योनि हेतु मनुष्य-योनि की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है. बड़े भी भाग्य से मेरे अच्छे कर्मों से इसकी उपलब्धि होती है.[१] यदि इस जन्म में भी आत्म-साक्षात्कार का प्रयास न किया गया तो पुनः जन्म-मरण के प्रवाह में पड़ना होगा. गुरु बताते हैं कि चौरासी लाख योनियों के बाद बड़ी कठिनता से मनुष्य-जन्म प्राप्त हुआ है. अतएव यदि यहाँ चौरासी भी चूक हो गई (अवसर की उपेक्षा की गई), तो पुनः आवागमन का दुख उठाना पड़ेगा।[२] इस जन्म से अन्य ~~सारी~~ सभी नाशवान और व्यर्थ है, सार्थकता तो केवल सद्गुरु-दीक्षित जैसे नाम-स्मरण की है.

भई परापति मानुष देहुरिआ. गोविन्द मिलण की इह तेरी बरीआ.[३]
अवरि काज तेरे कितै न काम. मिलु साध संगति भजु केवल नाम.

अभिप्राय यह कि मनुष्य-देह में गोविन्द का मिलन निश्चित है. माया के वशीभूत के कारण वह अपने को मुक्त नहीं अनुभव करता रहा है. जन्म-मरण के क्रम में पड़ा हुआ वह दुख को भोग रहा है. यदि वह अपने में ईश्वरत्व को खोज ले, तो तत्-चिन्तन के आधार कुछ ही समय में वह अपनी आस्तिकता को परमात्मा में लीन कर चिर-मुक्ति का अधिकारी बन सकता है. और फिर—

मिटि बहु धात बहुरि नहीं भटकना. जिउ जोति जैसे जोति समाना.
मिटि गये गवन पाये बिसराम.[४]

लक्ष्य
~~आत्म~~-सिद्धि के साधन

आत्मानुभूति अथवा अपने को पहचानने के बाद नाम द्वारा प्रभु को निरन्तर मन में जगा कर उसी में लीन हो जाना, जीव का अन्तिम-लक्ष्य है. जैसा कि बताया जा चुका है, जीव परब्रह्म का अंश है, इसलिए आत्मज्ञान ही बाद में परमात्मा का रूप बन उसकी मुक्ति का कारण बन सकता है. प्रश्न उठता है, परमात्मा का पहचान

---

१. आदिग्रन्थ साहिब ... १,१:४. पूर्वी, पृ०८०४.
२. इस बदरुली योनि आई, भजिल जो प्रभु की बौछाई.
   इस पद्धति में भी मत पूर्ण जो आदि ग्रन्थ साहिब. १:१:१९. आसा गउड़ी म०५, पृ० १०७४.
३. पद ११:१९. आसा म०५, पृ०२०८. +, सिद्धि है—सहित है.
४. पद ८:११. गउड़ी सुखमनी म०५, पृ०२९८.

—— ७.

[illegible] की भाँति [illegible] अन्तर में दो कुछ भिन्नता नहीं रहती [illegible], उसमें [illegible] विचार-[illegible] की अपेक्षा है.

क- हउमै का स्वरूप

गुरमत में मानव जीवन-कल्याण का [illegible], [illegible] प्रश्न [illegible] है. जो [illegible] क्योंकि प्रभु अपारकल्पनीय और सर्वत्र है, उसकी जीवात्मा भी अक्षर और स्थिर है. परन्तु हमारे लौकिक होने का भाव हमारे अन्दर 'मैं और मेरी' की भावना को जन्म देता रहता है. गुरमत में इसे "हउमै रोग" कहकर पुकारा जाता है. हउमै के आवरण ने जीव-आत्मा पर चेतनता को बन्दी बना रखा है. यदि इसे बन्धन-मुक्त कर दिया जाये तो ऐसा प्रतीत किया जाता है कि हउमै के कारण जीव और [illegible] की भिन्नता का अनुभव होता है, वह न रहेगा. उदाहरणतः जल से भरा "पानी भरा घड़ा" भीतर और बाहर जल [illegible] व्याप्त होता है. जो इन दोनों जलों के बीच घड़े की मिट्टी की तह का आवरण रहता है, जो उन्हें एक दूसरे से पृथक रखता है. यदि घड़ा फूट जाये तो जल जल में कहां भिन्नता और अभिन्नता भाव की अपेक्षा यहाँ मूर्खता का द्योतक होगा.[१] ठीक इसी प्रकार हउमै के आवरण में जो चेतना बन्द है, वह सर्वव्यापक चेतनता से [illegible] भिन्न है [illegible] इन दोनों में पर्दा पड़ा है. और यदि यह पर्दा (हउमै) हट जाये, तो [illegible] विभिन्नता और [illegible] का [illegible] होगा. ईश्वरत्व से [illegible] पहले ऐसी हउमै का, अहंकार का, यहाँ [illegible] निजी [illegible] और [illegible] आवश्यक है. यद्यपि यदि मनुष्य अपने को [illegible] और [illegible], तो उसको [illegible] की [illegible] जीव को वह विचार-[illegible] भी [illegible], जो उसे [illegible] से [illegible] करे. गुरु नानक फरमाते हैं.—

> [illegible] तब दुख [illegible] मेरा [illegible] निवारी.
> नानक [illegible] गुरमुख [illegible].[२]

---

१. जैसे कुंभ उदक पूरि आनिओ तब इहु भिन दिसटो.
कहु नानक [illegible] माहि डारिओ [illegible]. [illegible], पृ [illegible].

२. [illegible] राग तुखारी. पृ. [illegible].

<u>८— नाम-स्मरण</u>

हरि की अनुभूति तथा मुक्ति की प्राप्ति का उत्तम और सरल मार्ग है नाम-स्मरण. गुरु-नानक ने [illegible] वाला मुक्ति अपनी अन्दर की हरि का [illegible] कर [illegible] तक से मन का राहत मिलता है. उसका चित्त-[illegible] मन हरि-नाम की धारा से [illegible] हो जाता है, शुद्ध हो जाता है। इतना ही नहीं, नाम अपनी धारा धीरे धीरे अपने उद्गम को ही [illegible] कर देता है. गुरु [illegible] कहते हैं—

> [illegible] न बिसरै नानु ते [illegible],
> [illegible] न [illegible] मुख [illegible] मेलना। ([illegible], पृ० [illegible], [illegible])

[illegible] न [illegible] कि [illegible] नाम-[illegible] की [illegible] र, उसे [illegible] परम-[illegible] से प्रेम [illegible] [illegible] करता है कि मनुष्य की हरि-मुक्ति [illegible] नैतिक-[illegible] हो जाता है. [illegible] मूर्ति विशुद्धता [illegible] [illegible], [illegible] सुख [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] की [illegible] सुख देने में [illegible] होते है. [illegible] [illegible] [illegible] मुक्ता और [illegible] ~~[illegible]~~ परोनी-[illegible] से मुक्त होने का [illegible] करता है. गुरु नानक का [illegible] है—

> हरि नाम [illegible] [illegible] [illegible] न मुनी।
> [illegible] [illegible] हरि नाम [illegible]। (१०, रामकली [illegible], पृ० ९१२)

[illegible] [illegible] है कि मनुष्य यदि ईश्वर से [illegible] [illegible] हरि से [illegible] से [illegible] प्रभु [illegible] [illegible] में [illegible] हो जाता है. वे [illegible] देते हैं कि [illegible] हरि-[illegible] करो, [illegible] [illegible] [illegible], उसका स्मरण-[illegible] करो, और [illegible] का [illegible] [illegible] अपने परम-[illegible] [illegible] का आनन्द [illegible] करो।

[illegible] रहे यदि हरि का नाम [illegible] मनुष्य मुक्ति [illegible] करे, तो उसका बहुत [illegible] मनुष्य में [illegible] का [illegible] होता है. वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] अनुभव करता है, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता रहता है.

> [illegible] [illegible] [illegible] होवै, [illegible] [illegible] [illegible]।   [illegible] [illegible]
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] न [illegible] [illegible]।[1] ([illegible], पृ० [illegible])

---

१. [illegible] प्रभु [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible]. हरि [illegible] [illegible] [illegible] प्रभु [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] है हरि नाम [illegible]. (६ [illegible] [illegible], पृ० [illegible].)

२. नानक [illegible] [illegible] हरि [illegible] [illegible] [illegible]. हरि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
हरि [illegible], हरि [illegible], हरि [illegible] [illegible] [illegible].
हरि [illegible], हरि [illegible], हरि का नाम [illegible]. ([illegible] रामकली [illegible], पृ० [illegible].)

ग- गुरु प्रतीक

ठीक है कि नाम-स्मरण से [illegible] और [illegible] की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु नाम-स्मरण करने वाला [illegible] करने वाले [illegible] नहीं होता, और वह है गुरु. अपने गुरु का बताया मार्ग ही वास्तव में नाम-स्मरण का साक्षात्कार कराता है. गुरु ही नाम [illegible] सकता है. [illegible] [illegible] वास्तविक रूप को [illegible] है. [illegible] नाम-स्मरण से भी गुरु [illegible] की [illegible] की आवश्यकता पड़ती है. [illegible] शरीर के स्वर्ण-मंदिर में रहने वाले [illegible] [illegible] के प्रति [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] और [illegible] होती है. गुरु नानक [illegible] है—

[illegible][1]

[illegible] है, [illegible] होने पर [illegible] में ही [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है, परन्तु [illegible] में गुरु [illegible] नहीं. [illegible] होने [illegible] गुरु [illegible] की आवश्यकता होती है, [illegible] गुरु [illegible] की [illegible] अपने गुरु के [illegible] है. [illegible], [illegible] को [illegible] गुरु की [illegible] की आवश्यकता रहती है. नाम-स्मरण

---

१. [illegible]
[illegible]
[illegible] पृ० १०५०.

५- ईश्वर-कृपा

आत्मोपलब्धि के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ईश्वरीय-कृपा का भी उच्च-स्थान है. बिना प्रभु की दया के, कोई जीव निज-बिंदु सिंधु का नैष्ठिक लक्ष्य-लाभ नहीं कर सकता. यही कारण है कि गुरु नानक ने कर्म,ज्ञान जैसे खंड के भी ऊपर "करम" को स्थान दिया है. बड़े बड़े ज्ञानी, योगी, तपस्वी आदि आकाश-मण्डलों के निम्न-स्तरों पर ही भटकते रह जाते हैं, जबकि दूसरी ओर किसी साधारण मनुष्य पर भी यदि उसकी नदर दया-दृष्टि पड़ गई, तो वह क्षण-मात्र में प्रभु की गोद में खेलने लगा. गुरु नानक कहते हैं—

ताके नदरि करे ता होई. गुरमुखि निरमल पूरे जोई.[1]

सम्भवतः यही कारण है कि भारतीय-धर्म-साधना में भगवद्-कृपा को उच्च स्थान दिया जाता है. विद्वानों का मत है कि अपने को ईश्वर के आश्रित करने वाले भक्तजनों पर उसकी कृपा शीघ्र होती है और उनका प्रसाद मिलता है ईश्वरीय के रूप में. इसीलिये कर्म, ज्ञान,योग जैसे साधन के आडम्बरों में भारतीय भक्ति-सन्त साधनाओं की उपेक्षा करते रहे हैं; उसके प्रति विश्वास अर्पित करते हुए पूरी तरह निश्चिन्त रहना सीखते रहे हैं. गुरु नानक भी इसे मान्यता देते हैं.

गुरु: गुरु की प्राप्ति भी तो ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है. "जिसको करे जो आपणी, सो सतगुरु मेल मिलावदा" का भाव यहाँ भी पुष्टि करता है. अतः अक्षरशः न होता कि जीव ने आत्म-लक्ष्य की प्राप्ति में उसी के मनन के योग का नाम-स्मरण गुरु-प्रसाद जैसे प्रभु-कृपा का स्थान महत्व है. जीव के कर्मों से उस पर प्रभु की करुणा-दृष्टि उठे तो उसे किसी सतगुरु की प्राप्ति हो, गुरु: गुरु उसे नाम-रहस्य समझाकर भगवद्भजन की ओर लगाये और जीव उसमें अडिग विश्वास जमा कर उसमें रम ध्यान कर दे, तब कहीं आत्मोपलब्धि का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है. निरंकार की विशिष्ट महिमा है, कि जीव को भी वह है, "बहोड़" जगने में उसका कारण अनिवार्य है.

सत्य तो यह है कि जीवात्मा का प्रत्येक योनि में जन्म होता तो उस पर प्रभु-कृपा का अकथ्य प्रभाव है. यहाँ तक कि जैसी योनि है, उसमें चैतन्य स्तर पर मैया, गुरु जैसे सत्कृपा विद्यमान है, और उसी में रहता हुआ जीव आत्म-ज्ञान की अन्तिम

---

१. पद ३३७/४ रामकली, पृ०८७७.

२. कृष्ण गोविन्द आदि आदरा निरंकारस्व सारी. पद २:२, विलावल पृ० ८३५.

— १२.

[illegible] तक पहुँच कर [illegible] पर [illegible] होता है. [illegible] जीवन में [illegible] और और नाम-स्मरण की [illegible] हो जाती है. [illegible] की [illegible] की [illegible] ही निश्चय की [illegible] है! यहाँ भी याद किसी [illegible] की [illegible] न हुई तो जीव [illegible] की [illegible] भूमिका से [illegible] तक पहुँचने में [illegible] फिर [illegible] जायेंगे. चौरासी लाख योनियों का [illegible] पर [illegible] मिला, [illegible] याद [illegible] और उपलब्ध [illegible] है [illegible] पाने, तो निश्चय [illegible] में [illegible] रहट में [illegible] पड़ेगा. [illegible] में [illegible] जीव को [illegible] है, [illegible] नहीं [illegible] है, और [illegible] यही [illegible] [illegible] है. [illegible] है—

[illegible]

[illegible] हैं [illegible] जीव को [illegible] और [illegible] भी [illegible]. [illegible] है.

---

१. [illegible]
[illegible] पृ. [illegible]
२. [illegible], पृ. [illegible].

५

<u>भा पा</u>

भाज्या नीति न्यु बाधा जल्याद.
बांधा छूटे नाडु जाडु.
(१:८::२. नाना)

पंचम अध्याय

माया

१—माया अथवा काल

रचना करने की इच्छा से अकाल को यह शक्ति आवश्यक हो गई, जिसके द्वारा[१] विश्व में धर्म, कर्म, और काल की उत्पत्ति और [illegible] प्रवाहित हो सके। ईश्वर की यह शक्ति भिन्न भिन्न विचारधाराओं में अनेक नामों से पुकारी गई है और गुरु नानक ने इसकी रचना तथा क्रियाओं में विभक्तता और कुटिलता देखकर ही इसे माया कहा है। कभी कभी माया और काल को पर्यायवाची भी समझ लिया जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं। काल माया के साम्राज्य में विशेष राज्याधिकारी कहा जा सकता है, जो माया रचित सृष्टि में जन्म लेने वाले भौतिक जीवों को पुकारा करता है। कर्म-बन्ध में डाल कर उन के पुनर्जन्म का प्रबन्ध भी काल ही करता है। इस प्रकार माया के घर में जीव दूसरे जीव को खाने में लगा है (बड़े जीव, जो माया के अंकुश से मिलते हैं, [illegible] को [illegible] का कारण है।) काल भी कहा जा सकता है। इसकी सीमाओं में प्रायः काल [illegible] नहीं करता [illegible] भी यदि कोई जीव [illegible] [illegible] हो कि इसकी सीमाओं में रहता हुआ मन को [illegible] [illegible] अंकुश से [illegible] और [illegible] सीमाओं से बाहर [illegible] में प्रवेश करने पर कटिबद्ध हो तो [illegible] अपनी [illegible] की [illegible] होते देख काल और माया दोनों ही उठते हैं। [illegible] काल जीव को अनेक प्रकार से [illegible] करता है। माया विभिन्न प्रलोभनों से उसे [illegible] [illegible] और लोभाती है। यह जीव की परीक्षा का समय है। अपने मार्ग पर [illegible] रहना ही [illegible] होगा, [illegible] [illegible] को बीरता के पथ में [illegible] [illegible] [illegible] दिया जाएगा। जीव के बचने की [illegible] हो [illegible] है। यदि वह समझ ले कि माया के प्रलोभनों का अस्तित्व क्षण-भंगुर और [illegible] है तो वह [illegible] [illegible] का [illegible] कर [illegible] [illegible] का प्रमाण [illegible]।

[illegible] की सीमायें बहुत विस्तृत हैं। जब [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जीव पुण्य, दान, धर्म-कर्म आदि करते हैं, तब काल की सीमाओं में ही [illegible] [illegible] हैं। अपना [illegible] [illegible] पूरी पर से नष्ट हो जाते हैं।

---

१. काल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. पृ० ८४०.
२. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. पृ० १०८.
३. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
४. [illegible] [illegible], पृ० ३४८.

—— १.

गुरु साहिब ने कहा भी है—

> जम्बुदीप मांहि अवतार धरना, बहुतपुरी निकट नहीं रहना।
> निकट पुरी का [illegible] नाता, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].[2]

और भी— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ते भाई.

> [illegible] की [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] भाई.[3]

जो देवी-देवता भारत के [illegible] में हैं,[3] उनकी [illegible] और सीमाएँ भी नश्वर और क्षणिक हैं. अन्ततः [illegible] [illegible] [illegible] देवी-देवता की पूजा-आराधना की अपेक्षा [illegible] अनुभव को ही उद्देश्य अपना लक्ष्य बनाये रहते हैं. उनका विश्वास है कि गुरु-सेवा और नाम-स्मरण से वह काल की सीमाओं से ऊपर उठ सकते हैं. साथ साथ [illegible] गुणों और काल के चक्र से ऊपर उठकर मुक्ति के भागी बन सकते हैं. लिखा भी है....

> काल न छोड़ै बिनु गुरु की सेवा. [illegible]. गउड़ी, पृ० [illegible].

और भी—

> [illegible] [illegible] काल की बिनु गुरु [illegible] [illegible].
> [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible], पृ० [illegible].

तथा

> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] छूटै [illegible] [illegible]. [illegible]. पृ० [illegible].

अतः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बिना [illegible] से कोई नहीं छूटता. भारत के भिन्न ग्रंथों में [illegible] जीव काल की सीमाओं को ही अपना वास्तविक घर समझ लेता है, और भिन्न-भिन्न स्थितियों से मृत्यु प्राप्त कर [illegible] योनियों में जन्म लेने का अधिकारी होता है. भारत के तीनों गुणों में से मृत्यु के समय जो प्रधान हुआ, उसी के आधार पर नये जन्म की प्राप्ति होती है. सत्वगुण प्रधानता में मृत्यु होने पर जीव स्वर्गादि लोकों (जो काल की सीमा में ही हैं) का आनन्द लेता है, तथा पुनः उच्च कुलीन वाले मनुष्य के कुल में जन्म धारण करता है. रजोगुण प्रधानता में मरने पर वह पुनः कर्मासक्त मनुष्य बनता है. तमोगुणी मृत्यु से कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में पैदा होता है.[4]

१.१. [illegible] [illegible]. राग गउड़ी म० ५, पृ० [illegible].
२. [illegible] [illegible]. राग [illegible] म० ५. पृ० ५००.
३. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible]. गउड़ी. पृ० [illegible].
४. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १४, श्लोक १४-१५.

— २.

प्रकृति के इस अधिकार क्षेत्र से मनुष्य की यथार्थ निवृत्ति से परे निष्काम-भक्ति अपनाने में ही कल्याण है. अन्यथा जीव की स्थिति मदारी के बन्दर की नाईं बनी रहती है. काल उसे जैसा नचाता है वैसा ही वह नाचता है.और नाली के कीड़े की भाँति, जो उसकी दुर्गन्ध से अपरिचित होता है,जीव भी नाला में पड़े (काल-जाल में फँसे) अपना अपना स्वरूप विस्मृत करते जाता है.

काल शब्द का उपर्युक्त अवस्था के अतिरिक्त अन्य दो [illegible] भी अन्य अर्थों में भी प्रयोग होता है. मृत्यु और समय. निश्चित ही काल-अवधि आधारित होने के कारण मृत्यु भी काल है. इसकी सीमा-रेखा के अन्तर्गत जो भी आया या रहा,उसका विनाश अवश्यम्भावी है. कहा जाता है "जो बढ़ा सो टूटेगा", अर्थात् जिसने प्राकृतिक नियमों के बन्धनों में आना स्वीकार किया है वह स्वाभाविकतः उन नियमों से विनाश में पड़ जायेगा. प्राणियों में नर और मादा के संयोग से जिसका जन्म हुआ,उसकी मृत्यु अटल है. किन्तु वही जीव,जो स्थूल-शरीर की उत्पत्ति के कारण-भूत, तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म,मरण,वृद्धावस्था आदि सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ,इस काल-जाल से बाहर परमेश्वर की गोद में पहुँच कर परमानन्द को प्राप्त करता है.[1]

काल समय का प्रतीक भी है. इसकी सृष्टि निश्चित नियमों के बन्धन में बन्धी हुई है. [illegible] मनुष्य की [illegible] से बाहर [illegible] ऐसे व्यक्ति जन्म-विनाश के दुःख, आनन्द और अपमान में किसी न किसी सीमा पर अपनी [illegible] का परिचय देता है. समय अखण्ड परिवर्तन का ज्वलन्त उदाहरण है, और काल की दृष्टि उसकी सूत्रधार-रूपिणी. काल की शक्ति ब्रह्माण्डों-ब्रह्माण्डों की रचना करती तथा विनाश का कारण बनती है.उसको नियम और समय में परिवर्तन का आधार बनाती है. चारों युग काल के रूप में हैं. उनमें वर्ष,मास,दिवस,घड़ी-पल या पलों का विभाजन है. महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया "वार्ता क्या है?" युधिष्ठिर का उत्तर था,"महीनों और ऋतुओं की कलछी चलाते हुये,सूर्य की आग और ताप पर,इस जगत के मोहमय कड़ाहे में,काल जीवों को पका रहा है; यह यही वार्ता है." स्पष्ट ही समय के बन्धनों में काल ने जीवों को ऐसा जकड़ रखा है कि वे "अकाल" को बिल्कुल भूल ही गये हैं. समय के परिवर्तन में वे भटके हुये शीघ्र अपना "अकालत्व" समझ रहे हैं. यही कारण है कि विवेक का प्रवेश [illegible] के निश्चित समय के बाद अनस्तित्व में प्रवेश कर जाता है. [illegible] कहा है,"सब [illegible] है, [illegible] के पात्र जीवों को परखने [illegible] जैसा [illegible] है, सतोगुण में सेवा और रजोगुण में होम धारण करने वाला जीव समय की दौड़

कृपया पाद-टिप्पणियाँ अगले पृ० पर देखें। धन्यवाद।

[illegible] वे [illegible] विमुक्त होकर अमृत [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] दुःखों से परे [illegible] [illegible] और [illegible] सरीखे दुःखों से [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] में [illegible], और [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] हुआ [illegible] [illegible] में भी [illegible] [illegible] जाता है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] की [illegible] होगी—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].[1]

२-माया का स्वरूप

भारतीय शास्त्रों में माया के भिन्न-भिन्न रूपों का [illegible] उपलब्ध है. वेदान्त के अनेक आचार्यों ने इसे पृथक् पृथक् दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया है. शंकराचार्य सरीखे महामनीषी ने इसे ब्रह्म की शक्ति माना है. किन्तु वे इसे ब्रह्म का भिन्न रूप नहीं मानते. यह ब्रह्म की [illegible] [illegible] मात्र है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है.[2] [illegible] [illegible] में माया ब्रह्म से भिन्न [illegible] नहीं है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माया को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] (आदि का मूल कारण) है, [illegible] [illegible] [illegible] रहे हैं [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] है—क्योंकि वह गुण मात्र ब्रह्म का है. और [illegible] [illegible] भी नहीं है. [illegible] [illegible] "[illegible]" वास्तविक [illegible] पड़ती है. [illegible] और अनित्य दोनों [illegible] [illegible] ही वस्तु की [illegible] [illegible] है, अतः [illegible] [illegible] [illegible] कहते हैं.

---

१. गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्.
[illegible] [illegible] [illegible] दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते. श्लोक २०, अध्याय १४, गीता.
२. महाभारत—काव्य और दर्शन के परिप्रेक्ष्य में—[illegible] [illegible] [illegible]. पृ० ३५२.
३. [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], पृ० ३३२.
४. भारतीय-दर्शन—चट्टोपाध्याय तथा दत्ता, पृ०३३८.

रामानुज का विचार इससे भिन्न है. वे माया को ब्रह्म की नित्य शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं, जो हर क्षण वास्तविक सृष्टि का निर्माण, पालन, तथा विनाश करती रहती है. अतएव रामानुज के अनुसार माया ब्रह्म की नित्य अधीन शक्ति है, इसकी वास्तविक परिवर्तन होता है. यहाँ दोनों का भेद हो जाता है. यदि ब्रह्म को नित्य मान लें परिवर्तन होने से तो आंशिक ब्रह्म में परिवर्तन होना स्वीकार किया जाएगा. किन्तु फिर ब्रह्म में किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना तो नहीं कर सकते.

गीता के भाष्यकारों ने सृष्टि को मूल-प्रकृति ब्रह्म की माया रूप में ग्रहण किया है. यह त्रिगुणमयी (सत्, रज् और तम. इन तीनों गुणों के मिलने का नाम प्रकृति है) कही गई है, अतः भाष्यकारों ने माया का स्वरूप त्रिगुणात्मक बैठा. माया के स्वरूप का वर्णन होने का यही प्रकृति-गुण-उत्पत्ति से भी किया गया है—अ वे तीनों गुण, रजसे के तीनों गुणों (देखो) की उत्पत्ति में मिल कर गुण मेल से सृजन का कार्य करते हैं.[2]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने माया की उत्पत्ति के बारे में उपदेश देते हुए सांख्य-प्रकृति की तरह ही बताया है कि नाना प्रकार की योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, त्रिगुणमयी माया तो उन सब का गर्भ धारण करने वाली माता है. और मैं बीज को स्थापना करने वाला पिता हूँ.[3] अविनाशी आत्मा अजन्मा है किन्तु प्रकृति से उत्पन्न सत्, रज, और तम, तीनों गुण इसे शरीर में बाँधते हैं.[4]

(इस प्रकार शास्त्र में भी त्रिगुणात्मिका को माया कहा गया है. नाना रूप भगवान् से माया उत्पन्न सृष्टि-प्रक्रिया का और प्रकृति किया जाता है.

३. निम्बार्क जी भी इस गुण ब्रह्म में कोई वास्तविक परिवर्तन स्वीकार नहीं करते. उनके अनुसार वासुदेव का स्वरूप नित्य और अपरिवर्तनीय है. प्रकृति और परिवर्तन सम्बन्धी हैं, किन्तु वे गुणातीत ही हुए हैं, यहाँ परिवर्तन का कोई प्रश्न

१. दि फिलॉसफी ऑफ उपनिषद्स — ..., पृ० २०८.
२. भारतीय दर्शन — बलदेव उपाध्याय, पृ० ४०४.
३. अध्याय १४, श्लोक ४, गीता.

४. सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः, निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्.
गीता अध्याय १४, श्लोक ५.

१. रामानुजाचार्य की तरह गुरु नानक मानते हैं कि माया ब्रह्म की [illegible] अचेतन [illegible] है, जो आकार सृष्टि की वास्तविक रचना कर रही है.[1] [illegible] रहे [illegible] [illegible] भिन्न है किन्तु उसका पर आश्रित होने के कारण उसी पारमार्थिक [illegible] [illegible] जा सकती है. अतः सृष्टि का आदि और अन्त.

२. माया परम-तत्त्व ब्रह्म की शक्ति है. [illegible] उसका निरपेक्ष [illegible] वास्तविक [illegible] है. वह स्वतन्त्र मिथ्या नहीं है. किन्तु गुरु नानक के अनुसार वह दुखदायी, क्योंकि बन्धन है. यदि उसकी उपेक्षा न की जाये तो जीव [illegible] उसके [illegible] आकर्षणों [illegible] अपना [illegible] कर भटकते रहते हैं और मरण-जन्म [illegible] [illegible] [illegible] बैठेंगे. [illegible] [illegible] जीवों को माया के आकर्षणों की ओर से उदासीन होकर ही [illegible] करनी होगी. [illegible] [illegible] [illegible] है.

३. गुरु नानक [illegible] ब्रह्म की [illegible] माया की [illegible] को स्वीकार करते हैं.

४. [illegible] की भाँति [illegible] [illegible] तथा परमेश्वर-[illegible] की गुरु नानक ने [illegible] माया और उसके तीनों गुणों [illegible] [illegible] स्वीकार किया है.

५. गुरु [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की माया [illegible] [illegible] है, जो जीव के [illegible]-[illegible] में [illegible] [illegible] है. ([illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] है).

क– ब्रह्म की [illegible] [illegible]

माया ब्रह्म [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] की [illegible] की [illegible] और सृष्टि-[illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] है कि गुरु नानक ने [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] या [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] दार्शनिक विवेचन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था कि माया ब्रह्म के [illegible] गुणों-[illegible], [illegible]-[illegible] के [illegible] [illegible] सृष्टि [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] है. [illegible] गुणों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होने के कारण [illegible] की [illegible] और [illegible] की आ[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है,[2] [illegible] कारण मनुष्य की [illegible] में [illegible], [illegible], [illegible]-[illegible],

[illegible]

१. [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].) २. [illegible], [illegible] ६, [illegible] ४.
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].)
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible]

—— [illegible].

अद्भुतात्मक [illegible] और [illegible] अपनी वस्तु-[illegible] का [illegible] होता है. [illegible] [illegible]
[illegible] और [illegible] में बदलता है. [illegible] पर होता है कि [illegible] [illegible],
और [illegible] [illegible] प्राप्त हो जाता है [illegible], [illegible] के प्रभाव से मैं
[illegible] जाता है. [illegible], सवैया या [illegible] को [illegible] [illegible] है.
अद्भुत की उत्पत्ति [illegible] से होती है. [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible]
में [illegible] होता है. [illegible] और [illegible] की पूर्ण [illegible] और [illegible] में अद्भुत
[illegible] अद्भुत से युक्त है. [illegible] [illegible] है—

> [illegible] [illegible] गुणों [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] २. [illegible]
>
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]२.
>
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] २.२८"

(यहाँ [illegible] से दोनों गुणों को और [illegible] है. [illegible] रसात्मक गुण [illegible], [illegible] में [illegible] और [illegible] होने के कारण [illegible], [illegible] में [illegible] के कारण अद्भुत, [illegible] किया गया है.)

[illegible] [illegible] [illegible] भाषा "[illegible] [illegible] की [illegible]"[2] [illegible] निश्चित हो सकती है, [illegible] गुणों में [illegible] और [illegible] नहीं आ पाती. जब दोनों गुण [illegible] होते हैं, तब हो हो कर अपने में [illegible]; और [illegible] हो जाते हैं, तो वह [illegible] योग्यता का [illegible] बन जाता है. [illegible] भी [illegible] हो जाता है. [illegible] है. यहाँ भाषा का स्वाभा-[illegible] [illegible] होता है. गुणों के [illegible] परिणाम की [illegible] परिणाम [illegible] है. दूसरी और [illegible] में [illegible] कोई [illegible] गुण [illegible] होकर [illegible] को [illegible] अपने वश में कर लेता है, [illegible] है.

---

१. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible], [illegible] ८.
२. [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].
३. दोनों गुणों के [illegible], [illegible], ४. [illegible], ५. [illegible] का [illegible] [illegible]. [illegible] ८.
६. [illegible] [illegible], ७. [illegible].
८. [illegible] [illegible], [illegible].
९. [illegible] [illegible]. [illegible], [illegible].

[illegible] है. [illegible] जाता है. [illegible]

[illegible]

[illegible] मिश्र होता है, मुक्त नहीं. [illegible]

[illegible]

[illegible] स्त्री-पुरुष, [illegible]

[illegible] (मालिका की) [illegible]

[illegible]

---

१. [illegible]

२. [illegible] (२-१८)

[illegible]

[illegible] पृ ५८०.

—— १०.

[illegible] की [illegible] है. खसौतुक से [illegible] भर प्रायः [illegible] जाता है. इसी से [illegible] में [illegible] नहीं और चैनजता की [illegible] पर चौथ और प्रकृत में भेद [illegible] है. [illegible] अपने [illegible] ओले ओले [illegible] की [illegible] है, और [illegible] में [illegible] और [illegible] होती जाती है. [illegible] इन्हीं की [illegible], वैसी का [illegible] दुर्निवार [illegible] होती है, [illegible] जा सके है. [illegible] —

.... [illegible] तुरत [illegible].
[illegible] पाहुँ [illegible] [illegible] गुड़ [illegible].
[illegible] भाग. [illegible] [illegible].
[illegible] माहुँ तुली [illegible]. [illegible] भीतामहु.[1]

[illegible] मैं [illegible] (अतेत) [illegible] की प्रेरणा पैदा होती है, [illegible] [illegible] में [illegible] का रूप धारण कर लेती है. [illegible] भी [illegible], [illegible] मात्रा—[illegible] है, और [illegible] विकृत [illegible] निरन्तर [illegible] [illegible] है. इन्हीं से [illegible] में [illegible] पैदा [illegible] है कि [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] की [illegible] करता है.

[illegible], मैं [illegible] गुण माया के [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] करती है. [illegible] की [illegible] होने के नाते, [illegible] की [illegible] मायात [illegible] को [illegible] [illegible] और सौख्य में [illegible] है. "[illegible]" [illegible] है. [illegible] प्रकृत [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] है. [illegible] प्रकृत की [illegible] में [illegible] होता है [illegible]

1. [illegible] [illegible], पाहुँ= [illegible], [illegible]= [illegible],
2. [illegible] [illegible].
3. [illegible], [illegible] [illegible], [illegible].
4. [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible].
[illegible], [illegible], [illegible].

[illegible]

[illegible]

[illegible] अशान्तता [illegible]

५- [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

१. [illegible]

२. [illegible]

—— [illegible].

पर [illegible] [illegible] किया जाता है.

२– मन और भाषा

[illegible] है. [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] भाषा [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है; [illegible] है. [illegible] है.[illegible] [illegible] है, [illegible] चाहिए.

[illegible] है. [illegible] है, [illegible]

---

१. वही.
२. [illegible], पृ०.
३. [illegible] [illegible]. [illegible]

[illegible]

[illegible] है. [illegible]

[illegible] है, परन्तु [illegible]

[illegible] है. [illegible]

[illegible] है. परन्तु [illegible]

[illegible]

[illegible] है, [illegible] है. [illegible]

[illegible] है—

[illegible]

[illegible] है. [illegible]

[illegible] है. [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है [illegible]

[illegible]

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible] है, [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible]

[illegible] में [illegible] जीव [illegible] अपने विवेक [illegible] पहचानने, माया [illegible] के कारण [illegible] होने [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पता [illegible] में कोई [illegible] महापुरुष ही सहायक हो [illegible] है. गुरु नानक [illegible] ने [illegible] [illegible] को [illegible] है...

[illegible] [illegible] [illegible] मोहिला [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] ठाकुर [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible].[1]

[illegible] [illegible] है कि विश्व में रहते हुए जीव को [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] का [illegible] का [illegible] होता है. परन्तु वे [illegible] [illegible] [illegible] हैं ([illegible]), [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] गुरु [illegible] में [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] जाता है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाते हैं.[2] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] पहुँचाते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करना पड़ता है...

कबीर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible].[3]

[illegible] [illegible] [illegible] है; माया से [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible] गुरु नानक [illegible] [illegible] [illegible] है....

गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].[4]

गुरु [illegible] [illegible] में [illegible] और नाम-जाप करना, [illegible] माया [illegible] [illegible] को पहचानने के [illegible] [illegible] हैं. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माया है और [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] हुआ है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१. [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible], पृ० [illegible].
२. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] कबीर [illegible] [illegible], पृ० [illegible].
३. [illegible] [illegible]. [illegible], पृ० [illegible].
४. [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible], पृ० [illegible].

और उसी [illegible] में ही [illegible] है [illegible] आवागमन से छुटकारा पाना ही वास्तविक कल्याण है [illegible] है.[१]

<u>६- माया से छुटकारा...</u>

माया त्रिगुण-[illegible] की प्रकृति है. आत्मा के शुद्ध [illegible] अनुभव-[illegible] के [illegible] की प्राप्ति इसके आवरण को [illegible] बिना सम्भव नहीं. यह त्रिगुणात्मक-आवरण आत्म-चेतन में एकीभाव होने से ही हटाया जा सकता है. श्रीमद्भगवद्गीता में भी [illegible] में गुणों की व्याख्या के बाद आत्मा के परमात्मा रूप की प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहा है कि जिस काल में द्रष्टा अर्थात् समष्टि-चेतन में एकीभाव स्थित हुआ साक्षी-पुरुष तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है, अर्थात् गुण ही गुणों में बरतते हैं, ऐसा देखता है, और तीनों गुणों से परे सच्चिदानन्दघन स्वरूप परमात्मा को तत्त्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है.[२] तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप, तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ, परमानन्द को प्राप्त होता है.[३] [illegible] है कि [illegible] तीनों गुणों से परे [illegible] जावे.

[illegible] यहाँ माया-गुणों से [illegible] का विचार कर ऐसा [illegible] न होगा. [illegible] जीवन को [illegible] यह सोच लेना आवश्यक है कि बिना [illegible] के वह माया-[illegible] को [illegible] का [illegible] नहीं रहता. [illegible] अवस्था [illegible] को [illegible] में [illegible], नाम का जाप करने अथवा गुरु-[illegible] की [illegible] हेतु प्रभु-कृपा की [illegible] में ही अनुभव [illegible] जा सकता है.

<u>७- प्रभु-कृपा</u>

माया-बन्धनों से मुक्ति का मुख्य आधार स्वयं प्रभु ~~[illegible]~~ निराकार की कृपा है. जिसके [illegible] पर [illegible] अनुभव [illegible] वस्तु-[illegible] [illegible], [illegible] माया की [illegible] के पार स्वयं [illegible] अनुभव [illegible] ही [illegible]. प्रभु ने स्वयं माया [illegible] है, [illegible] गुणों [illegible] यह [illegible] को [illegible] नहीं कर सकते, जिस पर प्रभु की कृपा है [illegible] मायापति [illegible] [illegible] को

---

१. श्री [illegible] गुरु [illegible] मिलिया ना बुझे [illegible]. [illegible] गुरु [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible], [illegible].

२. नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति. गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति.

३. गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्. जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते.

गीता, अध्याय १४, श्लोक १९-२०.

मुक्त हो. कहा गया है कि गुरु—दीक्षा मिलने के बाद ही ईश्वर—दर्शन [illegible] हो, [illegible] प्रभु का [illegible] जाग्रत हो जाता है. [illegible] में [illegible] माया को दूर करता है, वह मोह—माया की जालों में भी [illegible] रखता है. गुरु ज्ञान [illegible] है कि वहाँ भी [illegible] की अपेक्षा रखते हैं, [illegible] मोह—[illegible] है, और [illegible] जीव के [illegible] का [illegible] है. [illegible] है कि गुरु की [illegible] ही [illegible] का कारण है. प्रभु की [illegible] गुरु द्वारा ही होती है—[illegible], [illegible] दूर करते हैं. ईश्वरेच्छा से गुरु मिलता है, जीव [illegible] में [illegible] है, और [illegible] माया से [illegible] का कारण बनते हैं. गुरु [illegible] में [illegible] जीव को [illegible] है, "जीव पक्षी का [illegible] माया—पिंजर में बन्द है और [illegible] उड़ [illegible] के [illegible] है ([illegible] [illegible]), परन्तु पिंजरे से (आत्मा से) [illegible] [illegible] का सामर्थ्य नहीं रखता. उसकी मुक्ति स्वामी (प्रभु) की कृपा पर निर्भर है. वह चाहे तो पिंजरे का द्वार खोल कर उसको [illegible] कर सकता है; अर्थात् माया—पिंजर से जीव की मुक्ति प्रभु की कृपा से ही सम्भव है.'[1]

ग— गुरु—[illegible]...

मोह—माया में [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] कोई प्रभु की ही [illegible] है. [illegible] जीव को माया की पहचान [illegible], [illegible] गुरु [illegible] का [illegible] होता है, तो [illegible] प्रभु [illegible] में [illegible] होता है. गुरु नानक ने कहा है, "[illegible] मोहि [illegible], [illegible] [illegible]."[2] कोई [illegible] गुरु का [illegible] ही माया के बन्धन काटने का सामर्थ्य [illegible] है. [illegible] पातशाही गुरु अर्जुनदेव [illegible], "[illegible], [illegible] गुरु [illegible] मेरे [illegible]"[3] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] हो [illegible] है. गुरु [illegible] [illegible] [illegible] निर्मल [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] माया से छूटने का [illegible] है. परन्तु [illegible] गुरु [illegible] की कृपा, [illegible] [illegible] है.

---

१. गुरु [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
   [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] रहे [illegible]. [illegible], पृ०[illegible].
२. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] गुरु [illegible] [illegible].
   [illegible] [illegible]. गुरमति [illegible] [illegible]... [illegible], पृ०[illegible].
३. [illegible] [illegible] [illegible], पृ० [illegible].
४. [illegible] [illegible]. [illegible], [illegible], पृ०[illegible].

[illegible]

६

गुरु नानक का दार्शनिक - [illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible])

गुरु नानक का दार्शनिक - [illegible]

१-धर्म और दर्शन

सुन्दर वस्तु का मुकाबिला करते हुए, [illegible] उसका भौतिक आकर्षण ही नहीं देखा जाता. उसके सौन्दर्य से एक अलौकिक आत्म-तुष्टि का अनुभव भी होता है. यह अनुभव अतीन्द्रिय रूप धारण कर लेता है, जो कि निश्चय ही सौन्दर्य मुकाबिले का वास्तविक आधार है. दैनिक जीवन में ऐसी अतीन्द्रिय-अवस्थाओं का [illegible] प्रवेश [illegible] पाया जाता है. सौन्दर्य-अवस्थायें [illegible] से परे [illegible] अवस्थाओं को [illegible] हमारे [illegible] की दुरेखा रखती है. और जब यह अनुभव [illegible], [illegible] से बराबर होकर, [illegible] में से किसी रूप को खोजने और [illegible] से उसका [illegible] जानने का [illegible] करता है, तभी दर्शन का जन्म होता है. [illegible] अतीन्द्रिय परम-[illegible] की जानकारी कोई भी मनुष्य के [illegible], [illegible] हमारे [illegible] में [illegible], [illegible] है. [illegible] परम-[illegible] के [illegible] की धार्मिक और सैद्धान्तिक व्याख्या से दर्शन तथा [illegible] जीवन के दैनिक [illegible] और मानसिक [illegible] में [illegible] से धर्म का उदय होता है.

[illegible] प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने धर्म और दर्शन को जुदा जुदा [illegible] से देखा है. वे [illegible] दार्शनिक के [illegible] धार्मिक [illegible] जीवन को [illegible] रूप में नहीं देखते. पाश्चात्य में [illegible] और विचार [illegible] दर्शन का विरोध करती हुई दोख पड़ती है. हेगेल और [illegible] दार्शनिक दर्शन और धर्म को [illegible] सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता के [illegible] से नहीं देखना चाहते. उनका विश्वास था कि दर्शन की [illegible] व्याख्या वास्तव में धर्म का [illegible] रखती है. और धर्म की [illegible] दर्शन [illegible] अपना [illegible] रखती है. इन दोनों विचार-धाराओं में [illegible] विचार [illegible] दोख पड़ता है. दर्शन और धर्म को पृथक पृथक [illegible] पर देखने का [illegible] होगा—दोनों को [illegible] करना. दर्शन वास्तव में ज्ञान का वह [illegible] है, जो अतीन्द्रिय-[illegible] [illegible] मनुष्य [illegible] रूप से [illegible] का [illegible] प्रदान करने [illegible]

---

1. Philosophy only unfolds itself when it unfolds religion and in unfolding itself it unfolds religion.

Philosophy of Religion by Hegel, Vol. I. p. 19.

[illegible] છે. [illegible]

[illegible] છે.

[illegible]

[illegible] છે. [illegible] છે. [illegible]

[illegible] છે. [illegible]

[illegible]

[illegible]

चतु [illegible]

[illegible] पाश्चात्य दृष्टिकोण

[illegible]

[illegible] से [illegible]

[illegible] को [illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —

[illegible]
⋮
[illegible] ─────────────── [illegible]
[illegible] ⋮
[illegible] ⋮
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

— ६.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

1. Philosophy of Religion ----Prof. Galloway.

2. A Critical Examination of the Philosophy of Religion. Vol I.

by Sadhu Shanti Nath.

[illegible] डांवाडोल [illegible] है. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] तकता [illegible]

— ८.

भारतीय चिन्तनधारा में इसके पूर्व कई प्रकार के [illegible] और [illegible] के लिए उल्लेख है. विकासात्मक-दृष्टिकोण से देखने पर इनमें से अधिकतर तो केवल भौतिक-वादी होने से आध्यात्मिक-व्यक्तित्व और सामाजिक-व्यवस्था [illegible] को सीमित किये हैं. इन धारणाओं में आत्मानुभूति का [illegible] स्पर्श भी दिखाई नहीं देता. वैदिक-काल में जो विकृतियाँ भी हुई हैं, [illegible] सामाजिक कष्टों से तंग आकर किसी अमर्यादित सामाजिक व सुखमयी स्थान की कल्पना [illegible] और उसकी प्राप्ति (स्वर्ग-प्राप्ति) होने के यज्ञ, तप, व्रतादि का आयोजन किया है. [illegible] स्वर्ग में पहुँच जाना ही उनका विशेष प्रयोजन था. इसके विपरीत आवश्यकताओं को [illegible] और [illegible] की ओर प्रेरित करने हेतु उन्होंने [illegible]-पूर्ण स्थान (नरक) की भी कल्पना कर रखी थी.

बुद्ध दूसरे विचार-पूर्ण [illegible] ही अपना [illegible] मानते थे. उनका सिद्धान्त था कि [illegible] वास्तव में आत्मा का स्वभाव [illegible] है. वह जन्म, मृत्यु तथा [illegible] का दुःख है. अतः [illegible] दुःख की अवस्था से मुक्ति से ही दुःख का छुटकारा सम्भव है. [illegible] ने ही [illegible] का कारण [illegible] को माना था, और [illegible] अथवा माया ([illegible]) को [illegible] का कारण. अतः वे [illegible] से [illegible] की [illegible] से मुक्ति की [illegible] करते थे. [illegible] होने देते थे [illegible]-भावना में [illegible] ही [illegible] करते थे. उनका सिद्धान्त [illegible] प्रकार [illegible] में [illegible] पर [illegible] निर्वाण का [illegible] किया जा सकता है. [illegible]-बुद्ध [illegible] दुःखों पर [illegible] ही [illegible] स्वीकार किया था और [illegible] सिद्धान्त [illegible] जीवन-यापन ([illegible]) का [illegible] रखा था. [illegible] दुःख [illegible] आधार [illegible] था. वेदान्तियों ने [illegible] को ही [illegible] माना था. [illegible] के [illegible] उसके प्राप्ति और उसके [illegible] से [illegible] था. [illegible] प्रकार [illegible] के पूर्व [illegible]-सिद्धान्त [illegible] और [illegible] की [illegible] थीं, और [illegible] थी. [illegible] और [illegible] है. [illegible] भारतीय [illegible] को [illegible] हुए [illegible] से [illegible] का [illegible].

आत्मानुभूति [illegible] [illegible] हुये [illegible] से [illegible] की [illegible] का प्रयत्न करना [illegible] से [illegible] होगा. अतः [illegible] के [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible]-

[illegible]

1. गुरुमत-निर्णय, पृ० ५२

[illegible] अंकित में [illegible] है [illegible]
जा सकता है, [illegible] है. परन्तु गुरु [illegible] क्रम-विरोध
को कोई आवश्यकता नहीं समझता, बल्कि प्रेम और श्रद्धा [illegible] से युक्त हो गुरु के
[illegible] परमानन्द [illegible] और [illegible] करने की प्रेरणा देता है. गुरु [illegible] गुसाईं और [illegible]
[illegible] प्रकार से [illegible] रहे हैं. परमानन्द [illegible] पर-नार का
कामि-कुटिलता [illegible] हुई गुरु की [illegible]
[illegible]. "गुरु[illegible]" में गुरु के [illegible] "[illegible]" [illegible]
[illegible] है. [illegible] कहते हैं—

गुरु [illegible] किय [illegible] भारी.

परन्तु [illegible] बोलतारी. [illegible] रामसखी, [illegible], पृ० ९२८.

[illegible] गुरु [illegible] ही है—

[illegible] गुरुताई [illegible].

गुरु [illegible] नाम [illegible].

रसिक [illegible] पाठ [illegible].

[illegible] पृ० ९२८.

[illegible] गुरु [illegible] के अनुसार [illegible] में [illegible] की
[illegible] गुरु [illegible] में रहते हुये [illegible] की [illegible] करे,
गुरु [illegible] और [illegible] नाम [illegible]
परमानन्द [illegible] है. पर-[illegible] की [illegible], गुरु [illegible],
[illegible] में [illegible] है:

[illegible] गुरु [illegible] मानने [illegible] में [illegible] है.
[illegible], [illegible] है. [illegible]
[illegible] है, [illegible] नहीं. [illegible]
[illegible] है, परन्तु गुरु [illegible] नहीं [illegible]
[illegible] है, परन्तु [illegible] की [illegible] में [illegible] है. [illegible] अनुसार

---

१. छोड्यु [illegible] गुरु [illegible].

[illegible] पृ० ९२४.

—— १२.

ईश्वर ने भगवान को [illegible] निरंकार-रूप का गुण [illegible] कार्य करता है, अतः वे उपेक्षणीय कभी नहीं. भाई जोधसिंहजी लिखते हैं," वे गुरुओं को अवतार मानकर पूजते भागते नहीं, वे ईश्वर में आदर का भाव लेकर प्रसन्न होते हैं—"[illegible] गुरुराम [illegible]"—(१:१५, [illegible], [illegible] को [illegible] वे उनसे प्यार करते हैं. इसीलिये गुरु नानक ने पूर्णत्व का अवतार-सिद्धान्त का खण्डन नहीं करवाया, बल्कि घर में रह कर नाम-जाप और गुरु-भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति बताई है."[१] प्रस्तुत धर्म पर चलने वाले लोग ऐतिहासिक सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं और गुरु में विचरते हैं; यही उनका [illegible] है.[२]

इसी प्रकार [illegible] भिन्न साम्प्रदायिक विचारकों ने [illegible] और प्रकार से जीवन-सम्बन्धों को अपनाया और उनकी निष्ठा से बढ़ते गये. परन्तु सिद्ध-विचार-धारा [illegible] रूप में उन्हें स्वीकार करते हुए भी सिखों ने [illegible] पूर्णतः [illegible] नहीं हो पाई. कारण है, सिख-धर्म की [illegible] तथा उल्लेख [illegible]. आरम्भ में [illegible] का [illegible] किया गया है, [illegible] सिख-धर्म की [illegible] न होकर, [illegible]-विचार उनकी [illegible] है. परन्तु फिर भी उनकी प्रस्तुतिकरण [illegible] गुरु नानक की [illegible] और सिखों [illegible] बन चुकी है. गुरु नानक का एक [illegible] की [illegible] में बैठा हुआ है—[illegible]. [illegible] २. [illegible] में [illegible]. [illegible] में [illegible] है, [illegible] की [illegible] और [illegible] प्रथम [illegible] है. अतः [illegible] की [illegible] करने वाले [illegible] की [illegible] निरंकार का [illegible] करने को नहीं कहा जाता, न तो स्वर्ग और नरक का [illegible] का भय दिखाया जाता है. गुरुओं ने निरंकार [illegible] से पहले उनकी [illegible] भावना से [illegible] है. [illegible] निरंकार को पहचानने में [illegible] होता है. [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] करने [illegible] उनके पहले की [illegible] परीक्षाओं में [illegible] होना अनिवार्य है, [illegible] [illegible] से पूर्व [illegible] आवश्यक है. [illegible] हेतु, गुरु नानक [illegible], [illegible] किसी [illegible] को [illegible] मानते हैं [illegible]. [illegible] मनुष्य [illegible] नहीं [illegible] हो जाता, [illegible] किसी [illegible] की [illegible] नहीं [illegible]. [illegible] है, और [illegible] रचा हुआ है [illegible]. [illegible] मनोविकार से [illegible] न [illegible], [illegible] बना [illegible]

---

१. [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible]. गुरु [illegible] भाई [illegible].१:१:[illegible]. [illegible]. पृ.[illegible].

२. गुरमत-निर्णय——भाई जोधसिंह. पृ. [illegible].

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] अथवा [illegible]

[illegible]

लक्ष्य के

६– [illegible] के [illegible] और उनकी [illegible]

[illegible] में [illegible] को [illegible] के [illegible] को [illegible]
है. [illegible] मुख्य [illegible] में [illegible] और [illegible] के [illegible]
और [illegible] सुधार [illegible] में [illegible]. [illegible]
[illegible] और [illegible] के [illegible]
[illegible] है. (इनमें से कुछ सूत्र [illegible] में [illegible]).
[illegible] में बदला हुआ था. [illegible] हुआ दृष्टि-
[illegible] के [illegible], परन्तु [illegible]
[illegible] थे. [illegible]
[illegible]. [illegible] में [illegible] के
[illegible] है, परन्तु [illegible] में [illegible]
[illegible] में [illegible]
[illegible] था.
[illegible] स्थिति [illegible] था, [illegible] की
[illegible] में [illegible] पर [illegible] न [illegible]. [illegible]
[illegible] थे, परन्तु उनकी [illegible] से बहुत ऊंची
और [illegible] से [illegible] को अपनाये हुये थे. [illegible] और [illegible] के
[illegible] है. नाम में [illegible] हार-[illegible], [illegible]
[illegible] उनकी [illegible] नहीं [illegible], [illegible]
[illegible] से [illegible] की [illegible]
देता है. [illegible] करता है. [illegible] में [illegible]
[illegible] और [illegible] में
[illegible] का [illegible] है. [illegible], [illegible] न होता, [illegible] और
[illegible] में बहुत [illegible] था. दोनों [illegible] में [illegible] थीं. [illegible]
[illegible] थी.

[illegible] के [illegible] है. [illegible]
[illegible] है. [illegible] में [illegible] है. [illegible]
में [illegible] और [illegible] के [illegible]
[illegible] है. [illegible] के [illegible] में [illegible]

[illegible], [illegible] है. [illegible] है, परन्तु [illegible] है [illegible] उच्च [illegible] थे. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है.

[illegible] है. [illegible] है. [illegible] था. [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है. [illegible]

होता है. [illegible] कुदरत [illegible] है. ये जानते हैं [illegible] में [illegible] नहीं. [illegible] है. [illegible] (१९४८) [illegible] जाता है.

[illegible] नहीं करती [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible] है. [illegible] जैसे नबाब और [illegible] है. [illegible] में [illegible], [illegible] नहीं. [illegible] हुकूमत [illegible], [illegible] की [illegible] है, [illegible] को [illegible] है. [illegible] मे [illegible], हुकूमत [illegible] है—

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] (१, [illegible], [illegible].)
[illegible], हुकूमत [illegible], [illegible] है. [illegible] में [illegible] और [illegible] है.

[illegible] और [illegible]

[illegible] (हिन्दुस्तान [illegible]) में [illegible] और [illegible]. [illegible] है. [illegible], [illegible] है, [illegible]

जाता है. [illegible] है और [illegible] में [illegible] है. [illegible] (ऋग्वेद [illegible]). [illegible] पहुँचता है तो वहाँ [illegible] है, (ऋग्वेद [illegible]) में [illegible] पहुँचता है. [illegible] है (ऋग्वेद [illegible]). [illegible] है (ऋग्वेद [illegible]), [illegible] और [illegible] है. (ऋग्वेद [illegible])([illegible]).[1]

[illegible], [illegible] था. [illegible] था. [illegible] है, [illegible] है—[illegible], [illegible], [illegible] हूँ. [illegible] हूँ. [illegible] हूँ.[2]

---

1. The highest aim of life in Vedic age was to secure an immortal place in the Paradise after death and enjoy celestial happiness as the fruit of sacrifitial and virtuous deeds done by him in life. The hope of enjoyment of eternal happiness in the Paradise cheered the last moments of the Vedic-Aryans.
   --An Intelligent Man's Guide to Indian Philosophy, by [illegible]Pandya, p. 48.
2. Quoted by [illegible]Pandya, Ibid, p.49.

. न [illegible] न [illegible] न [illegible].
[illegible] ऋग्वेद [illegible].

[illegible] *

[illegible]

[illegible] ... पर्याय ... [illegible]

[illegible]

[illegible] ... सम्प्रदाय ... बौद्ध ... [illegible]

[illegible]

* कृपया पृष्ठ १३० की पाद टिप्पणी देखें।

४. आनुशासनिकपर्व. इन्हीं तीनों वस्तुओं को सम्मुख रखते हुए [illegible] [illegible]
चार मुख्य भागों के [illegible] को [illegible] प्रस्तुत करती है—वैदिक [illegible] में भिन्न
विचारकों के [illegible] प्रकार सम्बद्ध है. काम और अर्थ ([illegible]) [illegible] से
सम्बन्धित है. मानसिक और [illegible] से सम्बद्ध [illegible] को "धर्म" कहा गया है,
और [illegible] [illegible] का भाग है. इस प्रकार [illegible] की पूर्व-[illegible]
कामनाओं-[illegible] [illegible] और परलोक में उपयुक्त [illegible] प्रकार [illegible] [illegible]
[illegible] करती थी, और यहाँ उसकी सम्पूर्ण [illegible] विचारधारा का महत्वपूर्ण योग था.
काम ([illegible]) की पूर्ति तथा अर्थ ([illegible]) की प्राप्ति, धर्मसम्मत रखने में [illegible] है.
दूसरी ओर यह भी मान्य है कि धर्मविचार में [illegible] काम और अर्थ का [illegible] सम्बन्ध
है. [illegible] यह कि उस समय लौकिक तथा [illegible] [illegible] और [illegible] का पृथक् पृथक्
महत्व स्वीकारा गया था. प्रथम और द्वितीय कोटि में [illegible] तीन प्रकार के
कर्मों से उत्पत्ति [illegible] की [illegible] है. तीसरी कोटि [illegible] [illegible] की अपेक्षा
रखता है, जो [illegible] को छोड़ने पर भी [illegible] की स्थापना [illegible] कर
[illegible] है.

नैतिक-मूल्यों में सर्वाधिक महत्व [illegible]-अर्थ को [illegible] [illegible]
[illegible] था. [illegible] के "[illegible]" नाम के ग्रंथों में स्पष्ट [illegible] है कि
कामना-पूर्ति तथा [illegible]-प्राप्ति का [illegible] उद्गम [illegible] ही है. मनुस्मृति में
"[illegible]: [illegible]" [illegible] आचार को ही धर्म माना गया है. वैदिक उस समय के
[illegible] धर्म [illegible]-में [illegible] [illegible] और निषेध ([illegible]) की शिक्षा
देते रहे हैं, [illegible] [illegible] नैतिक [illegible] पर [illegible] हो कहे जाते. [illegible] रहे
[illegible] के [illegible] हिन्दु, मुस्लिम या ईसाई आदि धर्म नहीं, वरन् [illegible] की
[illegible] तथा [illegible] को ही धर्म कहा गया है. [illegible] कामना-पूर्ति और [illegible]-प्राप्ति
का [illegible] [illegible] बताया गया है कि नैतिक-मूल्यों की [illegible] में भी [illegible] [illegible]
[illegible] आवश्यक है. [illegible] के [illegible] का [illegible] से [illegible] [illegible]
[illegible] नहीं मानी जाती थी. क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] नैतिक [illegible]
[illegible] था, परन्तु [illegible]-[illegible] न होती. [illegible]-[illegible] [illegible] के [illegible] के
[illegible] हो जाता. [illegible]-[illegible] [illegible] विचारधारा में [illegible] और

[illegible]

[illegible]

[illegible]

——— ३०.

इसीलिये होता और [illegible]-कु[illegible] का [illegible] के देवताओं के नाम पर [illegible]
[illegible] निम्न-स्तर के [illegible] [illegible]
[illegible]-[illegible], [illegible], पितृ-[illegible], [illegible] [illegible]. [illegible]
[illegible] है. [illegible]
[illegible], [illegible]
[illegible], [illegible]-[illegible] [illegible]. [illegible]
[illegible] है. [illegible]-[illegible]
[illegible], [illegible]. [illegible]
[illegible], [illegible], [illegible]
[illegible] है. [illegible]
[illegible]. [illegible] देवताओं [illegible]-[illegible]
[illegible] [illegible]-[illegible], [illegible] [illegible]
[illegible]. [illegible] है [illegible]-[illegible]
[illegible]. [illegible]-[illegible], [illegible]
[illegible]. [illegible]
[illegible], [illegible]-[illegible]
[illegible] है. [illegible]-[illegible] [illegible],
[illegible]; परिणाम [illegible]
[illegible] रहता, और [illegible]
[illegible] है. [illegible] है. [illegible]
[illegible], और [illegible] है, [illegible]
[illegible] है. [illegible] बात है [illegible]
[illegible]-[illegible] है, [illegible]
[illegible] की [illegible]-[illegible] है. [illegible]-[illegible]
[illegible] है, [illegible] है. [illegible]-[illegible]
[illegible] है. [illegible]. [illegible]-
[illegible] है, [illegible]-
[illegible] है, परिणाम [illegible]

१. [illegible]-[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] तथा [illegible]

[illegible]

——— ४०.

प्रस्तुत

प्रस्तुत [illegible] का अन्तर है [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वास्तविक [illegible] [illegible] आवरण की [illegible] होता है. [illegible] सम्पूर्ण [illegible] अधिष्ठान में होते हुए भी मिथ्या प्रमाणित हो जाता है. यह [illegible] होता है कि [illegible] और [illegible] अथवा नाम-रूप की भिन्नता के कारण ही [illegible] अनेकता का [illegible] है. [illegible] केवल नाम-रूप में ही भिन्न है, अन्यथा [illegible] में [illegible] हो जाता है. यहाँ [illegible] में [illegible] रहती है. अतः [illegible] यह [illegible] है कि [illegible] है, [illegible] है [illegible] दर्शनों की [illegible] में [illegible] अद्वैतवाद [illegible] ~~[illegible]~~ है. [illegible] अद्वैतवादी [illegible] की मिथ्यता, [illegible], [illegible] को [illegible] करते हैं, [illegible] बौद्धिक [illegible] में [illegible] की [illegible] है. [illegible] और [illegible] पूर्ण [illegible] को और [illegible] (ईश्वर) [illegible] —परन्तु [illegible] -वेदान्त के प्रचार [illegible] में ही [illegible] है; [illegible] अनेकता का [illegible] है [illegible] ईश्वर को [illegible] है? [illegible] अद्वैतवादी सम्पूर्ण [illegible] के अन्दर और बाहर केवल [illegible] ही [illegible] को स्वीकार करते हैं—[illegible] है, [illegible] और [illegible] पहुँचने का [illegible] है [illegible].

[illegible] से दूसरी ओर [illegible] का [illegible] है [illegible] प्रतीत होता है, परन्तु [illegible] में अनेकता का [illegible] से भिन्न है. [illegible] की [illegible] है, [illegible] अनेकता [illegible] को [illegible] है. [illegible] में [illegible] है और [illegible]. [illegible] का [illegible] है; [illegible] का [illegible] करता है, [illegible] करता है. परन्तु [illegible] में [illegible] करता है, [illegible] बन जाता है. [illegible] में यह [illegible] है. [illegible] के [illegible] वेदान्ती का [illegible] दिखता है, [illegible], केवल [illegible]. परन्तु [illegible] का निरन्तर [illegible] है, [illegible] में [illegible] की [illegible], [illegible] दिखता है. [illegible] का [illegible] [illegible] को [illegible] स्वयं

—— [illegible].

[illegible] है. [illegible] है.
[illegible] है.

[illegible] है, [illegible] है, [illegible]
[illegible] है, [illegible]
[illegible]
[illegible] है. [illegible]
[illegible] है, [illegible] है. [illegible]
[illegible] है [illegible] है. [illegible]
[illegible]
[illegible] है.
[illegible] है—

[illegible]

[illegible]. ([illegible])

[illegible] है, [illegible]
[illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है.

[illegible] है.
[illegible]
[illegible] है, [illegible]
है. [illegible]
[illegible] है, [illegible]
[illegible] है, [illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible] है. [illegible]

[illegible]—[illegible].
[illegible] ([illegible]—[illegible].)
[illegible] ([illegible]—[illegible].)

है. इस प्रकार की आपूर्णता-प्राप्ति पर ही जीव ब्रह्मानन्द का अधिकारी होता है. वेदान्त में विशद अनुभव करते हैं. तत्पश्चात् अनुभूति न होने से स्वप्न-लाभ का ज्ञान नहीं होता."[१] इसके विरुद्ध गुरु नानक दृष्टिकोण से मुक्ति की अधिकारी बनने के लिए किसी प्रकार से कष्टतम-योगों या तपस्या, निवृत्ति अथवा उपासना-अपवित्र आदि अनुष्ठानों की कोई आवश्यकता नहीं. यहाँ-तक कि वेद-वेदांगों के अतिरिक्त-ज्ञान की भी कुछ अपेक्षा नहीं—यहाँ तो "हरि का नाम ही हरि का रूप". संसार में रहते, गृहस्थाश्रमी के कर्म-कांडों को पूर्ण करते हुए भी जीव अपने कर्मों को शुभ और दुःखदायी का त्याग कर आत्मा को शुद्ध करता है; जो भौतिक जगत से स्वाभाविक का मुख तथा मन को हउमै की भीतर से दूर करता है और गुरु की आज्ञानुसार नाम जपता है, वह गुरु-कृपा का अधिकारी होता है. ऐसा जीव ही परम-पुरुष से मेला प्राप्त करता है और यही जीवन-मुक्ति, और तदुपरान्त ब्रह्म में चिर-विलीनता का भागी होता है.

* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *

---

१. भारतीय-दर्शन—डॉ० उमेश मिश्र. पृ० २०५.

[illegible] नानक तथा [illegible] में [illegible]

[illegible] में [illegible]. [illegible] में [illegible] में [illegible].
[illegible] की [illegible]. [illegible] की [illegible].
[illegible] की [illegible]. [illegible] नाम की [illegible] ॥

[illegible] प्रेम [illegible]. [illegible].
[illegible]. [illegible] ॥

(कबीर)

— ७ —

सप्तम अध्याय

गुरु नानक तथा अन्य - सिक्ख [illegible] के [illegible] दार्शनिक - चिन्तन

गुरु नानक तथा धर्म

भारतीय सैद्धान्तिक परम्परा में धर्म-[illegible] का [illegible] [illegible] है. यहाँ की [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रही, यहीं धर्म (अभ्युदयनिःश्रेयस) [illegible] की अपेक्षा की गई. यही कारण है कि [illegible] [illegible] से भिन्न [illegible] पर [illegible] [illegible] धार्मिक-प्रमुख प्रभुत्व [illegible] [illegible], यथा राजनीति, [illegible], [illegible], [illegible] आदि. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] धर्म (सुख-[illegible]) [illegible] [illegible], उसी [illegible] [illegible] पर दृष्टिगत [illegible]. परन्तु आधुनिक [illegible] धर्म-निरपेक्ष [illegible] [illegible] की रहा, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धर्मनिरपेक्ष [illegible]-[illegible] द्वारा [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे, परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] में धर्म [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] है, परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible]-[illegible] [illegible] है. धर्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] है.[1] [illegible]-[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

---

१. वास्तव में [illegible] [illegible]-क्रियाओं [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] ही है, परन्तु [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया है. दूसरी [illegible] [illegible] [illegible] यह है [illegible] [illegible] ~~[illegible]~~ [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] नहीं किया जा [illegible]. [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible], [illegible], [illegible], राजनीति—[illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] में ~~[illegible]~~[illegible]: राजनीति [illegible] [illegible] है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है, परन्तु राजनीति में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, और [illegible] [illegible] ([illegible]-[illegible]) की प्रमुखता है. [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] किया जाता है. [illegible] में [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] हो जाता है, [illegible].

२. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]: [illegible]. [illegible] [illegible]-[illegible] .

[illegible]

[illegible]

[illegible] विशेष, [illegible]

[illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]
4. [illegible]
5. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

को भोगते हुए और अन्त में पुनः विकसित हो जाता है और उसकी आत्मा मुक्त हो जाती है.[1] "प्रत्येक ही यहाँ प्राणायाम का लक्ष्य कुण्डलिनी में निहित शक्ति कुण्डलिनी को जगाना ही है."[2] कुण्डलिनी के मस्तिष्क तक पहुँचने में उसे कुण्डलिनी को छः भिन्न चक्रों से होकर गुजरना होता है—स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार. उसका मस्तिष्क तक पहुँचना ही आत्मसाक्षात्कार की पूर्ण स्थिति है. इसी से ब्रह्मज्ञान का उदय होता है. यम-नियमादि तो केवल चित्त-शुद्धि होती है, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार उक्त-मार्ग को प्रशस्त करते. ध्यान धारणा के अनुसार "मेडिटेशन" की आवश्यकता पड़ती है, ताकि कुण्डलिनी का उत्थान पूर्ण हो सके. मौलिक कुण्डलिनी के उसमें सम्मिलित भाव होता है, परन्तु प्रत्याहार योगी उसकी अपेक्षा करता है, तथा क्रमशः प्राणायाम से विकसित रूप से आत्मा से बाहर प्राण-वायु को नियमित कर आत्मसाक्षात्कार को प्रेरित कर कुण्डलिनी शक्ति को जगाता है. इसी में उसकी स्थिति है, जहाँ यह आत्म-रूप में स्थित होता है. तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "कुण्डलिनी का जागरण ही वास्तव में आत्मज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र साधन है. यहाँ चित्त-शुद्धि और आत्म-शक्ति का विशिष्ट प्रयोजन भी है. कुण्डलिनी-जागरण की सम्भावना के अनेक आधार हैं—ईश्वर के प्रति प्रेम के द्वारा, पूर्ण ज्ञानी की कृपा-दृष्टि के फलस्वरूप, अथवा दार्शनिक (विचारक) की विश्लेषण-शक्ति के माध्यम से."[3] अभिप्राय यह कि राजयोग में गुरु की कृपा, ईश्वर और उसके प्रति भावना जैसे दार्शनिक-विश्लेषण, उनकी सम्भावना किया गया है; जिसके कारण से यहाँ से पुरुषार्थ का उल्लेख होना स्वाभाविक होगा.

परन्तु राजयोग का जो रूप वास्तविक में था विद्वानों ने अपनाया था, गुरु नानक उसके विरुद्ध रहे. राजयोग में जो आरम्भ में यम तथा नियम को सीमित करने में इतना बल का प्रयोग किया जाता है, गुरु नानक उसे भी आवश्यक नहीं मानते. आसन-ध्यान या चित्त-शुद्धि के नाम से कठिन आसनों की गुरु नानक भी निश्चय ही नहीं, बल्कि नियम उठाने पड़ते हैं, परन्तु उनमें विधियों को सर्वथा त्याग कर यम-नियमों से बन्धनों में बाँधना और निग्रह-नियमों का रोचन करना उन्हें कदापि पसन्द न था. वे तो प्रेम की अद्भुत शक्ति द्वारा अपने प्रभु में लीन होने का पथ अमर-संदेश दे रहे थे, जिसमें

---

१. राजयोग—स्वामी विवेकानन्द, पृ०४८.
२. वही, पृ० ६०.
३. वही, पृ० ६९.

— ६.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

—— 6.

उनके विचारानुसार कुण्डलिनी के मस्तिष्क तक पहुँच कर आत्मसाक्षात्कार ज्ञान के उदय का कारण बनना भी कोई आवश्यक नहीं, वहाँ विशुद्ध-ज्ञान का प्रति आवश्यक गुरु है. हाँ, आन्तरिक-शक्ति-पुंज परम-ज्योति का स्वरूप उनमें (अहंकार) के पीछे से उभरा हुआ स्वीकार किया जाता है. बस मन से केवल अहं-भाव को ही हटाने की आवश्यकता है, चित्त-वृत्ति-निरोध की नहीं.' गुरु की कृपा होने पर वह स्वयं [illegible] द्वारा बाद में उनमें का नाश कर देता है और मन स्थिर हो जाता है. चित्त को एक [illegible] प्राणायाम से कुछ भी कम नहीं, उल्टे इसमें पीड़ा उठाये बिना ही कल्प की सिद्धता का आनन्द प्राप्त है. प्रत्याहार की यहाँ आवश्यकता नहीं पड़ती. गुरु का विशेष विषय —इहलोक, परलोक और पारलोक—की पूर्ण-गति की [illegible] मानता है, अतः उसे किसी भी लौकिक या अलौकिक वस्तु से मुक्ति का प्रश्न पैदा ही नहीं होता. गुरु नानक [illegible] गृहस्थ और संसार को कुछ भी स्वीकार करते हैं. वे प्रभु के नाम में मन रमाना "परमार्थ", उस नाम के गुणगान "कीर्तन", [illegible] "व्यापार" में ही लीन हो जाना "जीवन" का स्वरूप मानते हैं.

गुरु विचार-धारा में कुण्डलिनी को मस्तिष्क तक पहुँचाने वाला हठयोग उपयोगी नहीं. वह बिल्ली के आने पर कबूतर की तरह आँखें बन्द कर लेने वाला जैसा अहंकारी प्रयत्न है जो गुरु की ओर से मुड़ा हुआ रहता है. इस विचार से इस तरह होने पर उसे परमानन्द की प्राप्ति होगी, वह शरीर को पीड़ित करता है, और आवश्यक भी है ही बाद की बात. अस्तु:, गुरु आदिग्रन्थ में हठयोग का उपयोगी यही है, जो कुण्डलिनी उत्थान, चार-चक्र और ध्यान की बजाय गुरु की कृपा का सहारा लेते हैं और गुरु उसकी ही कृपा कर हृदय को परम-ज्योति से भरपूर प्रकाशित कर अनहद-ध्वनि भी सुनाते हैं. वह जीवन्मुक्त ही अवस्था तक (अर्थात् उसमें तक प्रतीक्षा रहे) और अपने भीतर में उस आत्मगुरु को

---

1. योगी लोग यह मानते हैं कि अतिरिक्त गुणों से बचाव का [illegible] पड़ता है, उनकी दृष्टि-अर्थ माया के फंदे से बचाव. [illegible] (माया) से अपने कोसों पहले भागे (दूर) से भागने की आवश्यकता है, [illegible] योग [illegible] संसार के आकर्षणों का त्याग करने में विश्वास रखते हैं. परन्तु गुरु नानक-आदि संसार को प्रभु से पूर्ण ही रचना मानते हैं. और [illegible] ही माया को भी आत्मगुरु की आज्ञा और कृपा का अंश समझते हैं, फिर जीव [illegible] इससे [illegible] में कैसे विजय कर सकता है? यह तो उल्टे दृष्टि को अद्भुत रचना का [illegible] है.

—— ९.

[illegible] ने ईश्वर [illegible] की अपेक्षा की है, परन्तु उसके लिये [illegible]-गुरु की ओर से [illegible] की आवश्यकता नहीं, गुरुपद में ईश्वर का स्वरूप देखते हुए उसकी व्यक्तिमत्ता में विश्वास होना गुरु नानक को [illegible] है. गुरु-[illegible] से [illegible] ही गुरु में परम-तत्व की पहचानता हो [illegible] है. [illegible] का रूप है. [illegible] के स्वभाव का [illegible] गुरु नानक का [illegible] नहीं रहा. [illegible] ([illegible]) [illegible] गुरु [illegible]. उसी [illegible] की [illegible] करने लगता है—[illegible] उसे [illegible] है और [illegible] की [illegible] होती है. गुरु [illegible] कहते हैं [illegible] गुरु [illegible] गुरुपद-निर्वाण [illegible] की पहचानता है [illegible] होता है. यह गुरुमुख ([illegible]) स्वार्थ-[illegible] की [illegible] हृदय-[illegible] में [illegible] कर [illegible] को [illegible] लेता है. यथा—

[illegible] गिरदेवु [illegible] गुरमुख [illegible] पराय रहै.

नानक [illegible] बैठे गुरमुख [illegible]. १५. रागमाली [illegible], पृ १२५.

[illegible]-योगी गुरुमुख के सम्बन्ध में गुरु नानक [illegible] की बात भी करते हैं. लिखा है—

[illegible] बाणी गुरमुख जाणै [illegible] की [illegible]:

नानक [illegible] न [illegible]. १६. ([illegible])

[illegible] को [illegible] पर गुरु नानक [illegible] ([illegible]—[illegible] में [illegible]) की [illegible] व्याख्या प्रस्तुत करते हैं. [illegible] है, [illegible] गुरु [illegible] में [illegible] की [illegible] हैं. [illegible] में [illegible] अवस्था में [illegible] है. [illegible] है. [illegible] की [illegible] से [illegible] ही [illegible] है, [illegible] के [illegible] ([illegible]) में [illegible] की पहचान [illegible] है. यह [illegible] में [illegible] के [illegible] है; [illegible] के [illegible] में [illegible] है.[1]

१. [illegible] गुरु [illegible]. [illegible] न [illegible].
[illegible] गुर [illegible] गुरु [illegible].

२. [illegible] नाम [illegible] गुरु [illegible]. १६. रागमाली [illegible], पृ १२८.

—— १०.

ऐसा योगी—सिद्ध शरीर को [illegible] से [illegible] कर, [illegible] भी [illegible] ऊपर उठता है और वहाँ [illegible] लगने वाले [illegible] की [illegible] प्राप्त कर लेता है. [illegible] से [illegible] है, वह [illegible] उस [illegible] को [illegible] पाता है. वह गुरु की [illegible] का परीक्षण कर देखता है और [illegible] में [illegible] पाता है, [illegible] गुणों से उस की [illegible] थी.[२]

अतः गुरु—[illegible] बंधेजी धारण करो, [illegible] [illegible], शरीर में [illegible] लगाओ, [illegible] में [illegible] [illegible], फिर [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] से [illegible] नहीं होगी. [illegible] ऐसे [illegible] की आवश्यकता है कि [illegible] [illegible] [illegible] में रहते हुए भी [illegible] में लीन रहे, और [illegible] से [illegible] को [illegible] करे. [illegible] योगी होगा [illegible] के [illegible] की [illegible] होगा, [illegible] के [illegible] [illegible] हो जायेंगे, और [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] से [illegible] भी [illegible] हो जायेगा. [illegible] है—

गुरु [illegible] की [illegible] कहिये, [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] [illegible] [illegible] होवे, [illegible] [illegible] [illegible] आवे. [illegible] (रामदासजी [illegible], पृ० [illegible])

[illegible] योगी [illegible] है जो बाहरी आडम्बर की [illegible] राम—नाम [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] में लीन रहता है. [illegible] को बंधेजी धारण करता है, [illegible] में [illegible] का [illegible] पाता है, और [illegible] में [illegible] धारण कर [illegible] आत्मा का [illegible] (पुरी) [illegible] है.[१]

---

१. [illegible] [illegible] गुरु [illegible] पूरे. [illegible] [illegible] [illegible] पूरे.
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] होइ. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] रामदासजी [illegible], पृ० [illegible].

२. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] रामदासजी [illegible] पृ० [illegible].

गुरु नानक के उपर्युक्त कथनों और विचारों को सम्मुख रखते हुये हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि यद्यपि अपनी वाणी में उन्होंने योग-दर्शन के पारिभाषिक-शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है, तथापि उनका योग गुरुमत की विशिष्टता और निजत्व रखते है, जिसमें गीता के कर्मयोग और पातंजलि के राजयोग की झलकियां भी मिलती हैं, और हठयोग से सुरत-शब्द-योग का प्रभाव भी. परन्तु क्योंकि उनके विचारों का आरम्भ और अन्त विश्वास (हुक्म) में है तथा नाम ही उसकी प्राप्ति साधना है, इसलिये उसका पृथक्-अस्तित्व मानकर उसे हुक्मयोग, नामयोग, शब्दयोग या ज्ञानयोग कुछ भी नाम दिया जा सकता है. समाधि का लक्ष्य इसमें भी है, परन्तु गुरु नानक वहाँ अपना पृथक्-अनुभव भी स्वीकार नहीं करते — अतः समाधि की यह अवस्था गुरु नानक-वाणी में सहजावस्था कहलाती है. इसकी प्राप्ति और स्वरूप हम आगे देखेंगे.

<u>सहजावस्था</u> : <u>प्राप्ति और स्वरूप</u>

योगियों का लक्ष्य कैवल्य है, जिसमें वे स्वरूप को देखते तथा आत्म-रूप में स्थित होते हैं; परन्तु गुरु नानक का लक्ष्य सीमित है, वे आत्मस्वरूप में स्थिति की अपेक्षा निरंकार में विलीनता का उद्देश्य मुख्य रखते हैं. यही लीनावस्था "सहज" कहलाती है. प्रश्न उसकी प्राप्ति का है. योगी लोग यम, नियम या आसन द्वारा पहला आक्रमण शरीर पर करते हैं, गुरुमत का हमला सीधे मन पर है. गुरु साहिब का विचार है कि शरीर तो मिट्टी है, वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता. मन ही उसे अच्छे और बुरे मार्ग पर चलाता है; अतः जो मन को तपस्या कर बुरे मार्ग से हटा, केवल भक्ति करने हेतु प्रेरित किया जाये, तो वह आनन्दावस्था मिल सकती है, जो प्राणायाम और प्रत्याहार के वर्षों के अभ्यास के बाद योगियों को उपलब्ध होती है.

मन को कुटिलता नाश करने के लिये सद्गुरु की आवश्यकता है. किन्तु जब महापुरुषों की धार्मिक वाणियों का अध्ययन कर आध्यात्मिक-प्रगति की ओर प्रेरित होता है, तो सर्वप्रथम उसे पथ-प्रदर्शक किसी सच्चे महात्मा (सद्गुरु) की खोज करनी पड़ती है. उसके प्रयत्नों की निस्स्वार्थता तथा पूर्व-कर्मों की विशुद्धि के कारण जब उस पर प्रभु-कृपा हो जाये तो गुरु की प्राप्ति होती है. अब जीव (शिष्य) सीधे मार्ग लेता है; उसे केवल गुरु की आज्ञानुसार कर्म करते रहना है, शेष उत्तरदायित्व गुरु पर आ जाता है. गुरु-कृपा के प्रभाव से धीरे धीरे जीव की हउमै [illegible] का नाश होता है. अहंकार का आवरण हटते ही मन अपने शुद्ध-सत्य रूप में प्रस्तुत होता है. अब उसमें किसी भी [illegible] सद्गुरु की [illegible] है. तब मन गुरु आदेशानुसार [illegible] को स्वीकार करता है—

बुरे कर्मों से दूर रहता और सद् गुणों को आत्मसात् करता है. [illegible] निहित नाम की ज्योति (परम-ज्योति का अंश) जीव में प्रकट होती है. ध्यान रहे, नाम-प्राप्ति होने के बाद भी अवगुणों को छोड़ना [illegible] नहीं, यह प्रभु की विशेष कृपा का फल है. इसमें करना जीव का योगदान है, उस पर कृपा करना प्रभु का काम. यदि यहाँ नाम-प्राप्ति की स्थिति में अहंकारों का त्याग किया जाये तो निश्चय ही जीव में [illegible] का उदय हो सकता है—और यह सब गुरुमत में शामिल है. नाम-प्राप्ति के पूर्व करम-[illegible] गुरु ने [illegible] में गुरु [illegible] कहते हैं—

> [illegible] होवै ता [illegible] नाउ. [illegible] सुप [illegible] गुण नाउ.
>
> [illegible] लिखै न पाईऐ [illegible].
>
> [illegible] नाम. ९२५. [illegible], पृ० ४०४.

इसी से ज्ञात होता है नाम की प्राप्ति से [illegible] होता है. [illegible] की ओर [illegible] जीवात्मा ही अब दसवें-द्वार या चौथे-पद(तुरीया-पद) में प्रवेश करना आरम्भ करती है. प्रश्न उठता है, यह दसवाँ द्वार है कहाँ? मानवी शरीर की रचना कुछ इस प्रकार की है कि उसमें नौ बाह्य छिद्र हैं और वे क्रमशः ज्ञानेन्द्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों-[illegible] का कारण बनते हैं. गुरु-साहिब ने इन द्वारों से [illegible] की अनुभूति होना [illegible] है. ऊपर कहा गया है कि नाम मानव-अन्तर में ही रहता है. "दसवाँ द्वार वह है जहाँ अलख-रूप निरंकार के नाम का भण्डार है. अर्थात् जहाँ हमारे अन्तः-करण में निरंकारी-ज्योति का वास है, वही दशम-द्वार है."[१] तीसरी पातशाही गुरु अमरदास स्पष्ट कहते हैं—

> नउ दुआरे प्रगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ.
>
> तह [illegible] रूप नाउ नवनिधि [illegible] न जाई पाइआ. कहै नानक हरि पिआरे.
>
> जीउ गुपत [illegible] रोम के [illegible] पउड़ु [illegible]. २८. रामकली अनन्द म०३, पृ० ९२२.

नामयुक्त यह [illegible] दसवाँ द्वार भी अन्दर ही है, परन्तु गुप्त है. उसमें नाम-निधि छिपाई गई है, परम-तत्त्व की ज्योति से वह स्थान चिर-प्रकाशित है; अब केवल उस द्वार को खोलने और उसमें प्रवेश करने मात्र की देर है, फिर जीव उस निरंकारी ज्योति से मिलाप कर सकता है, जोकि गुरुमत का लक्ष्य भी है. गुरु साहिब का विश्वास है कि दसवाँ द्वार मात्र नाम-जाप से ही खुल सकता है. द्वार खुलने पर आत्मिक निरंकारी-ज्योति

१. गुरुमत निर्णय—भाई जोधसिंह जी. पृ २२२.
२. नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै. बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै. [illegible] ....पद ४:२:१९. मारू सोलहे, पृ० १०३९ ३. वार रामकली, म०३, ९५४.

—— २४.

में लीन होता है और यहीं गुरु-भक्ति तथा शब्द-स्वरूप प्रकट करता है. (योगी-जन अनहद-स्वरूप — शब्द दसम द्वार से पहले स्वीकार करते हैं और उस स्वरूप को तेज प्रकाश स्वरूप को द्वादशमें स्वीकार करते हैं; परन्तु गुरु नानक इस द्वादश को अधिक मानते हैं और शब्द-ब्रह्म दसम द्वार खुलने पर गुरु नानक लिखते हैं—

गुरमति राचु अंतरि पूरा। तिसु भाइ सबदि वाजै पूरा।...पउड़ी अटारिओ, १२८. और भी—अनहदी अनहदु वाजै रुणझुण कारे राम.

मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम.

अनदिनु राता मनु बैरागी सुंन मंडल घरु पाइआ.

आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ.

आसणि बैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता वीचारे.

नानक नामि रते बैरागी अनहद रुणझुणकारे.....१... आसा छंत, पृ०४३६.

प्रकट होता है?

गुरमत निर्णय में भाई जोधसिंह जी लिखते हैं,"अनहद स्वरूप वहीं प्रकट होता है जिस घट में गुरमति द्वारा नाम-जाप होता है. उसी के द्वारा किया जाता है, उस जीव का निरंकारी प्रीति से मिलाप करती है."[1] अतः, जीव द्वारा गुरु-शब्दों को ग्रहण करना, मन को स्थिर कर नाम जपना तथा दसवां द्वार खुलने पर परम-प्रीति से लिव लगाना, ही गुरमति में सहजावस्था की प्राप्ति है.

सहजावस्था का स्वरूप इससे भिन्न नहीं है. इसकी आध्यात्मिक नाम-जाप के आधार में है. इसी के साथ मन की एकाग्रता से अभ्यास-प्रीति द्वारा ही नाम की उपलब्धि होती है—यह पीछे लिखा जा चुका है. यहाँ जीव मौखिक रूप में नाम-जाप करता है. (योग-शास्त्र में धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है. किसी वस्तु विशेष में मन को टिकाना—"धारणा", मन में निरन्तर उसी का विचार बनाये रखना—"ध्यान", तथा अन्ततः वस्तु का नाम रूप लोप करके उसके अर्थ का ध्यान रखना—"समाधि" है. गुरमत में नाम-जाप अथवा भी समाधि का स्वरूप नहीं है, परन्तु जीव निरंकार का कोई रूप नहीं, उसमें यहीं रूप कल्पना के बिना ही मन को टिकाने की धारणा का समर्थन किया जाता है. दूसरे नाम-जाप केवली योग-शास्त्र में पातंजलि ने ... के भी मानते हैं कि "ईश्वरप्रणिधान" समाधि ... है, गुरमत में निरंकार के

---

१. गुरमत निर्णय—भाई जोधसिंह जी, पृ०२२५.

[illegible] है. [illegible] "सहजानुभव" [illegible] है. यह [illegible] अधिकार है, यहाँ राम, नारायण, [illegible] कुछ भी [illegible] है). धीरे धीरे [illegible] नाम को दोहराती है, [illegible] और [illegible] का पद, [illegible] होने लगता है. [illegible] का, यह [illegible] बन जाता है. [illegible] पर [illegible] था; क्योंकि नाम-रूप का [illegible] की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, अपने आप [illegible] का [illegible] होने लगता है. [illegible] है. यह मेरी सहजावस्था का स्वरूप है.

गुरु गोरखनाथ जी ने सहजावस्था की प्राप्ति और स्वरूप का [illegible] सुन्दर [illegible] प्रस्तुत किया है. कहते हैं—

[illegible] प्रीति. [illegible]
[illegible] गुरु [illegible]. [illegible]
[illegible] गुरु [illegible]. [illegible]
[illegible] गुरु [illegible]. [illegible]
(गोरख [illegible], पृ० [illegible].)

अर्थात् [illegible] (गगन-[illegible], [illegible]) [illegible] होता है, और [illegible] होना पड़ता है. [illegible] (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) [illegible] होगा. [illegible] होता है और [illegible] है, क्योंकि [illegible] में [illegible] करता है. [illegible] है) [illegible] की [illegible]. [illegible] नहीं. ([illegible] सहजावस्था है)—[illegible] है ;—गुरु [illegible] गोरखनाथ".

— १५.

नाम का महत्व[1]

साधारणत: किसी भी व्यक्ति, वस्तु या स्थान का रूप-गुण दूसरे पर अभिव्यक्त करने के लिये विशिष्ट शब्द की आवश्यकता पड़ती है. वही शब्द नाम होता है. परन्तु गुरुवाणी में "नाम" कोई रूप-गुण बताने वाला शब्द नहीं, बल्कि परम-ज्योति की अनन्त शक्ति को कहा गया है. निरंकार के समस्त आकार और निरंजन की सम्पूर्ण रचना "नाम" में सम्मिलित है. वह केवल शब्द नहीं. नाम सर्वव्यापक है, और स्वयं निरंकार ने उसकी रचना की है—

आपी नै आपु साजिओ आपी नै रचिओ नाउ. (वार आसा म०१)

नाम सत्पुरुष का शब्द है और निरंकारी ज्योति के रूप में घट घट में बसता है. गुरु वाणी में उसका उच्च-मूल्यांकन किया गया है. मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य और जन्म की सफलता नाम को पा जाने में ही निहित है. सत्पुरुष से मेल प्राप्त करना नाम के माध्यम से ही सम्भव है.[2] गुरु नानक मतानुसार जीव के दुष्कर्मों का नाश तथा उसमें सद्गुणों की उत्पत्ति केवल नाम-स्मरण, जाप एवं कीर्तन से ही सम्भव होती है.[3] नाम के पहचानने का यही तरीका है. गुरु विचारानुसार नाम-स्मरण ऊँची और सच्ची करनी है. नाम गुण-गान करने वाला सत्पुरुष को सन्तुष्ट पाता है.[4] नानक की उक्ति

---

1. Name is the link of the finite soul with the infinite ... God. — Philosophy of Sikhs by. Dr. Sher Singh p.233.

२. तुलना कीजिये— [illegible]
आप लोगों में से जिन्होंने पुराने ईसाई धर्म व अन्य प्राचीन धर्मों का अध्ययन किया है, उन्होंने इस बात पर अवश्य ध्यान दिया होगा कि उन सभी में इस नाम की उपासना का विशिष्ट विचार स्थिर है. नाम बहुत ही पवित्र कहा गया है. "परमात्मा के नाम में" आप लोगों ने पढ़ा होगा कि हिब्रू लोगों में ईश्वर का नाम इतना पवित्र माना जाता था कि साधारण लोगों को उसका नाम लेने की मनाही थी. वह बहुत ही पवित्र था, सभी नामों में वह पवित्रतम था. हिब्रू लोग समझते थे कि यह नाम ही परमात्मा है. यह भी सत्य ही था क्योंकि यह ब्रह्माण्ड नाम और आकार से बना है तो क्या? क्या आप शब्दों के बिना विचार कर सकते हैं? शब्द और विचार अलग नहीं हो सकते. यदि हो सकते हों तो तनिक प्रयत्न करके देखिये. जब कभी भी आप विचार करते हैं तो शब्दों द्वारा. शब्द अन्तर्भाग है, विचार बाहरी. उन्हें एक साथ ही रहना चाहिये. वे अलग नहीं हो सकते. एक के साथ दूसरा आता है, शब्द के साथ विचार, विचार के साथ शब्द.
विवेकानन्द—भक्ति और वेदान्त. पृ०५९-६०.

३. साचो मेरु साहिबु साचु नाउ. गुर प्रसादि रहै लिव लाइ. ८:१४. आसा, पृ०३५१.
नानक सचे प्रभु निरमल होइ. हरिगुण गावै उसमें प्रभु सोइ.४. बिलावल म०१, पृ०८४१.
मोहि माइआ नामु प्रभु रे प्रानी मैले हठे सौहै. ५:२. भैरउ, पृ०११५४.

४. गावै को.........गावै को वेखै हादरा हदूरि. जपुजी ३,पउड़ी.

—— १६.

नाम-सुमिरन करने में ही है. नाम-विहीन कर्मों का कोई मोल नहीं.—

[illegible] नावै [illegible], [illegible] पारा न [illegible].

[illegible] देता [illegible] न पावै, [illegible] नावै [illegible] न पावै. [illegible] पृ०१५२.

नाम की [illegible] का [illegible] है. [illegible] में [illegible] की [illegible] [illegible] है. [illegible] की [illegible] की [illegible] है.[1] [illegible] में [illegible] नाम की [illegible] और [illegible] नावै [illegible] को [illegible] कर दिया है.

[illegible] के [illegible] में ही [illegible] है.[2] [illegible] नहीं [illegible]. [illegible] नाम की [illegible] की [illegible] है. [illegible] में [illegible] नहीं हो [illegible]. [illegible] नाम की [illegible] है. [illegible] होगा; [illegible] की [illegible] होगी, [illegible]. [illegible] है [illegible], [illegible] के [illegible] की [illegible] हो जाता है. [illegible] की [illegible] में [illegible], [illegible] ~~[illegible]~~ [illegible] हो [illegible]. नाम की [illegible] की [illegible] में [illegible] होगी. [illegible] नाम [illegible] होगा. गुरु की [illegible], [illegible] और [illegible] की [illegible] नाम-[illegible] है, [illegible] की [illegible] में [illegible] नहीं.[3] [illegible] है, नाम [illegible] नहीं, [illegible] में [illegible] हो जायेगा, [illegible] में [illegible]

---

१. [illegible] नाउ, [illegible] नाउ.

[illegible] है [illegible], [illegible] पृ० [illegible].

२. [illegible], [illegible] [illegible].[illegible], [illegible], पृ०[illegible].

३. [illegible] नाम [illegible] की [illegible] नाम [illegible] [illegible].[illegible] पृ०.[illegible].

[illegible] नाथा. [illegible], पृ०१९९.

गुरु नानक ने स्वीकारी या विरोधी आधार होगा. यहाँ प्रश्न उठाया जा सकता है, कि जब हउमै-नाश तथा अन्य साधनों द्वारा प्रयत्नों से नामसिद्धि नहीं होती, प्रभु-कृपा और सौभाग्य की ही अपेक्षा रहती है; तो वे साधारण-प्रयत्न क्यों किये जायें? उत्तर में कहा जा सकता है कि कृपा के आकांक्षी के लिये आवश्यक है कि वह पहले कृपा-पात्र बने. उक्त प्रयत्न उसे त्रुटियों से मुक्त कर [illegible] के अनुकूल प्रस्तुत करते हैं, अतः [illegible] है.

नाम-[illegible] से ही [illegible] बनती है. [illegible] स्वीकार के बाद [illegible] का वर्णन करता है और [illegible] नाम-[illegible] से उसे [illegible] का [illegible] भी प्राप्त होता है. [illegible] में [illegible] नाम [illegible] में [illegible] जाता है, [illegible] में [illegible] जाता है, ([illegible] नाम-[illegible] में होता है), तो मन की प्रत्येक प्रेरणा नाममय [illegible] हो जाती है. [illegible] [illegible] होते और [illegible] से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु [illegible] नाम-[illegible] [illegible] प्राप्त कर भी पर [illegible] नहीं हो जाता. वह [illegible] रखता है, अतः प्रत्येक वस्तु में [illegible] का [illegible] देखता है. [illegible] की प्रत्येक [illegible], जो [illegible] ही रहा है, उसे [illegible] होता है, [illegible] उसे अपने [illegible] ([illegible]) की [illegible] पड़ती है. और वह उसी [illegible] में [illegible] कर [illegible] का परोपकारी [illegible] बन जाता है. [illegible] [illegible] नाम [illegible] है.

[illegible] में नाम-प्राप्ति की [illegible] को [illegible] माना गया है. गुरु नानक [illegible] हैं कि नाम [illegible] जीव [illegible] का भागी बनता है, वह [illegible] इस [illegible] के [illegible] दुबारा नहीं [illegible] जा सकता. नाम [illegible] से [illegible] का नाश होता है, [illegible] प्राप्त होती है और गुरुमुख [illegible] का [illegible] मिलता है.[१] नाम ही [illegible] का [illegible] है, [illegible] यहीं [illegible] की [illegible] नहीं...

[illegible]

[illegible] श्री गुरु ग्रंथ साहिब [illegible]. रागु [illegible], पृष्ठ [illegible].

---

१. [illegible] गुरु [illegible], [illegible]..........

[illegible]. नाम [illegible].

गुरुमुखि [illegible] नानक. [illegible]. रामकली, पृष्ठ [illegible].

वास्तव में ईश्वर की खोज करने वाला किन्तु [illegible] को [illegible] [illegible] निकलकर [illegible] ही प्राप्त करता है। लिखा है....

[illegible] [illegible] [illegible] गुर [illegible] [illegible].
जो [illegible] को [illegible] हार [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] जो [illegible] गुण [illegible].
परमारथ [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] न [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] रात हार नाम [illegible]. [illegible] साहु, पु० [illegible].

[illegible] में [illegible] [illegible] और नहीं [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] होने के कारण, जहाँ नाम होता वहाँ नामी होता ही. नामी के अभाव में नाम का अस्तित्व असम्भव है. अतः स्पष्ट है कि जिस हृदय में प्रभु का नाम आ जायेगा, वहाँ [illegible] [illegible] [illegible] वहाँ [illegible] और [illegible] का मिलन हो जायेगा—[illegible] [illegible] [illegible].

नाद बिना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो.
नाद बिना [illegible] [illegible] [illegible] हार [illegible].
नाद बिना वस्तु [illegible] [illegible] [illegible] न होई.
नाद बिना [illegible] परगटा [illegible] [illegible] है.
[illegible] [illegible] [illegible] नाद बिना [illegible] [illegible] [illegible].

[illegible] की वार, पृ० [illegible].

[illegible]

[illegible] का [illegible] प्रस्तुत करते हुए कहा गया है, [illegible] और [illegible] (कोर्ट) का [illegible] पर [illegible] किया था, [illegible] अथवा [illegible] है. [illegible] पराभूत [illegible] हुआ है, और [illegible] है [illegible] में ही [illegible] को [illegible] है, [illegible] की [illegible] पारंगत [illegible] है [illegible] वाला, [illegible] नहीं [illegible] है. [illegible] है. [illegible], [illegible] है. [illegible], [illegible] और [illegible] है. [illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] कहा जाता है.[2]

[illegible] का [illegible] है, [illegible] में [illegible] है. [illegible] के [illegible] है, [illegible] होता है. यही [illegible] है कि [illegible] होता है, [illegible] है. [illegible] होता है, [illegible] है. [illegible] और [illegible] होने [illegible] है. [illegible], [illegible] तथा [illegible] है.[3] [illegible] अथवा [illegible] है, और

1. [illegible] है, [illegible] वाली [illegible], [illegible], [illegible] है.
— [illegible], पृष्ठ [illegible].

2. गीता-[illegible].

—— [illegible]।

[illegible] पर [illegible] देता हुआ [illegible] में [illegible] की [illegible] करता है।[1] परन्तु [illegible] [illegible] का [illegible] प्राप्त कर लेना [illegible] नहीं। वह तो [illegible] से बहुत दूर के [illegible] की दृष्टि में रखे कदम कदम बढ़ाना अपना [illegible] जाता है। [illegible] [illegible], जो [illegible] आत्मा का स्वरूप है—[illegible] के [illegible] है।[2] [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] में [illegible] उपयोग है। [illegible] पर [illegible] अपने [illegible] वाहूयेन्द्रियाँ, मस्तिष्क, मन तथा [illegible] करते हैं। वाहूयेन्द्रियों का [illegible] जाता है, मस्तिष्क [illegible] जाता है, [illegible] [illegible] से हुआ कर [illegible] करता है, और [illegible] वस्तु विवेक की [illegible] है [illegible] का [illegible] करता है। [illegible] की प्राप्ति [illegible] वस्तु [illegible] का [illegible]।

[illegible] है [illegible] प्रदेश [illegible] है, [illegible] [illegible] नहीं [illegible] कठोपनिषद्[3] में [illegible] बहुत [illegible] [illegible] है—[illegible] [illegible]। [illegible] से इन्द्रियों के [illegible] का [illegible] है, [illegible] [illegible] है, [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] में [illegible] की [illegible] हो [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है,"[4] परन्तु [illegible] के [illegible] के [illegible] ([illegible] मिरज़ ~~[illegible]~~), [illegible] से [illegible] वस्तु का [illegible] में [illegible] हो [illegible] है। [illegible] और [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है [illegible] का [illegible], [illegible] में [illegible] पर [illegible] के [illegible] नहीं बन [illegible]। [illegible] प्रकार [illegible] में [illegible] वस्तु के [illegible] है, [illegible] के [illegible] वस्तुओं के [illegible] वस्तु का [illegible] है, और [illegible] है। [illegible] प्रकार [illegible] वायु [illegible] में [illegible] और [illegible] वस्तुओं के [illegible]

1. [illegible], [illegible], [illegible]।
2. [illegible]—[illegible] का [illegible], [illegible]।
3. कठोपनिषद् [illegible]।
4. [illegible] कठोपनिषद् [illegible]।

[illegible]

[illegible] प्रकृति से [illegible]

[illegible]

ईश्वर [illegible] होता, [illegible] होता, [illegible] कि [illegible] में कोई भेद नहीं, [illegible] को [illegible] अनात्मवाद ही ठीक है. [illegible] आत्मा और [illegible] में कोई [illegible] नहीं—[illegible].

और [illegible] के [illegible] प्रतीत्य-समुत्पाद [illegible] से [illegible] होता है, [illegible] से [illegible] बातों का ज्ञान होता है—

१. [illegible] और [illegible] है.

२. [illegible] का [illegible] नहीं.

३. आत्मा और [illegible] है.

[illegible] प्रतीत्य-समुत्पाद [illegible] है. [illegible] है, [illegible] में [illegible] आत्मा [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है, [illegible] पर [illegible] है, [illegible] पर [illegible] है. [illegible] है [illegible] है, [illegible] नहीं होता, [illegible] नहीं होता, [illegible] है.

[illegible] : [illegible]

आत्मा और [illegible] है—[illegible] है. [illegible] है. [illegible] है [illegible] है. [illegible] पर

---

१. [illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible] मुक्ति है।

(ख) कारण हटाने का मार्ग- अष्टमार्ग/

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जानूँगा;

—— १४.

[illegible] है। [illegible] करता [illegible] है, [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है; परन्तु [illegible] है— [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है, परन्तु [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है; परन्तु [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है। [illegible] नहीं, [illegible] है। [illegible] निश्चय [illegible]।

([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible] ऐसा [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कुटिल

व्यवहार

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

1. [illegible]
2. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] है. [illegible]

[illegible] की [illegible]

[illegible] भजन [illegible]

[illegible] हलचल होती है, [illegible]

[illegible]

---

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]

— २५. 232

अनासक्ति-योगी हो जाता है; वैर-विरोध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, वह कुमार्ग-गमन से वंचित है, उसका न कोई शत्रु होता है, न मित्र, मान-अपमान की उसे परवाह नहीं होती, निन्दा-स्तुति उसके लिए बराबर हो जाती है और वह हर स्थिति में अपने प्रभु में लीन रहता है.[१] अतः ऐसा ही व्यक्ति भक्त भगवान् को अतिप्रिय होता है.[२]

भक्त का जो सबसे बड़ा लक्षण है, उसकी अनन्यनिष्ठा. संसार में जितने सम्बन्ध कर हैं, उसी से भक्त भी. परन्तु यदि कोई भक्त, उसका अपनी दूसरा भक्त स्वभाव कर अपनी साधना या उपासना में पारस्परिक करता रहे, तो निश्चय ही वह मार्ग के भटकनों में भटक कर रह जायेगा, भिक्षुक तक पहुँचना असम्भवः उसके अभिप्रेत से बाहर ही रहेगा. अतः भक्त को जो भी करना है, दृढ़ निष्ठा और पूर्ण विश्वास से करना होता है. उसे अनन्य-भाव अपनाना होता है, अन्य नहीं. श्री रामकृष्ण कहते हैं," यथार्थ त्यागी भक्त और संसारी-भक्त में बहुत अन्तर है. यथार्थ ईश्वर-भक्त—अनन्य-शरणागत—मधुमक्खी की तरह है. मधुमक्खी फूल को छोड़ और किसी चीज पर नहीं बैठती. मधु को छोड़ और किसी चीज को ग्रहण नहीं करती. संसारी-भक्त दूसरी मक्खियों के समान होते हैं, जो मिठाई पर भी बैठती हैं, और सड़े घावों पर भी. अभी बैठे तो वे ईश्वरीय-भावों में मग्न हैं, थोड़ी देर में देखो तो कामिनी और कांचन को लेकर मतवाले हो जाते हैं."[३] निन्दा को देने का बदले वाले भक्त कभी अच्छे नहीं होते. परन्तु ऐसा यह भी नहीं कि उसे अन्य अपने या + विचारकों, आदर्शों का आदर्श-कल्पनाओं से प्राप्त द्रुत का अधिकार प्राप्त हो जाता है. निष्ठ भक्त अपने आराध्य से विमुखता नहीं, उसमें ही किसी की निन्दा वह नहीं करता. उसके लिये सब अपने इष्ट-रूप हैं, भगवान हैं, परन्तु वह अपने ही इष्ट को सर्वस्व मानता है. महात्मा तुलसीदास ने स्पष्ट प्रकार कृष्ण की मूर्ति देखकर उनके आगे सिर नवाना भी स्वीकार कर लिया था, परन्तु अपने इष्ट को,—"तुलसी मस्तक तो नवै, धनुष बाण लो हाथ."

---

१. गीता अ० १२, श्लोक १८-१९.
२. वही ,, ७, ,, १६-१८.
३. श्री रामकृष्णवचनामृत ... पृ० ४०५. अनुवादक: निराला.
४.

[illegible] में वैराग्य की [illegible] है. यह वैराग्य [illegible] प्रेम-[illegible] से [illegible] होता है. [illegible] प्रेम बनाये रखने के लिये [illegible] भी तैयार रहता है. धीरे धीरे यह प्रेम का विकास [illegible] वस्तु के प्रति भी होने लगता है. और [illegible] वस्तु में अपने आपको [illegible] देता है, अतः उसका प्रेम सीमित न रहकर [illegible] हो जाता है. ऐसे वैराग्ययुक्त प्रेम [illegible] बढ़ता जाता है. इसमें किसी प्रकार का छल-कपट नहीं होता, न तो किसी तरह का [illegible] का प्रश्न ही उठता है.

[illegible] गुणों का [illegible] करते हुए कहा है,* "[illegible] गुण [illegible] का [illegible] होता है, उसमें अहंकार का लेश भी नहीं रह जाता. [illegible] वह [illegible], [illegible], [illegible] होता है, [illegible] समबुद्धि, [illegible] का अधिकारी होता है. वह किसी से घृणा नहीं करता. उसके लिये हर्ष-विषाद, [illegible], सब बराबर है. उसमें [illegible] और [illegible] होता है. वह अपने [illegible] प्रेम रखता है, [illegible] करने को [illegible] तत्पर रहता है. [illegible], [illegible] से [illegible] होता है, जो [illegible], [illegible], [illegible] में [illegible] रहता है. [illegible] से [illegible] उसका कोई [illegible] नहीं, वह उसमें कोई स्वार्थ नहीं रखता. वह [illegible] का प्रतीक होता है.

[illegible], [illegible], अपने अस्तित्व के स्वामी से [illegible] और [illegible] अनुभव [illegible] होता है. उसे [illegible], किसी [illegible] का [illegible] हो जाता है, और वह [illegible] प्रकार [illegible] को [illegible] और [illegible] को [illegible] करता है [illegible] (पुरा-[illegible]) का अधिकारी बनाता है, जो भगवान की [illegible] से [illegible] में [illegible] हुआ रहता है."[1]

---

१. दि मैसेज [illegible] गीता—([illegible]), श्री अरविन्द, पृ० [illegible].

[illegible]

[illegible] के [illegible] में अपना [illegible] करने [illegible] को [illegible] करना [illegible] है. [illegible] की [illegible] को प्रकट करता है. [illegible] जाता है. [illegible] है, [illegible] प्रकार से [illegible] में [illegible] करने पर [illegible] और [illegible] का [illegible] भारतीय विचारधारा में प्रचार [illegible] और [illegible] की [illegible] है, [illegible] का [illegible] करते है. [illegible] विचारधारा [illegible] है और [illegible] है [illegible].

[illegible] होता है. [illegible] में [illegible] कामना [illegible] है. [illegible] अथवा [illegible] है. [illegible] है [illegible] है [illegible] में [illegible], [illegible] है. [illegible], [illegible] को, [illegible], [illegible] और [illegible] को [illegible] रखता है. [illegible] है. [illegible] है—[illegible]. [illegible] है, [illegible] रखता है. [illegible] है. [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है. [illegible] नहीं [illegible]. [illegible] है, [illegible] नहीं [illegible] है, [illegible] में [illegible] नहीं [illegible] है; [illegible]

जैसे वह ध्यान पर आकर टिक जाते हैं, और यह ध्यान है "आत्म-बोध". इसका रहे, वह आत्मा में आत्मयुक्त होगी. कर्मयोगी ने इसकी चरम की जोड़ी और कर्मयोगिनः इसी कुण्डलिनी के पारायण होगा. किसी के कहने सुनने मात्र से वह तब सम्भव नहीं, वरन् वो निष्कामता इसके लिए अनुभव का विषय होगी. गीता का योगस्थ [illegible] इसका प्रमाण है.

कुण्डलिनी [illegible] के रूप में अद्वैत ज्ञान और [illegible] के बीच [illegible] है. परन्तु निष्काम में [illegible] से [illegible] को [illegible] नहीं की जाती है, वह ज्ञान और [illegible] को [illegible] दूर नहीं रहने देती. कर्म-निष्कामता को "ईश्वर-हेतु" बनाना अत्यन्त आवश्यक भी हो गया है, और विषय-कर्मों में प्रवृत्त होकर भी [illegible] निष्कामता में स्थित रहना ही इसके आगे का ही लक्ष्य है. [illegible] यह [illegible] ज्ञान, भक्ति और कर्म, ये तीनों ही एक दूसरे से युक्त हैं. [illegible] गीता [illegible] रहने का आदेश देती है, कर्म त्यागने का नहीं. कर्मों को त्यागना कु-[illegible] हुआ है. [illegible] का कुछ है. दुनिया में [illegible] की [illegible] दूसरा [illegible] + किसी प्रकार से कर्म की पूर्ति का [illegible] है. यही कारण है [illegible] उपर्युक्त प्रकार को दार्शनिक-[illegible] [illegible] में पड़ जाता है. दुनिया में जैसे [illegible] छोड़ नहीं सकता, बिना छोड़े बन्धन-मुक्ति की सम्भावना नहीं. आखिर वह करे क्या? विचित्र अवस्था है. [illegible] ने बहुजाद्य बन्धनों का स्वरूप [illegible]. [illegible] के मिश्र-यौगिक (कम्पाउंड) [illegible] है, [illegible] [illegible] के [illegible] को आधा जीव [illegible] की [illegible] में [illegible] जाता है. [illegible] पापों [illegible] में [illegible] रहा है, [illegible] [illegible] नहीं होता; परन्तु [illegible] से निकलने की [illegible] [illegible] है. [illegible] धर्म, दार्शनिक-सिद्धान्त, [illegible] तथा [illegible], [illegible] परिणाम रूप [illegible] में आते हैं. [illegible] प्रश्न कौतूहलपूर्ण होता है—आखिर जीव करे क्या? इस चक्र से [illegible] कैसे? [illegible] इसका उत्तर है. [illegible]-चक्र से बचने के दो उपाय हैं. प्रथम उपाय, ठीक अपने आध्यात्म में निष्कामता को अपनाने का है. अर्थात् इस चक्र से पूर्णतः जुदा होकर दूर से इसकी लीलाओं को देखना. [illegible] स्थिति की प्राप्ति का साधन है "योगानुशासन". योगी जब अपने लक्ष्य तक पहुंचता है,

---

१. [illegible]—[illegible] की पूर्व [illegible] हैं", [illegible] विवेकानन्द, पृ० १२०-२१.

तब अपनी आत्मा को कैवल्य में स्थित करता है, तो वह संसार से पूर्णत: अपना नाता तोड़ लेता है. उस समय संसार के आकर्षण-विकर्षण, हर्ष-विषाद सब उसके लिये मिट्टी हैं. वह इनसे इतना दूर हट जाता है कि बाहरी साधन उसे दोबारा अपने तक खींच लेने में पूर्णत: निःशक्त हो जाते हैं, और योगी निवृत्तिमय परमानन्द का उपभोग करता है. दूसरा मार्ग है, प्रवृत्ति का. संसार में रहते हुये काम करो, अपने अन्दर एक प्रकार की कार्य-क्षमता पैदा करो, जीवन की समस्त अपेक्षित विषयों का पालन करो—और अन्तत: निश्चयात्मक भाव से विश्व-चक्र के अन्दर रहते हुये, उससे बाहर निकलने का मार्ग खोज निकालो. यही मार्ग है कर्मयोग. कर्म के भीतर से ~~निष्क~~ निःकामता पैदा करो, इच्छा-विहीन कर्मों को जन्म दो, और फल-स्वरूप अपनी सम्पूर्ण-आकांक्षायें ईश्वरेच्छा पर समर्पित कर स्वयं इस भावना से भी मुक्त हो जाओ कि आप ने कार्य किया. यह भी मत सोचो कि "तुम्हें कुछ करना चाहिये था, इसलिये किया. प्राय: दुनिया में अपने कर्मों को उचित पेश करते हुये लोग "कर्तव्य" की ओट लेते हैं. "अमुक अमुक कार्य मेरा कर्तव्य था, या है", ऐसा कहा जाता है. परन्तु नहीं, कर्मयोगी कर्म को कर्तव्य समझ कर नहीं करता. उसका विश्वास है कि ईश्वरेच्छा से यह उससे करवाया गया है, इसलिये उसने किया. उसका अपना स्वार्थ, परार्थ, या परमार्थ उसमें कुछ भी नहीं होता. वह तो गीता के "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का सच्चा पालक बन जाता है. दुनिया में तो वह क्या चाहेगा, भगवत्प्राप्ति में भी उसको ईश्वर से कोई कामना नहीं होती. वह ~~करता है,~~ करता है, क्योंकि उसके द्वारा होता है—और ~~करने~~ करवाने वाला उसका सर्वेश्वर है. कर्मयोगी को किसी प्रकार का काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि नहीं रह जाता. वह सर्व-कर्म त्यागी होता है, जिसने भगवान के लिये सर्वस्व त्याग किया होता है. उसके कर्मों का अच्छा बुरा होना ईश्वर से सम्बन्धित है; कर्मफल के भोग की अपेक्षा वह नहीं रखता, इसीलिये प्रभु का प्रिय जीव बन जाता है. गीता में लिखा है—

> अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः,
> सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः . (गीता अ०१२, श्लोक१६)

स्वयं अर्जुन को भी श्रीकृष्ण ने समस्त कर्मों के गुण-धर्मों का ध्यान त्याग कर प्रभु-शरण ग्रहण करने का उपदेश दिया है—

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज. (गीता अ०१८, श्लोक ६६)

श्रीमद्भगवद्गीता में इस मध्यम निष्कृत-कर्म को, अन्य पाँचों प्रकार[1] के फलासक्ति-युक्त कर्मों से उच्च बतलाया गया है. इसी को मुक्ति का आधार भी स्वीकार किया है. गीता के उपदेश इस प्रकार है—

(क) "जैसे पतिव्रता स्त्री, पति को ही सर्वस्व समझ कर पति का चिन्तन करती हुई पति की आज्ञानुसार पति सेवा लिये मन, वाणी, शरीर से कर्म करती है, वैसे ही परमेश्वर को ही सर्वस्व समझ कर, परमेश्वर का चिन्तन करते हुये, परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार मन, वाणी और शरीर से परमेश्वर के ही लिये स्वाभाविक कर्तव्य-कर्मों का आचरण करो."[2] इस रूप में कर्म ही उपासना है.

(ख) "क्योंकि कर्म कारण-कार्य भाव की ओर भी संकेत करता है, इसलिये कर्म का फल तो होगा ही. परन्तु प्रत्येक कर्म के दो प्रकार के परिणाम होते हैं—एक तो स्थिर परिणाम होता है, जिससे हर्ष और विषाद का अनुभव होता है. यह फल अनिवार्य है, अतः बिना दुःखी हुये, हँसकर उसे स्वीकार कर लेना चाहिये. दूसरा परिणाम सूक्ष्म-संस्कार (सटल-इम्प्रेशन) रूप में एकत्रित होते हुये भविष्य में कोई स्थूल-स्थिति उत्पन्न करने वाला होता है. इस स्थिति का अवरोध सम्भव है, और यह दृढ़ आत्मविश्वास द्वारा ही सम्भव है.

(ग) "गीता के अनुसार मनुष्य केवल शारीरिक और मानसिक क्रियाओं का पिण्ड ही नहीं(यदि होता तो वह कर्म-सिद्धान्त से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता), उसमें एक उन्नतात्मा भी है, जो सदैव मुक्त है. निम्नात्मा (लोअर-सेल्फ) कर्मों में संयुक्त होता है और उसके फल की इच्छा में बन्ध जाता है. अज्ञानी व्यक्ति अपने को इसी से सम्बद्ध करता है; परन्तु जब निष्काम कर्मों द्वारा आवरण उठ जाता है तो वह अपने को उन्नतात्मा के रूप में पहचानता है. और उन्नतात्मा होने से ही कर्म भी निःकर्म होता है.

(घ) "निष्काम-कर्म ही उचित कर्म है, क्योंकि यह जीव को भवबन्धनों से मुक्त करता है. यह भी सही है कि नैष्कर्म्य की स्थिति कर्म के माध्यम से ही प्राप्य है—ध्यान रहे, नैष्कर्म्य का अर्थ गीता में कर्म-हीनता नहीं, बल्कि ऐसे कर्म हैं, जिनसे बन्धन का अन्त हो जाता है.[3]

१. अन्य पाँच प्रकार के कर्म है—नित्य, नैमित्तिक, सहज, शरीर-रक्षा हेतु कर्म, अन्य.
२. गीता (छोटा संस्करण), गीता-प्रेस, पाद-टिप्पणी, पृ....
३. गीता-रहस्य..., तिलक.

ये बातें [illegible] गीता के स्पष्ट कर्मयोग का उन्नत-स्वरूप प्रस्तुत करते हैं.

<u>कर्मयोग और कर्म-काण्ड</u>

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी अनुचित न होगा कि गीता का कर्मयोग तथा पूर्व-मीमांसा का कर्म-काण्ड, दोनों को एक ही स्तर पर लाने के प्रयत्न भी हुए, परन्तु फिर भी दोनों में एक गम्भीर अन्तर रह गया है. निस्सन्देह कर्म-काण्ड के यज्ञ दान, आदि कर्मों को गीता में कर्तव्य-कर्म के नाम से स्वीकृत की गई है, और कर्मयोगी के लिये इन कर्मों के करने में निष्काम-बुद्धि का प्रतिपादन करने की सिफारिश भी हुई है, परन्तु मोटा अन्तर इनमें ज्ञान और श्रद्धा का है. कर्मयोगी के निष्काम-कर्म एक विशेष ज्ञान-स्तर के मान-दण्ड पर जाने-परखे रहते हैं. वह कर्म को जानता और पहचानता है, तथा प्रभु में लीनता के कारण उसे भी समर्पित कर देता है. परन्तु कर्म-काण्डी का कर्म अन्ध-श्रद्धा या विश्वास पर आश्रित रहता है. धर्म-विशेष में आस्था, कुल-निष्ठा तथा उसकी परम्परा [illegible] देख-सुन आदि भाव उसके कर्मों का आधार बनते हैं. इन कर्मों में ज्ञान या तर्क को कोई स्थान नहीं. ऐसे ज्ञान-विहीन कर्म प्रायः दो प्रकार के होते हैं—एक में आडम्बर और दम्भ अधिक होता है, पृष्ठभूमि में; एवं दूसरे में श्रद्धा और विश्वास की पृष्ठभूमि होती है, लेकिन चिन्तन-मनन की कमी. मन के संयम के बगैर माला-फेरना, लम्बे-लम्बे तिलक लगाना, [illegible] [illegible] का प्रदर्शन करना, भगवा पहनना तथा धर्म के ठेकेदार बन कर गुरु-स्थान लेकर दूसरों के पैसे हथियाना, प्रथम प्रकार के कर्म हैं, जिनकी भी यथा पूर्व-मीमांसा में [illegible] की गई. दूसरे प्रकार के कर्म आस्तिकता में कट्टरपन एवं अतिश्रद्धा पर निर्भर हैं. इनमें प्रेम और भक्ति का गम्भीर आधार नहीं लिया जाता, बल्कि अन्ध-श्रद्धा का सहारा लेकर यथावत् अनुसरण किया जाता है. भक्तिमार्ग का विश्वास है कि जीव की इस स्थिति पर भगवान् की कृपा-दृष्टि होती है और स्वयं प्रभु उसका अवलम्ब बन कर भवसागर के विकट थपेड़ों से उसकी रक्षा करता है. इसी स्थिति का परम-रूप भक्ति में भी उच्चासीन [illegible] का बनाता है, परन्तु यहाँ उस की प्राप्ति ज्ञान और आत्म-चिन्तन से नहीं, वरन् ईश्वर-कृपा से है.

कर्मयोग अपने में महत्व और जीव के लिये अत्यन्त-उपयोगिता है. इसी माध्यम से हम सरलता पूर्वक अपने उद्धार की योजना बना सकते हैं. निष्काम-बुद्धि उत्पन्न करते ऐसे कर्म-जन्य-दुर्भावनायें प्रभु-भक्ति का बीजारोपण अपने आप हो जाता है. इस सूत्र को अपनाकर एक कर्मयोगी मुक्ति का साधन जुटा लेता है, जो मध्य-रेखा सबकी

जानकारी उसे ज्ञानियों की पीढ़ी में ला खड़ा करती है. अतः इस प्रकार कर्मयोगी में भक्त और ज्ञानी के लक्षण स्वमेव आ जाते हैं और वह पुण्यात्मा बन परमानन्द सदा लाभ का उपभोग करता है. इसके विपरीत अन्धा-सा चाकरी करता हुआ जो कर्ता तो बहुत कुछ है, परन्तु अन्ध-श्रद्धा होने के कारण रहस्य या तत्त्व की जानकारी उसे नहीं मिलती—क्योंकि वह उसकी खोज ही नहीं करता. और भगवद्गीता में अधिक मूल्यांकन उसी का है, जो उसे "तत्त्व से जानकर" कर्मों को उसके प्रति अर्पित करे. लिखा है—

> एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे. कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं
> ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे. ४/३२.

(ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेद की वाणी में विस्तार किये गये हैं, उन सबको शरीर, मन एवं इन्द्रियों की क्रिया द्वारा ही उत्पन्न होने वाले जान, इस प्रकार तत्त्व से जानकर निष्काम कर्मयोग द्वारा संसार बन्धन से मुक्त हो जायेगा.)

ज्ञान, भक्ति और कर्म

जैसे एक शिखर पर पहुँचने के लिये भिन्न रास्ते, जुदा जुदा मार्गों को अपना कर भी अन्त में एक ही स्थल पर जा मिलते हैं; वैसे ही ज्ञान, भक्ति और कर्म प्रभु-मिलन के तीन साधन हैं. साधक कोई भी साधन अपनाये, लक्ष्य वही परमानन्द की प्राप्ति ही है. साधना-पथ में प्रत्येक मार्ग की निजी सुविधायें हैं, अपनी कठिनाइयाँ और जोखिमें हैं, परन्तु लक्ष्य-स्थल वही पूर्णानन्द है, जिज्ञासा आकर्षित ज्ञानी को रहस्योद्घाटन के लिये प्रेरित करता है; भक्त को आत्मसमर्पण हेतु उभारता है और कर्मयोगी को आत्मकल्याण-युत परोपकार-प्रेरणा देता है. प्रभु-कृपा हर प्रकार के जिज्ञासु पर होती है, लेकिन अपने को अडिग और उचित रीति से आध्यात्मिकता के मार्ग पर बढ़ने वाला साधक परमानन्द का अधिकारी बन जाता है, फिसल जाने वाला भौतिक-बन्धनों से ही मुक्त नहीं हो पाता.[1]

उक्त तीनों मार्ग यद्यपि अपना पृथक अस्तित्व रखते और एक दूसरे से श्रेष्ठ कहलाने का दम भरते हैं, तो भी एक दूसरे से पूर्ण रूपेण कोई जुदा नहीं. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जिज्ञासु अपनी सुविधानुसार चाहे कोई भी मार्ग पहले चुने और उसका अनुसरण करे लेकिन—अन्त आने पर उसे शेष दो का स्वरूप भी जानना होगा और उनकी सहायता से जीवन की संश्लिष्टता प्राप्त कर अपने ध्येय की ओर बढ़ना होगा. सामान्यतः रहस्य जान लेने के बाद ज्ञानी का लक्ष्य ब्रह्म में लीन होना होता है.

इसकी उपलब्धि समर्पण और आत्म-निवेदन (भक्ति) तथा अनासक्त कर्म-सिद्धान्त के बजाय केवल नैष्कर्म्यता (अनासक्त-कर्म) के माध्यम से ही सम्भव है. भक्त को (गीता के अनुसार) ज्ञानी-भक्त बन कर ही मुक्ति की खोज करनी होती है; कर्मयोग के बिना वह किसी को आत्मकल्याणी नहीं बना सकता. कर्मपथ का साधक भी बिना ज्ञान और भक्ति का आश्रय लिये कर्म-फल के मोह का त्याग नहीं कर सकता और न ही प्रभु-हेतु कर्म-समर्पण में उसे सफलता मिल सकती है. अस्तु:, यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि तीनों मार्ग एक दूसरे के साधक हैं, बाधक नहीं; और तीनों का विशिष्ट भक्ति में योग ही ईश्वर-मिलन के महत् उद्देश्य को सार्थक करता है. तथापि नीचे हम महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस पर आश्रित भिन्न मार्गों की कठिनाइयों और सुविधाओं का विवरण करना अनुचित नहीं समझते.

यद्यपि तुलसीदास स्वीकार करते हैं कि ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं,[1] दोनों मुक्ति के साधन हैं; लेकिन महान आत्मज्ञानी, महात्माओं आदि ने जन-साधारण को समझाने हेतु कुछेक भेदों का स्पष्टीकरण किया है, जो कि इस प्रकार है.[2] तुलसी लिखते हैं कि ज्ञान, योग, वैराग्य आदि सब स्वयं पुल्लिंग हैं,[3] और प्रायः पुरुष सबल होता है, और स्त्री अबला और जड़-स्वभाव की होती है.[4] ऐसे में चाहिये तो यह कि पुरुष स्त्रियों के मोह-जाल से बचे रहें. परन्तु यह विचार कल्पना-कल्पना मात्र ही है; वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता. केवल अति-दृढ़चित्त विरक्त और विवेकशील व्यक्ति ही स्त्रियों (माया) का त्याग करने योग्य हैं. अन्य संसारी ऐसा नहीं कर सकते. प्रयत्न करने पर भी उन्हें इसमें सफलता नहीं मिलती.[5] जिन वैराग्यों ने प्रयत्न किया, जंगलों में जाकर तप-ध्यान में लिप्त समाधि और नारी की मोहिनी से सदा बचते रहे, वे भी स्त्री, जो कि प्रबल माया है, का सामना होने पर फिसल पड़े. बड़े बड़े ज्ञानी और तपस्वी औरत के चन्द्रमुख को देखकर विकल हो उठे.

---

१. ज्ञानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा. उभय हरहिं भव संभव खेदा.११. (उत्तरकाण्ड-मानस)
२. नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर. सावधान सोइ सुनु बिहंगबर.११४.   वही.
३. ज्ञान बिराग जोग बिग्याना. ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना.११५.   "
४. पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती. अबला अबल सहज जड़ जाती. ११५.   "
५. पुरुष त्यागि सक नारिहिं, जो बिरक्त मतिधीर.   "
 न तु कामी जो बिषय बस, बिमुख जे पद रघुबीर.   ११५.   "

स्वयं ज्ञान रूप शिवजी, भगवान् के मोहिनी-रूप पर दृष्टि पड़ते ही कामातुर हो उठे थे. पाराशर और विश्वामित्र जैसे ज्ञानियों का तो कहना ही क्या? अर्थात् ज्ञान पुरुष-वाचक होने के कारण प्रायः स्त्रीवाचक माया की ओर आकृष्ट हो ही जाता है, परन्तु भक्ति स्वयं स्त्रीवाचक है, और क्योंकि नारी नारी की ओर आकृष्ट नहीं होती,[२] अतः भक्ति भी माया के फंदे में नहीं फँस सकती. पुनः माया तो भगवान् के दरबार की एक नर्तकी मात्र है, और भक्ति प्रभु की प्रेमिका.[३] इसीलिये जिसके हृदय में प्रभु की भक्ति का निवास है, वहाँ स्वयं भगवान् निवसित है. वहाँ अन्य कोई उपाधि नहीं आ सकती, क्योंकि उस हृदय में भक्ति का आसन देख कर माया संकोचित हो जाती है, और स्तम्भित रह जाती है. तुलसी बताते हैं कि भक्ति प्रभु की प्रिय होने के कारण अधिक सशक्त है और माया अपनी दुर्बलता के कारण उससे टकराने में भय खाती है. यही सब विचार कर महात्मा-जन प्रभु से उनकी भक्ति की माँग करते हैं, ज्ञान की नहीं. भक्ति सब प्रकार के सुखों का अपार कोष है, जबकि ज्ञान थोड़ा भी भटक जाने पर पतन के गर्त में गिरा देता है.[४]

ज्ञान और भक्ति का एक अन्य भेद भी तुलसीदास बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत करते हैं. कहते हैं, कि वास्तव में उभय-भेद शब्दों में समझाया नहीं जा सकता, यह दुरावगाह्य चिन्तन है. जो जीव अनुभविता करे, वही सुगमता-पूर्वक इसे समझ सकता है. यह जीवात्मा ईश्वर का अंश है. यह चेतन है, अमल है और अविनाशी है. यह प्रभु के आकार के रूप है, सहज सुखराशी है. परन्तु दुर्भाग्यवश माया के फंदे में

---

१. तेहि पुनि ज्ञाननिधान, मृगनयनी विधुमुख निरख. (सोरठा) १५.
   बिबस होइ हरिजान, नारि विष्णु माया प्रगट.
२. मोह न नारि नारि के रूपा. पन्नगारि यह रीति अनूपा. १.(उत्तरकाण्ड-मानस)
   माया भगति सुनहु प्रभुदोउ. नारि वर्ग जानै सब कोउ. २.   "
३. पुनि रघुबीरहि भगति पियारी. माया खलु नर्तकी बिचारी.३.   "
४. भगतिहि सानुकूल रघुराया. ताते तेहि डरपति अति माया.४.   "
   राम भगति निरुपम निरुपाधी. बसै जासु उर सदा अबाधी. ५.   "
   तेहि बिलोकि माया सकुचाई. करि न सकै कछु निज प्रभुताई.६.   "
   अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी. जाचहिं भगति सकल सुख खानी.७.   "

बांध रखा है, जैसे हम तोते को पिंजरे में बन्द कर लेते हैं, या बन्दर को रस्सी से बान्ध कर नचाते हैं, वैसे ही माया ने जीव को तोते या बन्दर की तरह बान्ध रखा है, और क्योंकि जीव अपनी वास्तविक स्थिति भूल चुका है, इसलिये माया के इशारे पर नाचता रह जाता है. इस पर "जड़-चेतन की ऐसी गांठ"[१] लग गई है कि अनेक प्रयास करने पर भी जीव उसके खोलने में सफल नहीं हो सकता. अतः बेचारा संसारी बना है, सुख को चाहता रहता हुआ भी उससे वंचित है. वेद-शास्त्रों में अध्ययन तथा आत्मचिन्तन के बहुत उपाय किये गये परन्तु इच्छा पूरी नहीं हुई. उस इच्छा की पूर्ति तो केवल परमेश्वर की असीम कृपा से ही सम्भव है, वही चाहे तो गांठ खोल जीवात्मा को मुक्त कर सकता है, अन्यथा सब असम्भव है. ज्ञानयोगी ज्ञान-ज्योति के प्रकाश में इस गांठ को खोलना चाहते हैं, परन्तु उस ज्योति की प्राप्ति ही पहले अति कठिन है,[२] और यदि मिल भी जाये तो गांठ खोलना सौभाग्य पर आधारित है, क्योंकि माया यहाँ अनेक

---

१. पंच तत्त्व, तीन गुण, पच्चीस प्रकृति, मन और माया के पर्दे जीव पर पड़े हैं, यही जड़-चेतन की गांठ है.

२. प्रस्तुत ज्ञान-ज्योति जलाने के लिये जिस बत्ती और स्नेह की आवश्यकता पड़ती है, तुलसी उसका स्वरूप भी प्रकट करते हैं—

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई. जो हरिकृपा हृदय बस आई. ९.
जप तप व्रत यम नियम अपारा. जे श्रुति कह शुभधर्म अचारा. १०.
तेई तृण हरित चरै जब गाई. भाववत्स शिशु पाइ पन्हाई. ११.
नोई निवृत्ति पात्र विश्वासा. निर्मल मन अहीर निजदासा. १२.
परमधर्ममय पय दुहि भाई. अवटै अनल अकाम बनाई. १३.
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै. धृति सम जावन देइ जमावै. १४.
मुदिता मथै विचार मथानी. दम अधार रजु सत्य सुबानी. १५.
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता. विमल विराग सुभग सुपुनीता. १६.
(दोहा) योग अग्नि करि प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ.
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत, ममतामल जरि जाइ. १८१.
तब विज्ञान निरूपिणी, बुद्धि विशद घृत पाइ.
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ. १८२.
तीन अवस्था तीन गुण, तेहि कपास ते काढ़ि.
तूल तुरीय संवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि. १८३.
(सोरठा) यहि विधि लेसै दीप, तेज राशि विज्ञानमय.
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक शलभ सब. १७.
चौपाई—सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा. दीपशिखा सोइ परम प्रचंडा. १.
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा. तब भवमूल भेद भ्रम नाशा. २.
प्रबल अविद्याकर परिवारा. मोह आदि तम मिटै अपारा. ३.
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा. उरगृह बैठि ग्रंथि निरुआरा. ४.

रामचरितमानस—उत्तरकाण्ड, तुलसी.

विघ्न रचती है, ऋद्धियों-सिद्धियों का लोभ देती है. यह जीव यदि थोड़ा भी उस लोभ की ओर आकृष्ट हुआ कि अनेक मुसीबतों से प्रज्वलित ज्ञान-दीप अचानक बुझ जाता है. मान लीजिये ज्ञान कुछ प्रबल है, और ऋद्धि-सिद्धि शक्तियों की ओर नहीं झुकता, तो इन्द्रियों के देवता[1] उत्पात करते हैं. जीव जिनकी पूजा करता है, वेही उसका मार्ग-रोधक बनते हैं. जब कभी विषय-वासना का पवन चलता है, तो वे हठपूर्वक उसके अन्तःप्रदेश के द्वार[2] खोल देते हैं. विषय-पवन के वेग से ज्ञान का दीपक बुझ जाता है. जो स्थिति अनेक मुसीबतें और कठिनाइयाँ सहन कर प्राप्त की थी, क्षण भर में जीव उससे हाथ धो बैठता है. अब प्रकाश ही नहीं रहता, गति कैसे सुधरे? इन्द्रियों के देवताओं को ज्ञान सुहाता नहीं, वे तो विषय-विकारों के प्रेमी हैं—"इन्द्री सुरन न ज्ञान सुहाई. विषय भोग पर प्रीति सदाई." अतः दोबारा दीपक जलाने की प्रेरणा उसे कहाँ से मिले? जब भी भगवान् की माया अतीव दुस्तर है, उससे पार पाना बेचारे ज्ञान-मार्गी के बूते की बात नहीं. कहते हैं कि पहले तो ज्ञान-मार्ग का कथन ही बड़ा कठिन है, फिर इसे समझना और भी कठिन. उदाहरण देकर समझाते हैं कि लकड़ी को घुन खाता है, तो कभी कभी जैसे कोई अक्षर बन जाता है (यद्यपि वह घुन साक्षर नहीं होता), वैसे ही हजारों लाखों में से कोई एकाध अकस्मात् सफल ज्ञानी बन सकता है. ज्ञान तलवार की धार है, उस पर चलना सहज में सम्भव नहीं.

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक.
कोई घुणाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक.११८ (दोहा)
ज्ञान पंथ कृपाणकी धारा. परत खगेश न लागी बारा.१. (चौपाई)

तुलसीदास का तो मत है कि जिस प्रकार मिट्टी के (स्थल के) बिना पानी नहीं रह सकता, उसी प्रकार भक्ति के बिना ज्ञान नहीं रह सकता. कारण स्पष्ट है कि यदि कोई निर्विघ्न ज्ञान-दीप प्रज्वलित कर भी ले तो क्या पायेगा? कैवल्य-मुक्ति. यह कैवल्य-मुक्ति यद्यपि वेद-शास्त्रों और ज्ञानियों के मतानुसार परमोच्च-पद है.

---

१. शास्त्रानुसार ये इस प्रकार हैं—दाहिनी आँख का देवता-सूर्य, बाईं आँख का-चन्द्र, कानों का वरुण आदि.

२. विषय-वासना के प्रवेश-द्वार ये इन्द्रियाँ ही हैं. यथा आँखें सौन्दर्य-रूप की पिपासु हैं—और यहीं से सम्पूर्ण भोगेच्छा का जन्म होता है.

जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई. सो कैवल्यपरम पद लहई.२.

अति दुर्लभ कैवल्य परम-पद. संत पुरान निगम आगम बद.४.

परन्तु भक्त का गौरव इससे बहुत आगे है.[1] उसकी भक्ति में इतनी स्वाभाविक शक्ति है कि बिना इच्छा किये ही विवश हो मुक्ति का आदर मिलता है.[2] किसी सद्गुरु का मार्ग-प्रदर्शन जीव पर प्रभु-कृपा का उद्बोधक कारण बनता है, और सम्पूर्ण विषय-वासनायें स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं. स्पष्ट सम्मुख पड़ा दिखता है—भक्तात्मा का अपना प्रकाश ज्ञान-दीपक की तरह बुझने योग्य नहीं, वह तो चिर-प्रदीप्त चिन्तामणि के समान नित्य-देदीप्यमान है. उसे जलाने के लिये ज्ञान-ज्योति की तरह दिया-घृत या बत्ती, किसी वस्तु की आवश्यकता भी नहीं पड़ती. इस सम्पन्नता के सम्मुख मोह-रूपी दरिद्रता का क्या ठिकाना. लोभादि पवन भी उसको बुझाने में असमर्थ हैं.

रामभगति चिन्तामनि सुन्दर. बसै गरुड़ जाके उर अन्तर.

परम प्रकास रूप दिन राती. नहि कछु चाहिय दिया घृत बाती.

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा. लोभबात नहिं ताहि बुझावा.

स्पष्ट ही ऐसे चिर-ज्योतित प्रकाश में अज्ञानान्धकार को कोई स्थान नहीं. अतः तुलसी मतानुसार ज्ञान की अपेक्षा भक्ति-पथ उच्च ठहरता है.

पीछे पृ० भी स्पष्ट किया जा चुका है कि कर्म-मार्ग वास्तव में भक्ति-योग का ही एक अंग है. कर्मयोग के मुख्य स्वरूप,"कर्म-रहस्य को पहचानना","कर्म-सिद्धान्त का अनुसरण","प्रभु-हितार्थ कर्म-प्रवृत्ति" और "फल में अनासक्ति", ये सब उत्कट भक्ति के ही अंग हैं. योगानुयायी का त्याग कर्मपथ से हट जाने में है, परन्तु भक्त का त्याग अपने प्रभु की इच्छा में, सूत्रधार के हाथ में कठपुतली की तरह, कर्मरत रहने में है. यहाँ त्याग कर्म का नहीं, कर्म-फल का किया जाता है.पुनः, कर्मयोग हो, या भक्तियोग, दोनों की मुख्य धुरी है—भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम. प्रेमोन्मत्त सिक्ख "हुक्म बिना न झूले पत्ता" का दृढ़ उपासक बन आत्म-निवेदन करता है, आत्मत्याग भी और कर्म-समर्पण भी—अतः भक्ति और कर्म तो इतना अधिक परस्पर आश्रित हो गये हैं कि एक

---

१. कैवल्य-पद योगी का परम-लक्ष्य होता है. भक्त इससे आगे की इच्छा रखता है. वह निराकार ज्योति में लीन होना अपना ध्येय बनाता है और किसी सद्गुरु की कृपा से दसवें-द्वार में ज्योति दर्शन पाकर सहजावस्था का अधिकारी होता है. गुरु नानक का लक्ष्य सच्चे भक्त का सच्चा लक्ष्य कहा जा सकता है.

२. राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं. अनइच्छित आवै बरिआईं .४.

की अनुपस्थिति में दूसरा अधूरा दिखता है. ज्ञान का स्थान तो कर्मयोग में पहले से ही स्वीकार कर लिया गया है. अस्तु:, परिणाम यह निकलता है कि ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों अपने में अकेले तब तक अपूर्ण हैं, जब तक एक दूसरे का आश्रय नहीं मिल जाता. यह बात पृथक है कि आश्रय लेते समय 'अधिकाधिक-अंश' के ग्रहण-करण में कुछ मौलिकता आजाये.

गुरु नानक का विचार

गुरु नानक पंथ (कर्तामत), जिसमें नाम-जाप, हुक्म-स्वीकृति, कीर्तन-श्रुति, होमरोपकार तथा आत्म-समर्पण द्वारा निरंकारी-ज्योति में विलीनता का परम-लक्ष्य, मुख्य विषय हैं, ~~[illegible]~~ निश्चय ही भक्ति-मार्ग का उच्च आदर्श अपनाये हुये कहा जा सकता है. परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गुरु नानक ज्ञान-मार्ग या कर्म-मार्ग के विरोधी थे. वे तो समन्वयात्मक-प्रवृत्ति के महानात्मा थे, माया के फंदे में फंसे भांति जीवों को मुक्ति-मार्ग दिखाने आये थे; अतः स्वाभाविक ही था कि वे किसी ऐसे मार्ग का निर्देश करते, जिसे जन-साधारण सुगमता-पूर्वक अपना कर चलते तथा लक्ष्य-उपलब्ध करते. यही कारण है कि आध्यात्मिकता के मुक्ति-पथ पर चलने के लिये वैराग्य और योग-साधना, जो ज्ञानियों का मुख्य विषय है, उन्होंने गुरु की महत्ता-स्वीकृति में ही पूर्ण कर लिया, घर-बार और दुनियादारी के आकर्षणों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी. गुरु नानक का गुरमुख गुरु-निर्दिष्ट पथ पर चलने मात्र से ही 'निर्मल-बुद्धि' का अधिकारी हो जाता है, वह ज्ञानी बन जाता है—क्योंकि गुरु अपनी विभूति की अपार-कृपा से उसके समक्ष रहस्योद्घाटन ही नहीं करता, प्रत्युत गुरु दया-बल उसके अन्तर्दृष्टि-चक्षु और पूर्व-संस्कारों का अन्त कर देता ~~है~~ है; जिससे वह ~~[illegible]~~ दुष्कर्म से नाम में चित्त लगाता है और वहाँ उसमें तीव्र भक्ति का उदय होता है कि नाम जपने वाला स्वयं उसके समवर्ती 'नामयोग' में ही लीन हो जाता है. यही गुरु नानक दृष्टिकोण में 'जीवन-मुक्ति' है. इसकी प्राप्ति गुरमुख में अध्यात्म के आदर्शों का बीजारोपण करती है. वह नवजीवन पाने के बाद दुनिया का प्रत्येक काम दुःख की परिधि में करने लगता है. वह प्राणी-मात्र का सेवक बन जाता है, योगी की भांति विरक्त तक पहुंच संसार से निवृत्त नहीं हो बैठता. स्पष्ट है कि गुरु नानक ने गुरमुख के लक्षणों में भक्ति, ज्ञान और कर्म — तीनों की यथेष्ट मात्रा का समन्वय प्रस्तुत किया है, जिसमें प्रमुखता भक्ति की है. अतः गुरु नानक पंथ को समन्वय-प्रवृत्तिमय, ज्ञानपूर्ण भक्ति-मार्ग कहा जाये तो अनुचित न होगा.

—— ५०.

अन्य साधन : अन्तर्मुखी होना

भारतीय-सन्त-महात्माओं ने मनोभावों के बाह्य-विलास को निषिद्ध कर अन्तर्मुखी होने की प्रेरणा सदैव दी है. गुरु नानक भी इस विचार क्षेत्र में अपवाद नहीं. प्रस्तुत सिद्धान्तानुसार स्वीकार किया जाता है कि सर्वव्यापक ब्रह्म का अंश—आत्मा—बाहरी-कार्य-व्यापार में तल्लीन, इन्द्रियों के आकर्षणों में फँस अपने को शरीर से तद्रूप समझने लगी है. परिणाम यह होता है कि समस्त संसार उसके लिये दुःखमय बन जाता है. शरीर-धारण करने से परम-चेतन अपने यथार्थ-स्वरूप से पतित हो शरीर के दुःखों-सुखों, भोग-आनन्द के साथ अपना सुख-दुःख या भोग-आनन्द अनुभव करने लगता है—वास्तव में दुःख का कारण यह खोटी अनुभूति ही है. तभी तो कबीर साहिब ने लिखा था—

> तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो.

"यदि तन धारण कर उसके कमाने वाले बनते और अन्तर सँन्यास के साथ शुद्ध बरते तो आनन्द होती, यही शरीर हरि-मन्दिर बन जाता. परन्तु उल्टी हालत बन रही है. हम इन्द्रियों के भोगों रसों में लिपटे हैं, विषय-विकारों निमग्न का रूप बने बैठे हैं. अपने आप को भूल चुके हैं, प्रभु को भूल चुके हैं; इसीलिये हम दुःखी हैं."[1] उक्त दुःख से मुक्ति पाने का मार्ग है—अन्तर्मुखी होना. चित्त की वृत्तियाँ हमने बाहर फैला रखी हैं, भौतिक-उपकरणों के जुटाने और उनसे आनन्द-लाभ करने की क्रिया में हम व्यस्त हैं. अस्तु:, यदि उन ऐन्द्रिक-आकर्षणों से मन को हटाकर हम अपनी भीतरी शक्तियों की ओर प्रवृत्त करें, अपनी तद्रूपता को पहचानें और बाह्य कार्य-चक्र का त्याग कर भीतरी आत्मा के केन्द्र पर ध्यान जमायें, तो लक्ष्य-सिद्धि की निकटता प्राप्त हो सकती है. हर समय लौकिक बातें सोचने, अपने लाभ-हानियों से फूलने-कुढ़ने की अपेक्षा मन-मन्दिर में स्व-रूप (परम-चेतना का अंश आत्मा) की भी प्रतिमा प्रतिष्ठित कर अन्तर्ध्यान होने से परम-सुख का ~~[illegible]~~ उपकरण जो अलौकिक-दृष्टिकोण मिलेगा, वह अभीप्सित साधना (अन्तर्मुखी होना) का प्रथम-पुरस्कार होगा. मन स्थिर हो जाने से चित्तवृत्ति निरोध से वासना की मैल कट जायेगी और हरि-भजन में लीनता का संयोग सम्भव होगा. अन्तर्मुखी होने के पश्चात् में आत्मतत्त्व का बोध हो सकेगा—जो परम-तत्त्व से मिलने के लिये एक मात्र माध्यम कहा जा सकता है.

---

१. सन्त-सन्देश, देहली. नवम्बर, १९६९. पृष्ठ २७.

रूप-ध्यान मन की वृत्तियों को आत्मा के स्वरूप पर केन्द्रित करता है. यह तो सर्वमान्य ही है कि शक्ति के बिखराव की अपेक्षा उसका केन्द्रीयकरण अधिक महत्वपूर्ण है. उदाहरण के लिये सूर्य को लीजिये. उसकी कोटि कोटि किरणें चतुर्दिक फैली हैं. उनमें काफी ताप है, परन्तु कोई उनसे जलता नहीं, क्योंकि उनका ताप बिखरा हुआ है. अब, यदि इसी किरण-ताप को आतशी-शीशे द्वारा किसी स्थल पर केन्द्रित किया जाये, तो निश्चय ही कुछ समय बाद वह स्थान जल उठता है. ठीक इसी प्रकार मानवात्मा का ताप अविद्या तथा इन्द्रिय-आकर्षणों की ओर खिंच कर अन्यों के बिखराव में फैल रहा है. इस बिखराव में आत्मा का सत्त्व तक लगभग नष्ट-प्राय हो गया है. इसे केन्द्रित करने की आवश्यकता है; सफलता मिलने पर अपने आप आत्मोपलब्धि हो सके गी और वह परम-ज्योति जो मनुष्य के अन्दर सदैव प्रदीप्त है, स्पष्ट हो जायेगी. गुरु नानक भी उस ज्योति तक पहुँचना, तथा आत्म-ज्ञान के पश्चात् परम में लीन होने को अपना लक्ष्य मानते हैं. इसीलिये उनका दृष्टिकोण अन्तर्मुखी होने की आत्मोपलब्धि का सम्मान स्वीकार करता है, और इसी लिये उन्होंने नाम-स्मरण का सहज ढंग अपनाने का आदेश दिया है. गुरु नानक मतानुसार नाम-स्मरण द्वारा ही मनुष्य चित्तवृत्तियों को आत्मस्वरूप पर केन्द्रित कर सकता है.[1]

श्रुति-मार्ग व ज्योति-मार्ग

भारतीय परम्परा के अनुसार अन्तर्मुखी होने की दो मुख्य-विधियाँ हैं— श्रुतिमार्ग और ज्योतिमार्ग. सन्तों के मत, जिनमें विचार भेद हैं उनके अनुसार चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा अन्तर्मुखी होने की साधना को श्रुतिमार्ग कहते हैं. यह गुरु विहीन बौद्धिक संबल का मार्ग है. साधारण-मनुष्य के लिये इससे किसी भी स्तर तक पहुँच कर फिसल जाना सम्भव हो सकता है. लौकिक अथवा किसी प्रकार का विपरीत अनुभव उसके धार्मिक-विश्वास को डिगा सकता है. गुरु के अभाव में प्रस्तुत मार्ग की सब से बड़ी बाधा यह है कि थोड़ी सी सफलता भी साधक को उलझन के चौरा-हे में डाल कर पथ-भ्रष्ट कर सकती है, मार्ग से भटका सकती है.

गुरु के वचनानुसार नाम-जाप करते हुए अन्तर में स्थिर-ज्योतित बिन्दु पर ध्यान जमाना, उसके चिरन्तन-रूप को समझने का सदुप्रयास करना, और अन्ततः उसे आत्मसात् करना आदि ज्योति-मार्ग द्वारा अन्तर्मुखी होने और आत्म-बोध की साधना कहलाता है. अधिकतर सन्त-महात्माओं ने इसी पथ को श्रेष्ठ माना है. प्रस्तुत पद का

---

१. इसके आगे का स्वरूप पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है.

राती जोड़ हो अन्तर के अपार रूप को लखता, जब परम-ज्योति में विलीन होने के उच्चतम लक्ष्य को पा जाता है. गुरु नानक ने इस प्रकार अन्तर्मुखी होने का सीधा उपदेश कहीं नहीं दिया, परन्तु फिर भी उनकी सम्पूर्ण वाणी नाम-जाप द्वारा आन्तरिक-ज्योति प्रकट करने और परम में लीन हो जाने का विस्तार-वर्णन दे रही है. अतः गुरु नानक को भी यदि ज्योति-मार्ग के साधक आन्तरिक-सत्ता को पहचानने के सर्वोच्च परम-सन्त माना जाये, तो कोई अत्युक्ति न होगी.

सार यह कि मनुष्य का परम-लक्ष्य है ब्रह्मैक्य. उसकी प्राप्ति का साधन कोई भी क्यों न हो, सब बराबर है. वही श्रेयस्कर होगा जो लक्ष्य तक पहुँचा देगा. अतः साधन क्षणिक चीज है, और लक्ष्य परमार्थ. जिस महात्मा ने जिस साधन द्वारा पाया—वह सांख्य हो या भक्तियोग, कर्म-सिद्धान्त हो या श्रुति-ज्योति मार्ग—वही उसके लिये श्रेष्ठ हो गया. उसने उसी का गुण गाया. यही कारण है कि हमारे सम्मुख प्रत्येक साधन के गुण-दोष मौजूद हैं—परन्तु कोई कारण नहीं कि हम आम खाने की अपेक्षया पेड़ गिनने में अधिक स्वाद दिखायें. अस्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ में इसके पूर्व के अध्यायों में यद्यपि हमने ब्रह्म-प्राप्ति के अनेक प्रकार के परम्परागत साधनों का वर्णन किया है, तथापि गुरु नानक का साधन और लक्ष्य दोनों अपनी जगह उच्च और श्लाघ्य हैं. केवल "नाम-जाप" और "सुमिरन-ध्यान" करने से परम-विलीनता का भी अत्यावश्यक सिद्धान्त गुरु नानक ने प्रस्तुत किया, वह निश्चय ही अन्य महान साधकों-आचार्यों की तरह ही अनुपम था.

८

उपसंहार

[illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible])

— ८ —

अष्टम अध्याय

उपसंहार

गुरु नानक : एक समन्वयवादी विचारक

पिछले पाठों में हम गुरु नानक-काव्य के दार्शनिक-तत्वों पर विशद दृष्टि-पात कर आये हैं. वहाँ स्थान स्थान पर हमने अनुभव किया है कि गुरु नानक अपने समकालीन एवं पूर्वकालीन विचारकों के दृष्टिकोणों से प्रभावित तो हैं, परन्तु निजी मौलिकता उन्होंने कभी नहीं छोड़ी. उनकी वाणी जनता के लिये चेतावनी भी थी और प्रेरणा भी. वे सच्चे लोक-नायक थे. जब भारतीय-समाज नाना सम्प्रदायों, वर्गों और जाति-उपजातियों में बंट चुका था, शासक वर्ग जनता पर अनाधिकार अत्याचार कर रहा था, अनेक प्रकार की विचारधारायें और भक्ति-शैलियाँ पनप रही थीं, भिन्न सिद्धान्तों पर गम्भीर विवादों का बाजार गर्म था, किन्तु जनता के सम्मुख धार्मिक और आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त राजनीतिक स्थिति का रूप भयावह आतंककारी था, धर्म के नाम पर परस्पर द्वेष, वैर और संघर्ष उत्पन्न हो रहे थे— तब किसी ऐसे महापुरुष की आवश्यकता थी, जो समाज की उक्त विशृंखलता से नाना विचारों को समन्वयवादी योग-सूत्र में बान्ध सकता. गुरु नानक उस आवश्यकता की पूर्ति थे.

उनके सम्मुख वेदों, उपनिषदों और पुराणों की प्रचलित गाथायें थीं, भगवद्गीता का समन्वित (निष्काम) कर्म था, शंकराचार्य का ब्रह्मवाद था, रामानुज द्वारा प्रस्तुत सृष्टि का आस्तिक-सिद्धान्त था, वल्लभ की माधुर्य-भक्ति और कबीर की दास्य-भावना थी, योगियों-तांत्रिकों के आडम्बर भी थे और थे महात्माओं के सच्चे आध्यात्मिक अनुभव. वे स्वयं उच्च कोटि के अनुभवी महापुरुष थे, घूम-फिर कर दुनिया की आचार-पद्धतियाँ देखने के अतिरिक्त उन्होंने भीतरी जगत की विभूतियाँ पा ली थीं और उस ब्रह्म-ज्योति से स्फुरित बन चुके थे, जिसके नाम का उपदेश उन्होंने प्रत्येक प्राणी को दिया है. अब उनके सम्मुख समस्या थी, तत्कालीन जनता के नाम सन्देश को रूप देने की. प्रश्न था कि प्रचलित रूढ़ धर्मों का ही अपना लिया जाये, उसके परिवर्तन में नया कदम उठाया जाये या पुराने को ही नये विचार से पेश किया जाये? गुरु नानक ने घूम घूम कर लोक-नाड़ी को पहचाना था. वे समझते थे कि युगों से चला आता प्रचलित ब्रह्मवादी दृष्टिकोण सामान्य जनता की विचार-शक्ति से बाहर की वस्तु है. यों भी प्रस्तुत दृष्टिकोण को कभी जन-साधारण के लिये

जाना ही न गया था—केवल शास्त्रीय रूप का पाण्डित्यपूर्ण विग्रह किया जाता था, जिसे जन-साधारण समझ न पाते थे और समाज के तत्कालीन पतित स्तर के पण्डित-विद्वान अपने कुत्सित स्वार्थों से घिरे, उससे निरन्तर लाभ उठाते रहते थे. जनता उस पाण्डित्य से पीड़ित थी और ब्रह्मवाद उसके लिये गोरख-धंधा बन गया था. बल्कि यों कहना चाहिये कि प्रताड़ित जनता धीरे धीरे ज्ञान के उक्त स्वरूप से घृणा करने लगी थी और शुष्क ब्रह्मवाद के नाम से चिढ़ती थी. यही कारण था कि गुरु नानक ने अपने सन्देश को वैसे अग्राह्य शैली में ढालना अनुचित समझा. दूसरी ओर किसी परिपाटी को पूर्णतः हटा कर एक दम नवीन प्रवाह प्रस्तुत करना भी खतरे से खाली न था. युगों से जिस विचारधारा की छाप जनता के अन्तर्मन पर लग चुकी थी, उसे अकस्मात् मिटा सकना सुगम न था. जनता को ब्रह्मवाद की शुष्कता से घृणा अवश्य थी, परन्तु लोग मानने लगे थे कि इसके अतिरिक्त कोई अन्य पद्धति है ही नहीं. उक्त शुष्कता को दूर करने का एक मधुर प्रयत्न वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग द्वारा पहले भी हो चुका था. उससे जनता को कुछ प्रतिशत संतुष्टि भी मिली थी. अतः गुरु नानक ने उस प्रवाह को रोक कर नया मोड़ देने की अपेक्षा मध्यम मार्ग का अनुसरण करना ही अधिक उचित समझा. पूर्व-दृष्टिकोणों के साँचे में ही उन्होंने अपनी सुधारक-प्रणाली और ब्रह्म तथा विश्व सम्बन्धी नूतन विचारों को ढाला. ऐसा करने का उससे बड़ा लाभ यह हुआ कि नवीन विचारों की कटुता भी प्राचीन शैली की मिठास में लिपटी रहने से जनता के गले सुगमता से उतर सकी. यह गुरु नानक का एक महान प्रयोग था. डगमगाती जनता ने सम्बल को अपनी ओर बढ़ते देखा तो उसका ही स्वयं दामन थाम लिया.

अतः गुरु नानक ने जो मार्ग अपनाया, उसपर अनेक पूर्वगामी दृष्टिकोणों का प्रभाव था; तथापि उसका अपनत्व परिस्थितियों और निजी विचारधारा से परिपूर्ण था. यह ऐतिह्य भी ब्रह्मवादीय ही था, परन्तु मार्ग सहज का था. ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समन्वय किया गया था, तथा प्रथम में अद्वैतवादी रूप के पीछे अन्ध-विक्षिप्त होने की अपेक्षा गुरु के आश्रय परम-तत्त्व की जानकारी प्राप्त कर अग्रसर होने का सन्देश गुरु नानक ने दिया था. माया गुरु नानक के लिये ईश्वर की भ्रान्ति केवल भ्रम नहीं, वह यथार्थ है. "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" के अनुरूप विश्व-रचना अज्ञान का दोष न मानकर गुरु नानक उसे प्रभु की कर्तृ-शक्ति की भौतिक और वास्तविक निष्पत्ति स्वीकार करते हैं. यही कारण है कि गुरु-सिक्ख ब्रह्मवादी को

तरह मायावी रचनाओं का त्याग कर इधर-उधर मुँह छिपाता नहीं फिरता, बल्कि प्रभु के हुक्म से अस्तित्व में आने वाली इस विराट प्रकृति का सौन्दर्य-पान करता हुआ अपने ईश्वर का गुणगान करता है, जिसने ऐसा अनूप-निर्माण प्रस्तुत किया. पुनः गुरु नानक प्रकृति का आनन्द लेते हुये भी प्रकृति में लिप्त होने का आदेश नहीं देते; यह तो पदार्थ है, आध्यात्मिक-तत्त्व की खोज करने वाला उसमें फँसने को स्वीकार कैसे गा. इसकी अनुपमता से तो ईश्वरीय-अद्वितीयता के कण-मात्र का अनुमान करता है. अस्तुः, गुरु नानक का महान धार्मिक सन्देश न अद्वैतवादी ठहरता है, न ही प्रकृतिवादी. यहाँ अद्वैत और प्रकृतिवाद का समन्वय क्रमाबद्धतात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है. कारण है जनता की तत्कालीन माँग. सामान्य जनता विश्व की प्रत्येक वस्तु को देखती, उससे हानि-लाभ उठाती और अपने अनेक कौतूहल अनुभवों से पदार्थ को रूप-दृष्टि का सत्य समझ रही थी. ऐसे में इस अद्भुत प्रसार को रहस्यात्मक ढंग से जब धर्माचार्यों के जोग और निपुणों का मत कहा जाता तो भ्रम-आवरण बढ़ने में आ जाते. उनके दैनिक-अनुभवों और उन्हें बताये जाने वाले सिद्धान्तों में आकाश-पाताल का अन्तर दीख पड़ता—वे क्या मानें और क्या न मानें? दूसरी ओर पदार्थवादी थे, जो दुनिया के अस्तित्व के पीछे किसी परम-तत्त्व का हाथ मानने की अपेक्षा ऐन्द्रिय भौतानन्द-प्राप्ति से उसकी कृतार्थता किया चाहते थे. परन्तु समय समय पर अनहोनी होते देख लोक-समाज घबरा उठता और उसे किसी पराभौतिक शक्ति की स्वीकृति अनिवार्य सी जान पड़ती. ऐसे में गुरु नानक ने शंकितयुक्त विमूढ़ जनता को सम्बल दिया. पराभौतिक और भौतिक, दोनों की सत्यता स्वीकार की, पराभौतिक को ध्येयरूप और भौतिक को पथ बताया. उनके लिये भौतिक पराभौतिक की रचना है, इसलिये कोई रहस्य या भ्रम न होकर निर्माता की तरह ही सत्य है. हाँ, प्राणी का लक्ष्य रचना नहीं रचयिता है, और उस तक पहुँचने के लिये कला का स्वरूप-सौन्दर्य कलाकार के प्रति आकर्षण को उद्दीप्त करता है. इसी दृष्टिकोण के अनुसार गुरुभक्त विश्व की किसी वस्तु से घृणा नहीं करता, वह लोक-प्रेमी होजाता है और प्रकृति के कण कण में प्रभु को विद्यमान देखता है. प्रस्तुत समन्वयवादी विचारधारा गुरु नानक की महत्त्वपूर्ण देन है, जो तत्कालीन जनता के लिये डूबते का सहारा बन गई.

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दु-धर्म का प्रतिनिधि और मान्यता प्राप्त धर्म-ग्रंथ है. गुरु नानक के समकाल में जनता में, मुट्ठी-भर पंडितों के अतिरिक्त, संस्कृत का प्रचार ना के समान ही था. लोग गीता के अनुपम सन्देश को भली प्रकार समझ न पाते थे.

पाण्डित्य-जन्य लोगों को कुमार्ग में निज-स्वार्थ की ओर मोड़ देते थे. परिणाम यह था कि गीता में दुहराये गये, निष्काम और सकाम कर्म, तथा गीता के निवृत्ति और प्रवृत्ति-प्रधान अंगों को समझने में जन-साधारण के लिये यह गहन और क्लिष्ट बनी रही. उन्हें उलझाये रखने में भी पण्डितों का योगदान था. जनसाधारण के मन यही सवाल है: निष्काम का सम्बन्ध निवृत्ति से है या प्रवृत्ति से, यदि प्रवृत्ति से है तो निष्काम क्योंकर हुआ? और यदि निवृत्ति है तो कर्म का सम्बन्ध क्योंकर सम्भव हुआ? आदि प्रश्न जन-साधारण के व्यापक प्रश्न-चिह्न बने थे. कोई सहज ढंग से अपने में इस स्पष्ट विरोधाभास को समझने के लिये तैयार न था. तत्कालीन जनता की प्रस्तुत आवश्यकता-पूर्ति गुरु नानक ने की. ठीक है कि कर्म [illegible] करना ही होगा, परन्तु उसका निष्काम-स्वरूप है व्यावहारिक और अमल में. प्रत्येक कर्म को अन्तर्निहित कामना देकर उसकी ही ओर बढ़ाओ कि वह प्रभु के [illegible]-हेतु है. ऐसा करने से लोक में प्रवृत्त रहने पर भी सात्विक [illegible] से निवृत्त कहलायेगा. उसकी निवृत्ति प्रवृत्ति के आश्रय आयेगी और उसका निष्काम-कर्म, सकाम-भावना से छिपेगा. गीता में समझाये इस पक्ष-भाव को गुरु नानक ने सरलतम ढंग से जनता के सम्मुख रखा. "गुरु के आश्रय रहकर [illegible] का अन्त करो, नाम में चित्त लगाओ, और कुल में [illegible] विश्वास करा कर जीविका-[illegible] सदैव रहो". यही था दुःखी जनता के नाम गुरु नानक का उपदेश. इसमें जीविका-[illegible] प्रवृत्ति है तो कुलानुसार रहना निवृत्ति; गुरु के आश्रय रहने का अर्थ निष्काम कर्म का [illegible] है तो नाम में चित्त रमाने से प्रभु-एकान्तता की इच्छा, [illegible]. पण्डितों-पाण्डितों के बनावटी पटाटोप में खोकर जाता जन-मानस [illegible] ज्ञान-प्रतीक के अपूर्व प्रकाश से आलोकित हो उठा, और गुरु नानक [illegible] के महत्व को पहचानने लगा.

इसी रूप से [illegible] भक्ति और ज्ञान में [illegible] के [illegible] भी गुरु नानक-[illegible] में [illegible] मिला. उनका विश्वास था कि ज्ञान और भक्ति, दोनों एक दूसरे के बगैर अपूर्ण हैं. अध्यात्म-[illegible] की पूर्णता दोनों के [illegible] में है. [illegible]-कोष[1] से देखा जाये तो ज्ञान [illegible] (प्रेम और श्रद्धा) [illegible] है. और जिस प्रकार [illegible] के बिना [illegible] में [illegible] नहीं [illegible], वैसे ही ज्ञान और [illegible] के एक-दूसरे से

---

१. [illegible] से [illegible] हैं, [illegible] प्राकृतिक [illegible] से.

हुआ होने पर आनुभूतिक-अनुभूति की भी आवश्यकता नहीं रहती. सन्त का स्वरूप-बोधत्व ज्ञान है और उसकी प्राप्ति अनुभूति-अन्वेषण आदि से होती है. यही कारण है कि गुरु नानक-आनुभूतिक ज्ञान के प्रतीक रूप में गुरु की अपेक्षा स्वीकार करता है और नाम-नाम में सत्य की परमात्मा देखता है. सत्य के अर्थ में नाम की महत्ता आदि पदावलियों में स्वीकार की है. सिद्धान्त-पदों का तो कहना ही क्या, गुरु-ग्रन्थ-साहिब के अतिरिक्त, कई मुसलमानों ने भी, ईश्वर राम से नाम [illegible] कहकर नाम की महत्ता का गान किया है. अतः गुरु-कृपा द्वारा परम-तत्त्व की पहचान(ज्ञान), नाम-स्मरण द्वारा नामों में विलीनता की साधना(भक्ति), दोनों मिलकर ही परम-आध्यात्मिकता को सम्भव बनाते हैं. अपना-विलीन आत्मिकारी विलीनता का आरम्भ नहीं हो सकती और न ही बिना वास्तविकता को पहचाने उसकी साधना सफल हो पायेगी. इसीलिये गुरु नानक-मत में दोनों को बराबर महत्त्व दिया गया है.

युगः गुरु नानक का जन्म-काल मुख्यतः दो बड़े धर्मों के द्वन्द्व का युग था. मुसलमानों ने [illegible] राजपूतों को भी एक युद्ध में हरा दिया और मुसलमान-धर्म भारत में प्रवेश कर चुका था. भारत के पुराने हिन्दू-धर्म पर बलपूर्वक अत्याचार किया जा रहा था और हो रहा था. [illegible] और [illegible] से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था. हिन्दू-धर्म में अनेक बाह्य आडम्बर हो चुके थे, जिनका [illegible] हंसी उड़ाते थे और [illegible] पाखण्ड [illegible] थे. हिन्दुओं का बहु-ईश्वरवाद, मुसलमानों के एकेश्वरवाद के सम्मुख [illegible] हो रहा था. जातीय भेद-भाव से दुखी हिन्दुओं को मुसलमानों की समानता [illegible] रही थी. [illegible] देवी-देवताओं के पूजकों का परस्पर बैर-विरोध मुसलमान-धर्म के [illegible] रूप को [illegible] स्थापित करने में अतीव सहायक था. ऐसे में एक ऐसे नर-पुंगव की आवश्यकता थी, जो दोनों धर्मों की [illegible] करते हुए नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन का सुधार करता. जो हिन्दू-धर्म की रूढ़ि-विकृतियों को तोड़ कर उसके महत्त्व को पुनर्जीवित कर सकता. और गुरु नानक ऐसे ही [illegible] महापुरुष के रूप में अवतरित हुए. उन्होंने समाज के लौकिक और आध्यात्मिक, दोनों पक्षों को भरपूर सुधार कर पारस्परिक अनुकूल एकेश्वरवाद की स्थापना की. जाति-पाँति के भेदभाव का तिरस्कार भी किया. ऐसा करने का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मुसलमान-धर्म की ओर आकृष्ट होते हुए हिन्दू जनता गुरु नानक के सुधारवादी मार्ग में अपने बढ़ते हुए आन्तरिक रूप [illegible]. [illegible] हुई [illegible] हो गई.

उपर्युक्त अनुश्रुतियों से स्पष्ट है कि गुरु नानक ने अपनी पूर्व-प्रचलित विचार-धाराओं का केवल खण्डन ही नहीं किया, बल्कि उनमें निजी-नवीनता और स्वच्छन्दता को चिर-नवीन बनाये रखा. यदि यह कहा जाये कि उन्होंने कुरान के "नाम-स्मरण" तथा "कुरान में विश्वास" से जो सिद्धान्त ग्रहण किये, वे उनकी वाणियों के अनुसार अपने में पूर्णत: मूल थे, जिनमें गुरु नानक का निजत्व झलकता था, और इससे भी यह सिद्ध होता है कि गुरु नानक भी [illegible] मतानुयायी न थे, वे तो [illegible] युग पुरुष थे, जो [illegible] विषय का खण्डन करने में सदैव तत्पर दिखलाई पड़ते हैं. किन्तु विषय की पुष्टि करने के लिये उन्हें अपने ही समाज-सुधार का सहारा पड़ा, अत: उनकी वाणी में तत्कालीन-कुप्रवृत्तियों का क्रान्तिकारिक रूप प्रकट हो जाना स्वाभाविक ही था. जनश्रुतियों के अनुसार उन्होंने कुपथ पर चलने वालों का खण्डन भी किया, उन्हें सही मार्ग भी दिखाया और आत्म-दीपक से वास्तविकता के दर्शन भी करा दिये. कुपथ-खण्डन करते हुये वे अवांछनीयता की त्रुटियाँ ऐसी बातों से स्पष्ट करते हैं—

जे कोर सूतकु (पाखण्डता-रोग) मंनीऐ, सब तै सूतकु होइ.
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ, जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ.
पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ, सूतकु किउ करि राखीऐ सूतकु पवै रसोइ.
नानक सूतकु एव न उतरै, गिआनु उतारे धोइ.[१]

इसी प्रकार कुपथ मार्ग पर चलने वाले वेष-धारी नाथों का पथ-प्रदर्शन करते हुये बताते हैं—

मुंदा संतोखु, सरम पतु, झोली धिआन की करहि बिभूति.
खिंथा कालु कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति.
आई पंथी सगल जमाती, मनि जीतै जगु जीतु.
आदेसु तिसै आदेसु. आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु.[२]

और स्थापित विचार-धारा द्वारा पथभ्रष्टता को और भी स्पष्ट करते हैं—

[illegible] नाचु है. [illegible] है.
गुरु [illegible] पूरब [illegible].
[illegible] नाचु [illegible].
[illegible], नाचु [illegible].
[illegible] नाचु [illegible]...
[illegible] रोईऐ.[३]

१. [illegible], पृ० [illegible]. २. जपुजी [illegible]. ३. [illegible], पृ० [illegible].

इस प्रकार गुरु नानक-वाणी से स्पष्ट प्रकट है कि वे महानात्मा विश्व की डूबती नौका को मझधार से पार लगाने वाली महद्-विभूति थे. अपने जीवों की पुकार सुन कर स्वयं अकालपुरुष को गुरुनानक रूप में लोक में आना पड़ा था. इसीलिये उन्होंने लोक-प्रचलित भ्रमवादी पद्धतियों के विरुद्ध "गुरमत-पंथ" का नैतिक सहज रूप प्रस्तुत किया था, जिसकी प्राप्ति में किसी बौद्धिक-ज्ञान की पूर्ण अपेक्षिता न थी, केवल श्रद्धा-भाव से जीव के मझधार तिरने का मार्ग आयोजित था. यही गुरु नानक की विशेष विचारधारा थी. परम-भक्त गुरु-सिख भाई गुरदास ने अपनी प्रथम "वार" में गुरु नानक आगमन का निम्न-चित्र प्रस्तुत किया है, जिससे स्पष्ट है कि गुरु नानक अवतार-रूप में सिद्ध अपने जीवों के स्वयं उद्धारक ही नहीं बल्कि स्वयं परम-पुरुष थे, और उनकी वाणी युगों की पथ-प्रदर्शक थी.—

" मई किलानि जगत बिच, चार बरन आश्रम उपाये.
दस नाम संन्यासीआं, जोगी बारह पंथ चलाये.
जंगम अते सरेवड़े, दगे दिगम्बर वाद कराये.
ब्राह्मण बहु परकार कर, शास्तर बेद पुराण लड़ाये.
षट दरशन बहु वैर कर, नाल छतीस पाखंड रलाये.
तंत मंत रसाइणा, करामात कालख लपटाये.
इकस ते बहु रूप कर, रूप कुरूपी घणे दिखाये. कलजुग अंदर भरम भुलाये.

* * * * * * *

चार वरन चार मज़हबां[1], जग विच हिंदू मुसलमाने.
खुदी, बखीली[3], तकब्बरी[4], खिंचोतान[5] करे न धिङाणे.[6]
गंग बनारस हिन्दूआं, मक्का काबा मुसलमाणे.
सुन्नत मुसलमान दी, तिलक जंञू हिन्दू लोभाणे.
राम रहीम कहाइंदे, इक नाम दुइ राह भुलाणे.
बेद कतेब भुलाइके, मोहे लालच दुनी सैताणे.
सच्च किनारे रहि गया, खहि मरदे बाह्मण मउलाणे. सिरों न मिटे आवण जाणे.
सुणी पुकार दातार प्रभु, गुरु नानक जग माहिं पठाया.
चरन धोइ रहरास[7] कर, चरणामृत सिक्खां पीलाया.
पारब्रह्म पूरण ब्रह्म, कलजुग अंदर इक दिखाया................

---

१. मज़हबा-सम्प्रदाय, २.अकड़ी, लड़ाई, लालची, ईर्षा. ३.अपना या मन की कृपणता.
४. अपने आप को सर्वोच्च समझना. ५. अपनी बात के प्रति हठ. ६.जोरावरी.
७. जीवन-भाँति.

प्रस्तुत विचार-धारा : धर्म अथवा दर्शन की अपेक्षा जीवन-चर्या का प्रसंग...

गुरु नानक मत की सरलता तथा व्यावहारिकता उसे किसी संकीर्ण परिधि में सीमित होने से बचाती है. प्रस्तुत विचारधारा में कहीं यह प्रमाणित नहीं होता कि गुरु नानक किसी नये धर्म या सम्प्रदाय की स्थापना के इच्छुक थे. सच तो यह है कि गुरु नानक तथा आगे आने वाली आठ अन्य पातशाहियों ने किसी पृथक्-धर्म की नींव नहीं रखी. केवल दशम पातशाही श्री गुरु गोविन्द सिंह ने परिस्थितियों के अनुसार युद्ध-भूमि में अपनों को अधिक प्रेरणा देने और परस्पर पहचान की आवश्यकता अनुभव करते हुए खालसा-पंथ की नींव रखी; जो कि अब सिक्ख-धर्म कहा जाता है. अन्यथा गुरु तेग बहादुर तक इस प्रकार की पृथकता की अपेक्षा ही न थी, सम्प्रदाय स्थापना का प्रश्न ही नहीं उठता. पुनः गुरु नानक तो समन्वयवादी थे. वे हिन्दु या मुसलमान न थे, वे इन्सान थे, जो सबके साथी होते हैं. उन्हें किसी से घृणा न थी, वे सबको "खुदा" का अंश कहते और सबसे बराबर प्रेम रखते थे. वे तो घृणा की प्रवृत्ति का अंत करने आये थे, फिर पक्ष-विपक्ष की ओर न देखकर सुलह के प्रसारक थे, उन्होंने जनता को सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति का पथ दिखाया. वे लोक-नायक थे, उन्होंने जनता में प्रचलित भावों को पहचाना, तथा उनको धार्मिक-भूमि में व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिकता को पकड़ा. इसलिए उन्होंने विचारों की निर्बोधता के साँचे में ढालकर वाणी रूप से पुनः जनता के सम्मुख पेश किया. उनमें से अधिकतर अधीरता के गर्द-गुबार को साफ कर उदारता और सत्य की चमक पैदा की. गुरु नानक ने लोगों को अपनी जाति, जाति या सम्प्रदाय छोड़कर किसी नये धर्म, जाति या सम्प्रदाय प्रवेश की प्रेरणा कभी नहीं दी. उनका उपदेश समान था. हिन्दु हो या मुसलिम, कोई भी सुमति के पथ पर चलता हुआ खुदा को पा सकता था. यही कारण था कि गुरु नानक के जीवन-काल में भी सुमत का विरोध किसी सम्प्रदाय ने नहीं किया—कोई इक्के-दुक्के फकीरों ने यदि कहीं विरोध किया भी तो वह विचार-भिन्नता के कारण नहीं, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने या ईर्ष्या के कारण किया. इससे स्पष्ट है कि गुरु नानक किसी नये धर्म के संस्थापक न थे, ना ही उन्हें ऐसे सम्प्रदाय-स्थापन में दिलचस्पी ही था. वे तो लोक से परे के जीव थे, उन्हें सांसारिक धर्मों और पंथों से क्या लेना?

गुरु नानक वाणी में प्रचलित पाखण्डों का विरोध अवश्य कहीं कहीं मिलता है, जो कि गुरु नानक जैसे महान सुधारक और लोक-नायक की वाणी का अधिकार है.

दूसरी ओर उन्होंने किसी धर्म-सम्प्रदाय के विरुद्ध कुछ नहीं कहा, बल्कि नवीन धर्म-स्थापना के लिये यह आवश्यक भी माना जा सकता है. बल्कि उन्होंने अन्य धर्म-सम्प्रदायों की श्रद्धा-युक्त मान्यताओं का आश्रय ले स्थान स्थान पर अपने उपदेश को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का अवसर भी नहीं छोड़ा. इससे स्पष्ट है कि उनमें धर्म-संस्थापक बनने की बात न थी. यदि ऐसा होता तो वे अवश्य हिन्दु-मुसलमान अथवा, या किसी अन्य मान्यता प्राप्त सम्प्रदाय का विरोध करते तथा उनकी धार्मि-मान्यताओं का उपहास कर [कटा हुआ] उन्हें मिथ्या प्रमाणित करने का उद्यम करते—जैसा कि पीछे भारत में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने किया.

पुनः नवाने या सम्प्रदाय के प्रवर्तन के लिये जिस प्रकार के नवीन विचारों क्रान्तिकारी विचार-पद्धतियों की आवश्यकता रहती है, वे गुरु नानक वाणी में उपलब्ध नहीं. पीछे सिख महापुरुष को हम क्रान्तिकारी प्रमाणित कर चुके हैं, यह न तब ही किसी नये ढंग से विचार को जन्म देकर अपनी क्रान्त्यात्मक प्रवृत्ति पर पुरस्कार नहीं पाता था. इन्द्रिय-सुख से मन को खींच कर प्रभु का भजन करो, हुक्म (ईश्वरेच्छा) के अनुकूल नतमस्तक होओ, नाम-स्मरण द्वारा प्रभु-लीनता प्राप्त करो, बस इतना ही तो है गुरुमत. यही गुरु नानक का सिद्धांत है. ये सब प्राचीन आर्यों की परम्परागत बातें हैं, गुरु नानक की महानता तो उन्हें इस प्रकार सरल बना जन-रूप में प्रस्तुत करने और उसी जन-भाव में भक्ति-भावना के परम-आनन्द की खोज निकालने में है. इन बातों को आचार्यों ने गहन-गंभीर रहस्य बना बना कर प्रकट किया था, उनका महत्व बनाये रखने के लिये, वास्तविकता कम और आडम्बर अधिक, दिखाये थे. ब्रह्मज्ञान को गुप्त बनाये रखने के लिये आध्यात्मिक-पथ पर अग्रसर होने में अनेक कठिनाइयों की योजना की गई थी. गुरु सच्चे जन-नायक थे. उन्होंने जनता को इन आडम्बरों और पाखण्डों से पीड़ित देख, कुण्ठित पूर्ण स्थिति से निकल दिये गये रहस्यों और अनुचित भेदों के ऊपर से भी पर्दा उठा दिया. अध्यात्म-साधना—आत्मानुभव—को गुरु नानक ने जन-जागृति में सामान्य जन-भाव के रूप में बदल दिया. इसके पीछे सीधी बात में ही गम्भीर बात कह दी. तीर्थ, पूजा-उपासना, तप, योग, शारीरिक-पीड़ा द्वारा मनोनिग्रह, व्रत, यज्ञ, होम, दान, आदि आडम्बरों की आवश्यकता उन्होंने व्यर्थ ठहरा दी. इस प्रकार गुरु नानक ने प्राचीन विचारों की मूल-भावना की अभिव्यक्ति कर गुरुमत की नींव डाली. गुरुमत की प्रकृति, प्रयत्न, जीवन, लक्ष्य और उद्देश्य, कोई भी किसी नये धर्म की स्थापना का द्योतक नहीं. प्रस्तुत प्रकार तो [illegible]—

मानन्द के लिये थी, और उससे नवीनतम सम्प्रदाय स्थापित की थी.[1]

गुरु नानक किसी विशेष दार्शनिक-सम्प्रदाय के प्रणेता भी नहीं कहे जा सकते. दर्शन, मुख्यतः पराभौतिक विषयों के अध्ययन, चिन्तन और क्रमबद्ध अनुशीलन को कहते हैं. गुरु नानक के सम्पूर्ण काव्य में कहीं इन तीनों गुणों का समान प्रतिपादन उपलब्ध नहीं. विश्वास और श्रद्धा पर आधारित भक्ति उपासना-पद्धति में तर्क की आवश्यकता रहती ही नहीं जा सकती. प्रभु की उपास्यता के सम्बन्ध में तर्क पेश करना नास्तिकों का काम है, गुरु नानक जैसे उपदेशक महापुरुष की वाणी का तो आरम्भ ही '१ ओं सतिनाम, करता पुरखु............आदि से होता है, अर्थात् उनकी विचारधारा का विकास प्रभु की सत्ता में अटल विश्वास स्थापित कर लेने के उपरान्त होता है. क्रमबद्धता का गुण भी किसी सुधारक और उपदेशक की वाणी में सम्भव नहीं होता. घूमते फिरते जहाँ भी उन्हें कोई पाखण्ड दिखाई दिया, उन्होंने वहीं उसे टोका; जहाँ किसी को जैसा देखा, वहीं भ्रम-निवारिणी वाणी फूट उठी; जैसी परिस्थिति प्रस्तुत हुई, वैसा उपदेश प्रदान किया गया. ऐसे में विचार-सरणी का सुसंगत रहना भी असम्भव होता. अतः उनकी आध्यात्मिक-विचारधारा को किसी विशिष्ट दार्शनिक-पद्धति के रूप में स्वीकार करने में हमें संकोच है. तथापि हम स्वीकार करते हैं कि गुरु नानक पर परम्परागत-संस्कारों का निरन्तर प्रभाव रहने के कारण, सदाचारी जीवन बिताने, एक प्रभु में अडिग विश्वास रखने, नाम-जाप करते हुए नाम में विलीन होने आदि के महत्व उपदेशों के अतिरिक्त, वे अपने काव्य में उपनिषदों में प्रयुक्त दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं. ब्रह्म, जीव और माया जैसे अतीव महत्वपूर्ण तत्वों का उल्लेख प्रायः हुआ ही है. अपने ढंग से इन तत्वों की व्याख्या और परस्पर सम्बन्ध भी गुरु नानक काव्य में उपलब्ध है.[2]

---

१. आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो तथाकथित 'नानक-उदासी-पंथ' का नाम ले लेकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि गुरु नानक ने उक्त सम्प्रदाय की नींव रखी. परन्तु वे पथ-भ्रष्ट हैं. यह नानक-उदासी पंथ उदासी-सम्प्रदाय का भेद भी है, जिसके प्रणेता गुरु नानक नहीं, उनके पुत्र श्रीचन्द थे. पंथ की स्थापना ही गुरु नानक की इच्छा के विरुद्ध थी— क्योंकि गुरु नानक का उपदेश गृहस्थाश्रम में रहते हुए हरिनाम-स्मरण की प्रेरणा देता है, जबकि उदासी-सम्प्रदाय के साधु और साधक घर-बार त्यागी होते हैं. गुरु नानक एकेश्वरवाद के समर्थक थे और प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी की भक्ति को निपट अधार्मिक मानते थे, जबकि, उदासी सम्प्रदायों के मन्दिरों या गुरुद्वारों में हरि-भजन के अतिरिक्त अन्य अनेक देवी देवताओं की पूजा का भी विधान है. पुनः श्रीचन्द ने अपने पिता गुरु नानक से रूठ होकर उक्त सम्प्रदाय चलाया था. अतः इस के नाम में 'नानक-उदासी' जुड़ गये हों भले ही, गुरु नानक का इस से दूर का भी वास्ता न था.　　२. ऐसे ही दार्शनिक तत्वों की व्याख्या प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय है.

परन्तु इन महान पारलौकिक-आदर्शों का मेल तब ही सिद्ध होता है जब क्रियात्मक-प्र प्रतिपादित सिद्धान्त अपनी जन्मस्थिति से ऊपर उठता है, जैसा गुरु नानक जैसे परम-सन्त और महापुरुष के सन्देश से अपेक्षित ही न था. गुरु नानक का धर्म कहने का नहीं, करने का था, अतः वे जो भी कहते थे, अनुभव से कहते थे; विवेक या तर्क से नहीं. वस्तुतः, गुरु नानक की व्यावहारिकता-विचारधारा से दूर करना, उनके प्रति अन्याय का परिचय देने से कुछ भी अधिक नहीं.

वास्तव में गुरु नानक-विचारधारा कोई सैद्धान्तिक-विषय नहीं, जबकि भारतीय-परम्परा में प्रायः सैद्धान्तिक हो रहा है. उनके विचार व्यावहारिक है-गुरु साहिब से केवल उतनी ही अपेक्षा रखी जाती है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-पथ बता दें. गुरु नानक-वाणी की प्रत्येक पंक्ति जीवन का सन्देश सुनाती है, जीवन की उन्नति का चित्रण करती रहती है या लौकिक-आदर्शों की ओर प्रेरित करती हुई आध्यात्मिक-उत्थान को लक्ष्य बनाती है. गुरुमत में, प्रथम आक्रमण मन पर किया है; जिसके केन्द्रित हो जाने से मनुष्य का सारा दुःख कष्टमूलक नष्ट होता है. मन के लिए ही 'स्वाचार-सीकरण' और गुरु की सीख की व्याख्या की गई है; यहीं से गुरु नानक धर्म का व्यावहारिक-रूप आरम्भ होता है और यहीं से शुभ जीवन-यापन का श्रीगणेश होता है. मन अहम् के नष्ट हो जाने पर निश्चित रूप नाम में स्थिर लगाना अपेक्षित है. इसमें प्राचीन उपासना और कर्मकाण्डों के समान गुरु साहिब की मान्यता नहीं. यह भी कहीं स्वीकार नहीं किया गया कि नाम जपने के लिये शुद्ध वातावरण, शुभ तिथि अथवा स्नानादि की कोई ज़रूरत है. नाम तो स्वयं शुद्धिकरण मन्त्र है, वह करोड़ों तीर्थों का तीर्थ है, जिसके जपने और ध्यान करने वाला इस भवसागर से पार हो जाता है. नाम-स्मरण में किसी पुरातन ढंग की किसी बाह्य क्रिया की भी आवश्यकता नहीं. केवल गुरु मिलन की देर है, किसी समय या स्थान पर, सोते, जागते, उठते-बैठते, सोचते या करते हुए चित्त को नाम में लगाये रखा जा सकता है. कितना सहज ढंग है, आनन्द और सरल जीवन बिताने के साथ साथ इसमें आप ही मुक्ति का साधन बन जाता है—

> नानक सतिगुरु भेटिऐ पूरी होवै जुगति।
> हसंदिआ, खेलंदिआ, पैनंदिआ, खावंदिआ विचे होवै मुकति।[१]

नाम में चित्त लगाने के लिए किसी प्रकार के स्थान, आसन, योग या अष्टाङ्ग (...) की भी आवश्यकता नहीं. जीवन में हरि-भजन करो, सांसारिक-वस्तुओं का भी भोग करो और प्रभु की इच्छानुसार प्राप्त सुख-दुःख को सहज स्वीकार करो.

१. गुरुमत निर्णय, भाई जोधसिंह

नहीं पुनर्जन्म का बुरी चीज़ है. गुरु नानक मतानुसार प्राणी को मुक्ति के पीछे भागने की भी कोई आवश्यकता नहीं, नाम में चित्त रमाने का स्वाभाविक परिणाम है जीवन-मुक्ति; अर्थात् जीव का शारीरिक-बन्धनों के धरातल-स्तर से ऊपर उठ जाना. प्रस्तुत अवस्था आध्यात्मिक पराकाष्ठा है, तो भी इसकी खोज हेतु कोई गहन-शर्त गुरु नानक की ओर से नहीं लगाई गई. हुकम में बन्धी इस विराट सृष्टि का आनन्द उठाना और प्रभु-स्मरण करना, बस गुरु नानक किसी प्राणी से इतनी ही अपेक्षा रखते हैं, इसी में अन्तिम-लक्ष्य "प्रभु में विलीनता" का उदय होता है, तथा जीव, साधारण गृहस्थाश्रम में रहता हुआ वानप्रस्थ और संन्यास के लक्ष्यों से भी अधिक उद्देश्यों को प्राप्त होता है. ऐसे में यदि यह कहा जाये कि गुरु नानक विचारधारा कोई विशेष धर्म नहीं और न कोई गहन दर्शन ही ठहरता है, बल्कि उन्नत और आध्यात्मिक जीवन-यापन का एक ढंग है, तो कोई अत्युक्ति न होगी.

गुरु नानक और मानववाद

साधारणतः धार्मिक पचड़ों से इतर शुद्ध सात्विकता से परिपूर्ण हो स्नेह, सहानुभूति और प्रेरणा के सहारे विश्व-बन्धुत्व का जो प्रसाद बाँटा किया जाता है, उसी को मानववाद कहा जाना चाहिये. विशुद्ध-मानवता को जातीय, सांस्कृतिक, तथा राजनीतिक सीमाओं से परे मानुषिक-सम्बन्धों के रूप से देखने के सिद्धान्त का नाम होना चाहिये मानववाद; परन्तु साम्प्रदायिक धारणायें इसे अर्थ को सीमाओं से इतना आबद्ध करती रही हैं, कि पराभौतिक-विवादों और "वासुदेव कुटुम्बकम्" की व्यापक भावना को इसमें कोई स्थान ही नहीं रह गया. पाश्चात्य दृष्टिकोण से मानववाद ~~योरुप~~ को मध्यकालीन धार्मिक-कुव्यवस्था और प्राचीन-आस्थाओं के गलत अर्थ लगाकर पादरियों द्वारा होने वाली शोषण-वृत्ति के विरुद्ध सत्रहवीं सदी में उदित एक क्रान्ति थी. इतिहास ने इसे रेनेसाँ (पुनर्जागरण) कहा है. उस समय भारत की परिस्थिति भी योरुप से किसी दशा में अच्छी न थी. सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखण्डों का सामना भारतीयों को भी उसी वेग से करना पड़ रहा था, जिस वेग योरोपियनों को. ऐसी अवस्था में दमित मानव-हृदय का कभी भी विद्रोह कर उठना स्वाभाविक ही था. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में स्पष्ट लिखा गया है कि यह आन्दोलन पण्डिताऊपन और धार्मिक-दबाव के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति था.[1] इस क्रान्ति में मनुष्य की आवाज़ थी, ~~जो अपने~~

जो अपने जीवन के अधिकारों की माँग कर रही थी. १५वीं शताब्दी के तीसरे चरण में पहली आवाज़ गुरु नानक का कंठ-स्वर बनी. मध्यकाल में इस आवाज़ को बहुतों ने उठाया था, अन्य कवियों ने दोहराया भी. उस समय का सम्पूर्ण सन्त परिवार तथा मानसकार तुलसीदास भी इसी वर्ग के विद्रोही थे. अभिप्राय यह कि उक्त क्रांति तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर आश्रित थी, अतः उसका उदय शास्त्रीय दृष्टि से योरुप में स्वीकार किया जाये, या भारत में, हमारे कथन पर कोई आघात नहीं लगता.

पुनः मानववाद का स्वरूप मनुष्यता की भलाई में निहित है, यही कारण है कि नीति-शास्त्र, समाज-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र ने एक साथ इस सिद्धान्त को अपनाया है. फलतः, मनुष्यता की भौतिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति इस का लक्ष्य है. समाज के छल, कपट और दम्भ का अन्त कर शान्ति और सुरक्षा का राज्य स्थापित करना मानवता है, अतः मानव-वाद का पोषण/मानव के सांस्कृतिक और चारित्रिक मूल्यों का विकास, कुरीतियों से दूषित समाज के कष्टों का अन्त, बेईमानी और शोषण के हाथों पीड़ित मनुष्यता को सुख और जीवन में व्यवहार एवं आनन्द का सही और तर्कशील मूल्यांकन मानववाद की विशेषतायें हैं. सिद्धान्त में तर्क की प्रधानता अनिवार्य है, परन्तु प्राचीन विचारों को आमूल नष्ट करने की अपेक्षा उन शास्त्रीय उपलब्धियों को परखने हेतु नया दृष्टिकोण अपनाया गया है. पाखण्डों और आडम्बरयुक्त प्रवृत्तियों का खण्डन करते हुये प्राचीन ऋषियों-मुनियों की रचनाओं के अवलोकन की प्रेरणा दी गई है. पश्चिमी मानववादी ईरास्मस अपनी रचना "मोरिया" की भूमिका में लिखते हैं, "हम पुराने

---

1. This movement was essentially a revolt against intellectual and especially ecclesiastical authority.
Ency. Britanica, Vol XI. 'Humanism'

2. 'We kiss theold shoes and dirty handkercheifs of the saints and we neglect their books which are the more holy and valuable relics. We look up their shirts and clothes in jewelled cabinets; but as to their writings on which they spent so much pains and which are still extant for our benefits , we abondon them to mouldiness and virmin.
Quoted in Ency. of Religion and Ethics Vol.VI. (humanism)

महात्माओं के गन्दे स्थानों और जूतों का चुम्बन कर अपने को धन्य मानते हैं, परन्तु उनकी अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण पावन-स्मृतियों के रूप में पड़ी उनकी कृतियों के प्रति उदासीन हैं. हम उनकी पोथियों को रत्न-जटित किवाड़ों में सम्भालते हैं, परन्तु उनके द्वारा पर्याप्त कष्ट उठाकर जो ज्ञान-भण्डार हमारे लिये छोड़ा गया है, और अब भी विद्यमान है, दिखावा या पुरातत्व के रूप में उसकी अवहेलना करते हैं. समाज में तर्क को इतनी प्रधानता दी जाने लगी कि व्यवहार-वाद जैसे उपयोगितावाद के बीज अंकुरित हो उठे. धीरे धीरे यूनानी दार्शनिक प्रोटागोरस का सिद्धान्त "मनुष्य ही सबका मानदण्ड है" (मैन इज़ दि मैयर ऑफ ऑल थिंग्ज़) पुनः चमकने लगा. समाज के परम्परागत मूल्यों का अन्त होने लगा. तर्क का अतिक्रमण मानव की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक उद्भावनाओं पर कुठार चलाने लगा. परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी मानववाद लगभग नास्तिकता के पंक में धंसा हुआ है.

गुरु नानक का सम्बन्ध इससे जोड़ने से पूर्व मैं भारतीय पृष्ठभूमि पर इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि मध्यकालीन परिस्थितियाँ समान होते हुये भी सुधारों और विद्रोह में पूर्व-पश्चिम का अन्तर बराबर बना रहा. जहाँ पश्चिम में मानव-वाद का विकास नास्तिकता की ओर, और अन्त में तर्कशीलता के आश्रय मनुष्य को ही मनुष्य का लक्ष्य मान कर केवल उपयोगितावाद (यूटिलिटेरियनिज़्म) में समाने की चेष्टा करने लगा; वहाँ भारत में उक्त सुधार-आन्दोलन (इसे कुछ भी नाम दिया जाये—मानववाद) आडम्बर और पाखण्ड से बाहर सच्ची-आस्तिकता की ओर बढ़ा. यहाँ "मनुष्य को सर्वस्व का मानदण्ड" न मानकर "मनुष्य मनुष्य के लिये है" का सिद्धान्त अपनाया गया. तर्क की अपेक्षा "आस्तिकता में विश्वास" तथा "बुराई से बचाव" मानववाद की मूलभूत धारणा बनी. अतः स्पष्ट ही हम मानववाद को दो भिन्न रूपों—आस्तिक और नास्तिक—में देखते हैं. गुरु नानक का सम्बन्ध शुद्ध पूर्वीय आस्तिक मानववाद से ही जोड़ा जा सकता है.

गुरु नानक परम-आध्यात्मिकता के प्रचारक थे, मानववादियों से उनका कोई विशेष सम्बन्ध न था. उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों में परिस्थिति-वश जो सामाजिक-सुधार आ गये हैं, वे ही उनके व्यक्तित्व के केवल एक अंश को मानववादी प्रमाणित करते हैं. उन्होंने जाति-पाँति और आडम्बरयुक्त कर्म-काण्डों का जिस प्रकार से खण्डन किया, मानवीय-मूल्यों के विरुद्ध अछूत-प्रथा, शारीरिक-यातना, आदि

की नींव या धर्म-नीति के जो आदर्श समाज के सम्मुख रखे, वे तो मानववाद का रूप है. पुनः गुरु नानक ने किसी धर्म या सम्प्रदाय का प्रचार नहीं किया. वे एक परम-पुरुष को मानते और सबको उसी में विश्वास लाने को कहते थे—यही आस्तिक मनुष्यधर्म था. मानव मानव में भेद डालने वाले जाति-सिद्धान्त के वे विरोधी थे. स्वयं उच्च जाति के क्षत्रिय होते हुए भी वे निम्न जाति के बाला और मर्दाना के साथ रहते थे. अपनी पहली यात्रा में ऐमनाबाद पहुँचकर उन्होंने सजातीय भाई भागो के यहाँ रहने की अपेक्षा एक शूद्र बढ़ई लालो के घर निवास किया, और इस प्रकार जाति-भेद का अन्त कर उन्होंने मानववाद के विकास में सहायता दी. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके सभी सिद्धान्त मानवीय-प्रवृत्तियों के समवर्ती हैं. घर-परिवार के त्याग, शारीरिक-यातना आदि को उनकी विचारधारा में कहीं स्थान नहीं. किसी धर्म या सम्प्रदाय के प्रति उन्होंने घृणा का प्रचार नहीं किया. सभी महापुरुषों, महात्माओं तथा उनकी वाणियों के लिये उनके हृदय में श्रद्धा थी, अतः किसी भी धर्म या सिद्धान्त को मानने वाला व्यक्ति उनके महान विचारों से आहत नहीं हो सकता. पुनः वे समन्वय के आश्रय परम-पंथ का प्रचार कर रहे थे, इसीलिये उन्हें किसी विशेष विरोध का सामना नहीं करना पड़ा. और वे ही सब कारण गुरु नानक के भारतीय मानववाद के आधार हैं. उनकी मैत्री के आदर्शों से प्रेरित हो हिन्दू, मुसलमान, तथा अन्य सम्प्रदायों वाले सब उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते रहे. सार यह कि जहाँ तक गुरु नानक के समाज-सुधारक दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, वे मानववाद के बहुत निकट थे.

(अगले पृष्ठ पर जारी)

---

१. कुछ विचारकों ने गुरु नानक की पाँच महान यात्राओं को घर-बार का त्याग कर उदासी की यात्रायें माना है, परन्तु यह केवल उनके अज्ञान का परिचय है. गुरु नानक ने आध्यात्मिक क्षेत्र में परम-सत्य को पाया था—उनकी यात्रायें दूसरों को उसी सत्य का रूप-ज्ञान देने के लिये आयोजित की गई थीं, यही कारण था कि वे यात्रा समाप्त कर घर लौट आते थे. उदासी को यात्रा से लौट आने की आवश्यकता नहीं रहती.

उपसंहार

गुरु नानक साहिब की जितनी भी जो व्याख्या अब तक की जा चुकी है, उससे स्पष्ट है कि वे केवल विचारक ही नहीं, अग्रदूत भी थे; और विश्व-मानवता की आध्यात्मिक स्थिति में पतन और दुःख देख कर उसमें मार्ग-प्रदर्शनार्थ संसार में अवतरित हुए थे. यों तो उनकी सम्पूर्ण वाणी का आरम्भ इसी पृष्ठभूमि पर होता है, यद्यपि गुरु नानक उस अवतार-सिद्धान्त के मानने वाले न थे. उन्हें इस भौतिक मानवता को युगों युगों तक रास्ता दिखाना था. इतना महान् कार्य एक युग में सम्भव न था. कदाचित् इसीलिये गुरु नानक ने दस भिन्न शरीरों में जन्म लेकर परिस्थिति अनुकूल भौतिक सांसारिकता का पथ-प्रदर्शन किया, और लगभग २४० वर्षों (सन् १४६९ से सन् १७०८ तक) की लम्बी अवधि तक शरीर धारक रहने के पश्चात् भी गुरु-वाणी की अद्वितीय-धारणी का उपहार भौतिक - मानवता को देते गये, ताकि वह उनके पावन विचार से पार उतर सके. इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य दृष्टि से हमने गुरु नानक के मात्र प्रथम रूप के उपदेशों (वाणी) के ~~[illegible]~~ की व्याख्या को ही मुख्यतः प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय बनाया है, परन्तु उनमें और अन्य रूपों द्वारा प्रस्तुत काव्य (वाणी) के विचार-तत्व में बिल्कुल कोई भेद नहीं. भाषा का अन्तर (समय की) बाहरी-परिस्थितियों के प्रभाव के कारण है. दसवें रूप में पंथ की स्थापना भी इसी प्रभाव से अन्तर्गत हुई है.[1] — अस्तु,

गुरु नानक सरीखे आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक का लक्ष्य था भौतिक मानवता को उचित मार्ग का संकेत देना. उसके लिये जगत में अवतरित हो परिस्थिति का अध्ययन करना अनिवार्य था; अर्थात् जन-जन की दुःखी स्थिति का कारण जानना अपेक्षित था. तदुपरान्त कारण को दूर करना तथा उस मार्ग पर जिन विघ्नों का सामना होगा, उनकी व्यवस्था भी पहले से ही समझ लेना, बड़ी आवश्यक बातें थीं.

---

१. यहाँ ध्यान रहे कि हमारा सम्पूर्ण विषय प्रथम पातशाही गुरु नानक तक ही सीमित है, अतः इसी अध्याय के पूर्व पृष्ठों पर हमारे द्वारा यह सिद्ध किया जाना कि उन्होंने किसी नये धर्म या सम्प्रदाय की नींव नहीं रखी, उचित ही है.—यह पंथ की नींव रखी जाने से लगभग दो सौ वर्ष पहले की बात थी. बाद में दसवीं पातशाही के रूप में परिस्थितियों का सामना करने के लिये आध्यात्मिकता और भौतिकता, दोनों को जुदा जुदा देखने की आवश्यकता पड़ी. उस समय प्रस्तुत चिन्तन-धारा, (जो कि शुद्ध आध्यात्मिक थी) पर होने वाले ~~[illegible]~~ अन्यायपूर्ण अत्याचारों का मुकाबला करने के लिये करवट बदलना अपेक्षित हो गया; अतः उन्हें दसमी पातशाही को सन्त सिपाही बनना पड़ा.

गुरु नानक जिन्होंने पहले इन्हीं दोनों बातों का उत्तर प्रस्तुत किया है. फरमाते हैं—

बिखु बोहिथा लादिआ, दीआ समुंद मंझारि.
कंधी दिसि न आवई, ना उरवार न पार.
वंझी हाथि न खेवटू, जल सागर असरालु.१.
बाबा जगु फाथा महा जालि.

संसार-सागर में हम सब अपना अपना शरीर-रूपी जहाज लिये मंझधारों के बीच हिचकोले ले रहे हैं. पार हो जाना चाहते हैं, परन्तु हो नहीं पाते; बल्कि भंवर में भी उलझते और चीत्कार करते हैं. हमारे इस जहाज के मंझधार से पार न उतर सकने के कई कारण हैं—प्रथम, हमने इसमें विषय-विकारों और दुर्वासनाओं का विष लाद रखा है, जिससे बोझ इतना बढ़ गया है कि पार पहुंचने से पूर्व ही इसके डूबने के चिह्न दिखाई दे रहे हैं. पुनः मंझधार का किनारा भी कहीं दिखाई नहीं देता, अर्थात् प्राणी-मात्र इस कूल-विहीन सागर में युगों युगों से गोते खा रहे हैं; कोई नहीं जानता कि इसका आरम्भ या अन्त कहाँ है. अनेक जन्म इस सागर में लिये और मर गये, लेकिन कभी अन्त न पाया. ऋषियों-मुनियों ने सैद्धान्तिक दृष्टि से ब्रह्म-महात्म्य के न जाने कितने हिसाब लगाये, परन्तु कोई आज तक दावे से यह नहीं कह सका कि संसार का आदि या अन्त क्या है. गुरु नानक जी यों तो ऐसी बातों में चुप रहना उचित समझते हैं,—कहते हैं—"थिति वार न जोगी जाणै, रुति माहु न कोई. जा करता सिरठी कउ साजे, आपे जाणै सोई". दूसरे, "सागर भी असरालु है. इसकी गहराई का कुछ पता नहीं चलता. दुनिया के समुन्दरों की गहराइयों का पता विज्ञान ने लगाया, परन्तु स्वयं दुनिया रूपी सागर की कोई थाह नहीं पाई. हमारे लिये यह दुनिया ही सब कुछ बन चुकी है—नाले के कीड़े की भान्ति, इस नाले में जन्म ले, बागु की सुगन्धि से पाराबद्ध हुए बिना, यहीं मर रहे हैं. संसार-सागर की गहराइयों को पहचानने, या इससे बाहर आने का हम प्रयत्न भी नहीं करते. हमारे लिये "आठ पहर मिट्ठा, अगला किन डिट्ठा" (यह संसार मीठा लगता है, दूसरा किसने देखा है.) आगाह-वाक्य बन रहा है. तीसरे, हमारे जहाज के साथ न खेवट है, और न इसके पास कोई चप्पू ही है. सागर से नौका को पार लगाने या जहाज को मंजिल तक पहुंचाने के लिये प्रत्येक नौका या जहाज के साथ मल्लाह होते हैं, वे चप्पू चलाते हुए नौका को ठीक मार्ग पर ले जाते

है. परन्तु गुरु नानक खेद प्रकट करते हुये कहते हैं कि भवसागर में पड़ी हमारी शरीर रूपी नौका को पार लगाने वाला भी कोई नहीं, फिर भला वह किनारे तक क्योंकर पहुंचे? बीच में संसार की घोर भीषण दशा का चित्र उनके सामने आ जाता है, जब वे बचने का कोई मार्ग नहीं सूझता, और वे कह उठते हैं, "प्रभु काया भली जाहु". अर्थात् संसार विषय-विकारों के भयंकर जाल में फँसा सतत कष्ट उठा रहा है.

सहानुभूति के प्रतीक गुरु नानक ने संसार के कष्टों के कारण का इस प्रकार अनुभव किया. वे जान गये कि संसार-सागर में प्राणियों का गोते खाना और उससे बच सकने में असमर्थ होना ही सांसारिक दुख के कारण हैं. सहानुभूति उमड़ी. वे पथ-दर्शाने को तो आये ही थे, द्रवित होकर फरमाया—

गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि. १. (२६१७)

कि संसार-सागर से वही पार उतर सकता है, जिस पर सद्गुरु की कृपा हो. जीव को भवसागर से पार होने तथा अपने लौकिक कष्टों को पूर्णतः अन्त करने के लिये सब-प्रथम किसी सच्चे गुरु की खोज करनी होगी. गुरु उसे नाम-रहस्य बतायेगा, और तब, यदि जीव गुरु-निर्देशानुसार नाम में चित्त लगाता हुआ नामस्मरण करे, तो भवसागर से उसकी मुक्ति निश्चित है. प्रश्न उठता है, यह नाम क्या चीज़ है? और कहाँ से प्राप्य है? गुरु नानक का कथन है कि यह अन्तर में ही विद्यमान है.[1] उसका रहस्यवाद गुरु से जाना जा सकता है. वास्तव में यह जीव की निजी संपत्ति है, परन्तु अज्ञानवश उसके साथ रहने पर भी, वह इससे तब तक कोई लाभ नहीं उठा सकता, जब तक गुरु द्वारा उसे सच्चाई का ज्ञान न करवा दिया जाये. जीव की दशा ऐसी है कि गाँठ में धन बाँधे कंगाल बना फिरता है. गाँठ के अन्दर की वास्तविकता का उसे पता नहीं, कोई उसे बताने वाला नहीं—इसी लिये वह दुखी है. जैसे भीखा साहिब ने कहा—

भीखा भूखा कोई नहीं, सब की गठरी लाल.
गाँठ खोल देखै नहीं, याते भये कंगाल.

अतः भवसागर में गोते खाते हुये दुखी जीव को गुरु नानक ने कष्टमुक्ति हेतु सच्चे गुरु को खोज करने तथा नाम-प्राप्ति की महा-मन्त्रणा दी. यह हमारे आरम्भिक तीन प्रश्नों में से दूसरे (दुःख के कारण को क्योंकर दूर किया जाये?) का उत्तर था.

यहाँ जीव यह प्रश्न कर सकता है कि संसार के दुखों और कष्टों का उपचार करने की महौषधि "नाम" यदि उसकी निजी सम्पत्ति है, उसी के भीतर है, तो फिर उसे सुगमता पूर्वक मिलती क्यों नहीं? उसकी प्राप्ति के मार्ग में क्या बाधायें आती हैं,

१. नउ निधि अमृत प्रभु का नामु । देही महि इसका बिस्रामु । १:२३. गउड़ी सुखमनी म०५, पृ०२९३

और ज्योति जगमगा रही है. नाम की महान ज्योति निस्सन्देह मनुष्य के अन्दर ही है, परन्तु उस पर मन की मलिनता के कारण अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है. अतः मन ही उसकी प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है. वह जैसा चाहता है, वैसे ही जीव को नचाता है. जीवन में हमारी समस्त क्रियायें मन के संकेत पर ही हो रही हैं. हमारे ऊपर मन इतना प्रबल हो चुका है, कि ज्योंही हमारा ध्यान आन्तरिक या आध्यात्मिक की ओर चलने लगता है, त्यों ही वह नये नये वस्तु-पदार्थ दिखा दिखा कर हमें पथ-भ्रष्ट करता रहता है. हम अपनी नासमझी के कारण मन के पीछे चलने में किसी दोष का अनुभव नहीं करते...तो भला, गुरु नानक कहते हैं...अपने अन्दर की नाम की दौलत हमें कैसे मिले. पहले तो हम मन के पीछे लगे उस ओर बढ़ते ही नहीं, और यदि बढ़ें भी तो यह मन, नाम-कोष के पहरेदार नाग की तरह, हमें काटने को दौड़ता है. अतः जरूरी बात तो यह है कि जिस प्रकार किसी दबे खजाने को प्राप्त करने के लिये उस पर रहने वाले सांप को पकड़ना या मारना पड़ता है, वैसे ही नाम को उपलब्ध करने के लिये मन रूपी सांप को वश में करना अनिवार्य है, उसके विष और क्रोध का मुकाबला करना आवश्यक है. गुरु नानक फरमाते हैं—

> कपु पिड़ाइ पाईऐ, विचु बैसार नाग रहु.
> पूरब लिखिआ पाईऐ, किसनो दीजै दोसु.
> गुरमुखि गारड़ु जे सुणे मंने नाउ संतोखु. ८.

अर्थात् हमारे शरीर रूपी पिटारी में मन का सांप बैठा है, जो हर एक जीव को विषय-विकारों का विष चढ़ाये रहता है. इसी के विषाक्त हो हम अनीति मार्ग के कर्म करते हैं. जिस प्रकार किसान पहले फसल काटता है, तो आगे के लिये बीजता भी है, उसी प्रकार हम संसार में देह-धारण करते हैं तो पिछले पूर्व-कर्मानुसार ही, और आगे के लिये कर्म बीजते भी चले जाते हैं. कहा गया है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा कर्मों के भाव से सुकृत्य और दुष्कृत्य में संकल्प का उदय होता है. नया जन्म उसी संकल्प के अनुसार मिलता है. अस्तुः, कर्मगति के अनुसार जीव का आवागमन चालू रहता है. इन नये नये शरीरों में यदि जीव मन के इशारों पर नाचता रह जाता है, तो वह उसका प्रारब्ध या पूर्व-कर्मों का फल ही है. मन रूपी सर्प के संकेत पर वह आध्यात्मिकता की लगभग पूर्णतः उपेक्षा कर देता है. इसीलिये जीव को कष्ट में देख कर गुरु नानक कहते हैं,"पूरब लिखिआ पाईऐ, किसनो दीजै दोसु". जो कुछ हमें मिल रहा है,जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सब हमारे पूर्व-कर्मों का फल ही तो है. उसके लिये किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता."जैसा बोवना, वैसा काटना",परम्परा का नियम है, इसी

प्रकार हमने पूर्व-जन्म में जैसे कर्म किये वैसा फल हम इस जन्म में भोग रहे हैं. मानसिक व्याधि भी कर्म-फल ही है, अन्यथा मन रूपी-सांप के विष से केवल वही बच सकता है, जिसे प्रभु की विशेष कृपा से गुरु का आश्रय मिल जावे. यदि किसी को सांप काटे तो डॉक्टर-वैद्य से इलाज कराया जाता है, वैसे ही मन रूपी सांप के काटे का इलाज भी सम्भव है. परन्तु डॉक्टर कौन होगा? गुरु साहिब कहते हैं,"गुरमुख". वह महा-पुरुष, जिसने इस संसार से ऊँचा उठकर परम-तत्त्व को प्राप्त कर लिया है, वही "मन के काटे" की औषधि कर सकता है. कोई सच्चा गुरु ही इसका वास्तविक उपचारक होगा. वह जीव को समझा देगा कि मन की विष केवल नाम-जाप में संतुष्ट रहने से ही दूर हो सकती है. उसी की (गुरु की) सद् कृपा से ही मन वश हो सकता है, यदि पकड़ा जा सकता है. स्पष्ट हो यदि पकड़ा जावे, या गुरु-कृपा से उसके विष-दन्त (विषय-विकार की प्रवृत्तियाँ) टूट जायें, तो फिर अन्तर में गुरदीक्षित नाम की सम्प्राप्ति पाने में कोई बाधा रह ही नहीं जाती.

गुरु नानक उपर्युक्त तीसरी (कष्ट-निवारण के मार्ग के विघ्नों की समस्या?) स्थिति को अधिक स्पष्ट करने केलिये एक और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं. सागर में बड़े बड़े मगर-मच्छ भी पाये जाते हैं—इतनी शक्तिशाली कि जहाज़ को टक्कर मारे तो जहाज़ टूट जाये. परन्तु शिकारी लोग उन्हें पकड़ने केलिये कुण्डी के साथ मांस का एक टुकड़ा लगा कर पानी में डाल देते हैं. लोभग्रस्त मगर कुण्डी समेत मांस को निगल जाता है. कुण्डी कंठ में फंस जाती है. बेचारा विवश हो जाता है,और साथ में मुर्दे की तरह खिंचा चला जाता है. यही दशा जीव की है. वह आत्मा है, साक्षात् ब्रह्म का अंश. परन्तु उसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं; लोभ में पड़ी मन की कुण्डी में खिंचे चली जा रही है—

मगरमछु फहाईऐ कुंडी जालु कराइ.
दुरमति काइआ काहीऐ फिरि फिरि पछोताइ.
जंमणु मरणु न सुझई किरतु न मेटिआ जाइ. ५.

जैसे कर्म मन करवाता है, वैसे जीव किये जा रहा है. दुर्मति जीव को यह ज्ञान ही नहीं आता कि इन खोटे कर्मों के फल स्वरूप उसे भांति भांति की योनियों में जाना पड़ेगा. गुरु साहिब ने भी लिखा है—

करम किया सिर लेख परावहु. बिनु लेखै नाही कोइ जिउ.

अर्थात् जीव लौकिक लम्पटता में इतना खो जाता है कि उसे अपने जन्म मरण की परवाह भी नहीं रहती. वह यह भी भूल जाता है कि कर्म-फल से छुटकारा सम्भव नहीं;

—— ४४.

उसे अपने स्वभाव का गुलाम हो पड़ेगा. मन का अनुभव यहाँ शेख "भावभावतरी अनहद बोला, स्वाद न छूटो बहु रंग पचोला". यह अवश्य होता है, क्योंकि उसे अपने अन्दर की ज्योति दिखाई नहीं पड़ती, वह बोला(बहरा) है, क्योंकि उसमें नाम की —शब्द की— ध्वनि सुनने का सामर्थ्य नहीं.

प्रायः सभी संत कवि, मन के कारणों का मूल्यांकन और इसकी उपाधियों से आने वाली बाधाओं का विवरण करने के उपरान्त गुरु साहिब पूरा और स्वाभाविक भाव से अपना मंतव्य प्रकट करने को उद्यत होते हैं. उपर्युक्त दृष्टिकोण से उन्होंने मन को सबसे बड़ी बाधा बताया है. मन की मूल प्रवृत्ति (छोटी हुआ किया) है—अभिमान. बेचारा जीव मन के कहने में पड़ कर अहंतात्मक या लौकिक पूर्णत्व पर अपने अस्तित्व का महत्व गिनने लगता है. "मैं और मेरा" के फेरे में पड़ जाता है. इसी के लिए वह सदा संसार परेशान हो रहा है, लेकिन कोई छूट नहीं पाता. गुरु नानक लिखते हैं, "हउमै विचु भाउ आवहु जाउ", अर्थात् संसार का उत्पादन ही अहम् रूपी बीज से हुआ है. "आसा दी वार" में हउमै का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा प्रस्तुत गया है—

हौ विच आया, हौ विच गया. हौ विच जमिआ, हौ विच मुआ.
हौ विच दित्ता, हौ विच लिया. हौ विच खटिआ, हौ विच गया.
हौ विच सचिआर, कूड़िआर. हौ विच पाप पुन्न विचार.
हौ विच नरक सरग अवतार.

आश्चर्य यह है कि संसार में आने वाले जीव मन के वश में होकर, अहम् के बोझ से इतना दब जाते हैं, कि उनमें इससे छुटकारे की साधारण कुछ क्षमता भी नहीं रह जाती. लेकिन नहीं, निराश होने की आवश्यकता नहीं, जहाँ समस्या होती है, वहाँ उसका हल भी रहता है. गुरु साहिब स्वयं इसी से आगे लिखते हैं—

हउमै दीरघ रोग है, दारु भी इस माहि.
किरपा करे जे आपणी तां गुरु का सबद कमाहि.

रोग तो हउमै का भयंकर है, परन्तु यदि प्रभु की कृपा हो, कोई सच्चा-गुरु मिल जाये और वह जीव को शब्द-रहस्य समझा दे, तो हउमै का विष अपने आप निष्प्राण हो जाये—"हउमै जाइ विसु खाइ".

—— ११.

इसमें जब किसी ~~प्रकार~~ नष्ट होने के बाद ही जीव परम-तत्व में लीन हो जायेगा. तत्व की ओर उसका नैसर्गिक आकर्षण होगा. उस तत्व को, जिस के सम्बन्ध में गुरु नानक ने आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु कहा है, का मिलाप प्राप्त हो जाना ही जीवन का उद्देश्य है. मन के हउमै का नाश, आत्मा-परमात्मा की मिलन का आधार है; और फिर यदि जीव परम-तत्व को पहचानने में प्रवृत्त हो जाये, अथवा गुरु पाकर उनके आदेशानुसार आराधना आरम्भ करदे, तब तो वह संसार में रहते हुये भी मुक्त कहलायेगा. उसके समस्त कष्टों की दवा उसे प्राप्त हो जायेगी, वह परमानन्द में विचर-मग्न हो उसके गुण-गुण का गायन करेगा. गुरु नानक कहते हैं—

नरा औरि न केई दाव रहे लिव लाइ.

जोगन कुसु ही भावनी मिलु बिछुड़ हउमै जाइ.४/१.

जैसे कहा जा चुका है कि जीवात्मा भवसागर के भंवर में पड़ा है, इसका शरीर रूपी जहाज़ जर्जरित है, जो इतने भारी बोझ में न ठहर सकता है, न सम्हल सकता; और चारों ओर से विषय-विकारों के थपेड़े तथा मन रूपी लहरों की भयानक टक्करें लगती जा रही हैं, डूबना ही चाहता है. प्रायः इस प्रकार डूबते हुये जहाज़ को बचाने के लिये अन्य जहाज़ और उनके चालक सहायता को दौड़ पड़ते हैं. यहाँ सहायता कौन करे. कौन चालक जीव का उद्धार करे. गुरु नानक कृपा-कर सुझाव पेश करते हैं कि कोई सद्गुरु ही जहाँ मल्लाह बन यदि नाम का जहाज़ लेकर सहायता करे, तो जीव की मुक्ति सम्भव है. आप लिखते हैं—

डूबत जाते ले उबरे जगी जाहु पोथार.॥ मा

सतगुरु है बोहिथा सबद लंघावणहार.॥

जब तक कि हमें हाँ हुई भी गुरु द्वारा संसार-सागर से उबारा जाना प्रभु-कृपा का विषय है. सद्गुरु का मिलना, हउमै का नाश करना या नाम की ओर प्रवृत्त होना, गुरु नानक की विचारधारा के अनुसार, जीव के निजी अधिकार नहीं है. जीव के गुण-कर्मों, दोष-विकारों और व्यवहारी भूलों को देखकर नाथ प्रभु दया करे, तभी उस जीव को इस विश्व में किसी सद्गुरु का साथ मिल सकता है. सतगुरु नाम का जहाज़ लिये भवसागर से पार लगाने वाली सर्वशक्तिमान विभूति है. जिस जीव पर उसकी कृपा-दृष्टि पड़ी, वही संसार-सागर में डूबते डूबते बचा लिया गया, नाम के जहाज़ में बैठा कर उसे पार लगा देने का आश्वासन मिला. जब प्रभु सहाय हो, दुनिया

के उपायों का कोई असर होता है, वे पक्षी या सांप के [illegible] में चलते हैं—इस [illegible] के बचाव का क्या असर होगा? कैसे पक्षी या सांप [illegible] गुरु [illegible] उत्तर देते हुए गुरु नानक फरमाते हैं—

> तिसि [illegible] न [illegible] ना [illegible] ना [illegible].
>
> तिसि [illegible] तारणहार. २:१.

अर्थात् नाम के इस बचाव पर सांसारिक पक्षों (विषय-विकारों की [illegible]), आपत्तियों (दुःखों की) या दुष्टों-व्यसनों (काम-क्रोधादि) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता. यह तो भवसागर की विकटता विरुद्ध जीव का संरक्षण है. नाम के बचाव और सद्गुरु के संरक्षण में बैठा जीव [illegible] पुरुषों से भी घबराता नहीं. वह सदा नाम के आश्रय निर्भय होता है. गुरु-कृपा से उसके भीतर का अहंभाव नष्ट हो चुका है, इस लिये वह नाम-जाप में [illegible] भी दुख [illegible] समझता है. जैसा कि पीछे के अध्यायों में बताया जा चुका है, नाम के साथ आत्मा का सम्बन्ध होने के कारण, वह वाहिगुरु में समाविष्ट हो जाता है. उठते बैठते, चलते, लेटते, खाते-पीते उसका ध्यान निरन्तर परम-पुरुष में लगा रहता है. ऐसा जीव जीतेजी इस संसार से मुक्त होता है, उसका जन्म-मरण का चक्र छूट जाता है. उसकी [illegible] आत्मा [illegible] में ही विलीन हो जाने के लक्ष्य की ओर बड़े वेग से बढ़ती है. जीव [illegible]-ज्योति को परम-ज्योति में विलीन कर देना चाहता है. इस आध्यात्मिक उभार में [illegible] जीवात्मा वाहिगुरु से मेल पाने के लिये जब [illegible] और नाम-स्मरण के आश्रय [illegible]-पद से भी ऊपर उठ जाता है—लेकिन कोई विरला गुरमुख आत्मा ही वहाँ तक पहुंच सकता है. स्वयं गुरु नानक लिखते हैं—

> [illegible] गुणों में [illegible] न [illegible] ~~गुरमुख~~, [illegible] गुण [illegible].
>
> [illegible] पद में [illegible] है गुरमुख पहले पावे.

त्रिगुणि माया के देश का त्याग कर, दसम द्वार के पार जब जीवात्मा पहुँचता है, जो परम-ज्योति, उस सतपुरुष को पा जाता है, उसी में समा जाता है. उसका समस्त दुनिया का [illegible] छुटकारा हो जाता है, कर्म-चक्र का अन्त होता है, और वह मुक्तात्मा होकर चिर-[illegible] ([illegible]) का परमानन्द-लाभ कर लेता है. लिखा भी है—

> गुरमुखि [illegible] पार [illegible] [illegible].
>
> [illegible] निर्वाण [illegible] [illegible].

परन्तु कौन होगा वह भाग्यशाली जो आध्यात्मिकता की इस ऊँचाई तक पहुँचेगा? गुरु नानक फ़रमाते हैं, वही जो गुरु को प्राप्त करेगा, उसके आदेशानुसार नाम की कमाई करेगा और सदैव अपने मन-बुद्धि-विहीन चित्त को प्रभु में लीन रखेगा...

गुरमति सचु सबदे सचि रहै समाइ. १:१.

जब तक कि शरीर मंदिर में बन्द आत्मा सूती और जब तक दुनिया की कौड़ियाँ बटोरता है, मन के लहरों पर संसार में बहते वाले बुदबुदे की अपेक्षा विषय-विष-पान करता है, तब तक प्रभु-मिलन या मोक्ष का उद्गम पार करना उसके लिये कदापि सम्भव नहीं. परन्तु यदि वही आत्म-और मन के सूक्ष्म-भेद को पहचाने और दुनिया के आडम्बरों का त्याग कर सत्यनाम का दाता हुए और बूँदामृत का पान करते रहे तो उसकी उड़ान में वह जीवित हो सकती है, कि वह सततोष तक की ऊँचाई को पा सके—

सुणहु पिंजरि प्रेम के बोलै बोलणहार.

सचु सुखी सबुत पाँचे जहु न भैला भार.

यहाँ गुरु नानक एक बार फिर चेतावनी दिये देते हैं कि जीवन-यापना से छुटकारा पाने की स्थिति से लेकर प्रभु को पहचानने तथा अंधकार से पार हो जाने या मोक्ष पा जाने तक एक ही सुविधाजनक की कृपा और सहायता का होना रहना आवश्यक है—वह है गुरु. यदि सच्चा गुरु जीव का पथप्रदर्शक बने, तो वही उसके अन्तर से अहम् को मिटा सकता है. तब जीव यदि गुरु द्वारा बताये गये नाम-रहस्य को समझे, बुद्धि-प्रमाण और नाम-स्मरण में एकाग्र हो, गुरु तथा प्रभु की कृपा प्राप्त करने की योग्यता पा ले, तो निश्चय ही वह "सहज" (सहजस) में विलीन हो जायेगा. गुरु नानक इसी को वास्तविक मोक्ष का मार्ग स्वीकार करते हैं—

गुर मिलिऐ सचु पछाणीऐ, कहु नानक मोख दुआर. ८:१.

* * * * * * *

टिप्पणी:- ऊपर जिन पदों के साथ पद-संख्या आदि दी गई है, परन्तु उद्धरण नहीं दिया, वे सब गुरु नानक के श्लोक राग मारू अष्टपदी, १-८:१ पृ० १००९. से लिये गये हैं.

परिशिष्ट - १.

गुरु नानक साहिब की जीवन-यात्रा

[illegible]

[illegible] जैसे [illegible]

सुणी पुकार दातार प्रभु, गुरु नानक जग माहि पठाया.

चरन धोइ रहरास करि चरणामृत सिखां पीलाया.

(वार-भाई गुरदास)

परिशिष्ट - १.

गुरु नानक साहिब की जीवन-यात्रा

जन्म और माता-पिता

हिन्दुस्तान के पौराणिक लोगों का कहना है, कि अवतार लेकर प्रत्येक युग युग पर दुष्टों-दुष्टों का संहार कर के धर्म की विशेष स्थिति करता है. ऐसी ही महापुरुष-विभूतियों में एक देदीप्यमान नक्षत्र सोलहवीं सदी में भारत के तत्कालीन सामाजिक जीवन-रंगमंच पंजाब में उदित हुई. वे गुरु नानक थे. गुरु नानक साहिब का जन्म संवत् १५२६ के वैशाख मास, शुक्ल पक्ष की तिथि को (१५ अप्रैल, सन् १४६९.) लाहौर नगर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग ३० मील दूर एक गाँव तलवंडी में हुआ था. उनके पिता का नाम कालू और माता का नाम तृप्ता था. मैकालिफ ने इन दोनों का नाम मेहताराम और त्रिपता जी का नाम स्वीकार किया है, यद्यपि

---

१. (क). एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन ऐंड एथिक्स, भाग ९, में मैकालिफ ने लगभग १७७० पूर्व अनुवाद से लिखी किसी जन्मसाखी का हवाला देते हुए गुरु नानक को राजा जनक का कलियुग में हुआ अवतार माना है. यह अशुद्ध दीखता है. उक्त जन्मसाखी में कथमतः ऐसा लिखा गया है कि जिस प्रकार त्रेतायुग में राजा जनक ने संसार की पौराणिक कथा के सामने पुण्यों-पापों का भाव रखकर उन्हें जन्मान्तर का उपदेश था, वैसा ही कलियुग में गुरु नानक ने किया. इसी कारण यहाँ कि पशु जैसे जीवों को स्वभाव वश ले गये महापुरुषों को दुनिया में भेजने की परम्परा चलाते हुए है, और राजा जनक या गुरु नानक उसी परम्परा से भिन्न पहुँच थे.

२. (ख) गुरु नानक की जीवनी अनेक जन्म-साखियों में लिखी गई है. भक्तों ने श्रद्धा-भावना इन साखियों में उनके जीवन का खूब बढ़ा-चढ़ा कर विस्तृत वर्णन किया है. यहाँ तक कि कहीं कहीं उनके जन्मान्तर घटनायें अति-मानवीय या अमानवीय श्रेणी तक भी पहुँची हैं. हम आज के वैज्ञानिक युग में गुरु नानक के प्रति श्रद्धा-भावना रखते हुए भी ऐसी बातों को यहाँ स्थान न देकर संक्षेप में उनका जीवन-चरित्र ही लेंगे.

२. गुरु नानक साहिब की प्रचलित जीवनी गुरु नानकदेव के नाम से प्रसिद्ध अवश्य है. परन्तु सिक्ख धर्म पाश्चात्य लेखकों ने उनका नाम नानक सिंह अथवा नानक शाह लिखा है, जो कि अशुद्ध है. (रिलिजस हिस्ट्री ऑफ सिक्खिज्म: ऐच.ऐच. विल्सन, पृ २५०) सिक्ख-गुरुओं की परम्परा में किसी भी महापुरुष के नाम के साथ सिंह का प्रयोग नहीं हुआ. केवल दशम गुरु गोविन्द ने जब धर्म-रक्षार्थ सारे भारतीय मुसलमानों के विरुद्ध अपने शिष्यों को वीर बनने की प्रेरणा देना चाही और खालसा-पंथ की नींव रखी, तभी उन्होंने जब सिक्खों को, वे जो भी थे, नाम के साथ सिंह (शेर) का प्रतीक-सूचक ध्वनि का स्वीकार किया. गुरु नानक देवजी ने स्वयं

(आगे चालू)

[illegible] और [illegible] पुरोहित [illegible] है. [illegible] [illegible] के [illegible] और [illegible] राम पुत्र [illegible] की पुरोहितों में भी [illegible] मैं. [illegible] दशरथ पुत्र के [illegible] है. [illegible] और [illegible] में बारी [illegible] में [illegible] पुत्र के [illegible] का [illegible] है, और [illegible] राम [illegible] है. [illegible] में पुत्र [illegible] हुआ था, [illegible] और [illegible] गया. [illegible] में [illegible] गया, और [illegible] में [illegible] ब्राह्मणों [illegible]. [illegible] के [illegible] में [illegible] हुआ है, [illegible] पुत्र-सिवस्त [illegible] पुत्र [illegible] पुकारे [illegible] जाते हैं.

---

१. ([illegible]) [illegible] प्रयोग [illegible] है. [illegible] राजा, [illegible] है, [illegible] है. [illegible] है—[illegible].

२. [illegible] पृ० [illegible].
[illegible] के [illegible] है.

३. [illegible], [illegible].

४. [illegible] और [illegible] के [illegible] था.

५. [illegible] है. ([illegible]) ([illegible]) [illegible] गया है. ([illegible] पृ० [illegible], [illegible]) [illegible], [illegible] में [illegible] और [illegible] गया है.

६. [illegible], पृ० [illegible].

बचपन और शिक्षा

गुरु नानक के जन्मस्थान पर [illegible] बचपन से [illegible] बचपन के [illegible] पिता [illegible] बचपन से [illegible] माता-पिता [illegible] [illegible] गुरु नानक [illegible] गुरु नानक की हिन्दी [illegible] [illegible] गुरु नानक [illegible] गुरु नानक [illegible] है, [illegible] हुआ है।[5]

---

१. गुरु नानक [illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

सैयद हसन का वर्णन सैरुल-मुताखरीन (१:११०) में भी उपलब्ध है. यह इनके पिता का पड़ोसी मित्र था, धनवान और निःसन्तान था. इसलिये बालक गुरु नानक से उसे प्यार था. उस मुसलिम ने इन्हें कुरआन और इस्लामी-धर्म का यथेष्ठ परिचय दिया. मैल्कौम के अनुसार मुसलमानों में भी यह भी प्रचलित है कि गुरु नानक ने सब प्रकार के भौतिक-विज्ञानों को ख़िज़्र ख़िज़र अर्थात् पैग़म्बर इलियास से प्राप्त की.[1] कुछ भी हो, यह तो सत्य है कि गुरु नानक के शिक्षक मौलवी और पंडित दोनों थे, परन्तु कोई भी उनकी महान विचारधारा का पोषण न कर सका, और ना ही उन्हें किसी प्रकार के किताबी-ज्ञान से सन्तुष्टि ही हुई.

सन् १४७८ के आस पास, इनका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ. सब प्रकार की तैयारी हो चुकने के पश्चात् जब पुरोहित जनेऊ पहनाने लगा तो गुरु नानक ने स्पष्ट इन्कार कर दिया और कहा कि उन्हें तो दया और संतोष का सूत पहनना चाहिये, जो सदैव उनका धार्मिक-सम्बल बना रहे और कालान्तर में ईश्वरीय-निकटता का साधन बने.[2] इस प्रकार की अनेक बातें गुरु नानक के बचपन के सम्बन्ध में जनश्रुत रूप से प्रचलित हैं. कहते हैं, आठवीं वर्ष की आयु में ही वे गाँव के बाहर घोर जंगलों में चले जाते थे, और घण्टों वहाँ बैठे आत्म-चिन्तन करते थे. ऐसे ही जंगलों में उनका कुछ पहुँचे हुये महात्माओं से मिलना होना स्वीकार किया जाता है. यद्यपि इस तथ्य का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं तो भी इसका औचित्य इसलिये मान्य है कि उत्तरोत्तर उनका आध्यात्मिक-चिन्तन परिपक्व ही होता गया.

---

१. According to Malcolm (Sketch p.14), Nanak is reported to have learnt all earthly sciences from Khizar i.e. Prophet Elias.—Foot.note, p.39.
Cunningham's History of Sikhs, Ed. by Garrett.

२. नावें मानिये पत उपजै, सालाहि सच सूत.
दरगे अन्दर पाइये, तग न टूटए पूत. — ...साहिब, आसा दी वार.

<u>कुमारावस्था व यौवनकाल</u>

गुरु नानक की साधुओं के प्रति आसक्तियों, एकान्त-चिन्तन, और अन्य ईश्वर-सम्बन्धी बात-चीत सरीखी आदतों को देखकर लोग उन्हें पागल समझने लगे थे. तथापि माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका इकलौता-पुत्र उनके पद-चिह्नों पर चलता हुआ एक भला गृहस्थी नागरिक बने. परन्तु गुरु नानक प्रायः किसी भी कार्य, कृषिकार्य अथवा क्रयण को ठीक ढंग से निभाना न जानते थे. वे प्रभु के विशेष जीव थे, उन्हें प्रभु के कार्यों, वार्ताओं और भजन-स्मरण में ही आनन्द मिलता था. पढ़ाई में उनकी रुचि न देख पिता कालू ने उन्हें खेती-बाड़ी के काम में लगाना चाहा, परन्तु असफल रहे. वे खेतों में जाते और पक्षियों से खेतों के बचाव का ध्यान करने की बजाय ~~[illegible]~~ साधु-मण्डलियों में शामिल होकर हरि गुण-गान करते फिरते. एक समय इनके पिता ने इन्हें भैंसे चराने का काम सौंप दिया. एकाध दिन ठीक काम किया भी, परन्तु दूसरे ही दिन भैंसों की ओर से उदासीन हो वे हरि-भजन में लग गये. भैंसे किसी की खेतार फसल चर गईं. फलस्वरूप दुःखी हो मेहता कालू और गुरु नानक को जमींदार राय बुलार के सम्मुख पेश होना पड़ा. कहते हैं कि जब बुलार ने स्वयं खेतों को देखा, तो कहीं कोई चरा हुआ चिह्न न पाकर उसे बड़ी हैरानी हुई. (यह स्थान-खेत हैरा-साहिब कहलाता है). तभी से वह गुरु के महत्व को समझने लगा, और उसने कालू से भी कहा कि गुरु नानक के वेश में कोई महान-आत्मा उसके घर में उत्पन्न हुई है—वह उसे कुछ न कहा करे. परन्तु बेचारा सामान्य-पिता, अपने पुत्र से न जाने क्या क्या दुनियावी आशायें लगाये था कि मार-पीट, गाली-गलौच से बार बार उन्हें किसी धंधे में लगाने के सपने देखता—परन्तु सब व्यर्थ.

अन्ततः लोगों के कहने सुनने पर गुरु नानक को दुनियादारी में धकेलने के लिये, मेहता कालू ने अपने जमाई भाई जयराम के जिम्मे से प्रथम अप्रैल १४८५ को उनका विवाह बटाला के एक क्षत्रिय बाबा मूला की कन्या सुलक्खणी से सम्पन्न कर दिया. यह विवाह भी एक प्रकार से नवयुवक नानक के मार्ग में विघ्न डालने का आयोजन था. इससे उनकी जीवन-चर्या में कोई अन्तर न आया, अतः पति-पत्नी के सम्बन्धों को किसी रूप में आदर्श भी नहीं कहा जा सकता. मैकॉलिफ के मतानुसार यदि गुरु नानक को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया जाता, या उनके माता-पिता उन्हें बाध्य न करते तो बहुत सम्भव था कि वे मनुष्य के इस कर्तव्य (विवाह) की ओर ध्यान ही न देते.[१]

पाद-टिप्पणियाँ आगे देखें.

विवाहोपरान्त भी वे अपनी पत्नी में आसक्त न होकर प्रभु-अनुराग में ही लिप्त रहे. पत्नी अधिकतर पीहर ही रहने लगी. कभी आती तो इनकी ओर से उसे उपेक्षा-भाव अनुभव मिलता. इनकी माता तृप्ता इन्हें खूब टोकती. कभी कभी बहु का पक्ष लेकर इन्हें बुरा-भला भी कह देती, परन्तु ईश्वर के प्यारे भक्तों पर दुनिया का क्या प्रभाव. माता इन्हें रोगी समझने लगी. वैद्य बुलाया गया, परन्तु नाड़ी देखते हुए वैद्य को "मुझे केवल राम-नाम का ही रोग है" कह कर गुरु नानक ने चुप करा दिया. बाद में उनकी आध्यात्मिक बातें सुन कर वैद्य बहुत प्रभावित होकर चला गया. लेकिन पिता कालू को कुछ संतोष न हुआ. आखिरकार एक दिन समझा-बुझा कर नानक को उनसे व्यापार करने हेतु तैयार कर लिया, और २०)-रुपये देकर चूहड़-काना (जिला गुजरांवाला) में जाकर नमक और अन्य सामान खरीदने को कहा. नानक अपने घरेलू नौकर बाला के साथ चल पड़े. परन्तु मार्ग में साधुओं की एक श्रेणी से मिलाप हो जाने से गुरु नानक उनके साथ मिलकर हरि-गुणगान में लग गये और सारी रकम उन साधुओं की सेवा में ही खर्च कर दी. यद्यपि बाला ने इसका विरोध भी किया, परन्तु उसकी कोई सुनवाई न हुई. जब गुरु नानक खाली हाथ घर लौटे, और "बहुत उत्तम-व्यापार" करने की सूचना उन्होंने पिता को दी, तो उनकी पिटाई के साथ ही मेहता कालू ने अपना सिर भी पीट लिया. इस पर खिन्न हो गुरु नानक ग्राम से बाहर जाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गये. वह पेड़ अभी तक सुरक्षित है, उसे चारों ओर से दीवार से घेर दिया गया है, और उसे "करीर-साहिब" कहा जाता है.

सन् १४९४ में गुरु नानक के यहाँ प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम श्रीचन्द[३] रखा गया. तीन वर्ष बाद सन् १५०० में दूसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द का जन्म हुआ. जब गृहस्थी

---

१. ऐसे हुए बताते थे उनके नाते थे वे हम अमैत. भर भर पेट सुणी री खिचड़ी, हार को खिचड़ी, हार के खेत. गुरुकुल: मैथिलीशरण गुप्त.

2. If Nanak had been left to his own discretion, and if his marriage had not been made for him by his parents, it is most probable that he would not have turned his attention to that part of man's duty.— Macauliffe: Sikh Religion Vol. I p.29.

३. यही श्रीचन्द बाद में पिता से पृथक "उदासी-सम्प्रदाय" के प्रवर्तक बने.

का पर्याप्त बोझ गुरु नानक के कन्धों पर आ चुका था, और उनका दिनोंदिन बढ़ता हुआ अकिंचन परिवार का निर्वाह कठिन हो रहा था. आखिर स्वयं राय बुलार ने उन्हें समझाया कि पत्नी-बच्चों की भलाई और पारिवारिक बोझ उठाने में मेहता कालू का हाथ बटाने में वे खेती का काम ही करें. परन्तु गुरु नानक ने उत्तर दिया, "मैं ने अपने शरीर रूपी खेत में हरि-नाम का बीज बो दिया है, जिससे मुझे परिवार को लाभ होगा." इसी प्रकार उन्हें दुकान करने, घोड़ों का व्यापार करने आदि के कई सुझाव भिन्न समय पर दिये गये, परन्तु प्रभु-रस-मग्न गुरु नानक ने इन में से किसी में रुचि न दिखाई.

सन् १५०४ में गुरु नानक के बहनोई भाई जयराम, जो कि सुलतानपुर में नवाब दौलत खाँ लोधी के समाहर्ता के रूप में काम करते थे, अपने श्वसुर मेहता कालू को मिलने तलवंडी आये. वे समझते थे कि गुरु नानक महात्मा हैं, और घर में उनके साथ होने वाला दुर्व्यवहार उन्हें सह्य न था; अतः उन्होंने गुरु नानक को अपने साथ सुलतानपुर ले जाने की इच्छा प्रकट की. उधर गुरु नानक के माता-पिता ने भी सोचा कि सम्भवतः वहाँ जाकर उन्हें सरकारी नौकरी मिल जाये, और उनका दिल भी बदल जाये, यह प्रस्ताव उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया. इस प्रकार का विरोध या [illegible] हुआ गुरु नानक की पत्नी सुलक्षणी की ओर से. वह भी साथ जाना चाहती थी, परन्तु गुरु नानक ने उसे समझा-बुझा कर वहीं रहने को राजी कर लिया, और स्वयं भाई जयराम के साथ सुलतानपुर चले गये.

सुलतानपुर में जयराम ने गुरु नानक का परिचय नवाब दौलत खाँ से कराया, और उसी ने उन्हें मोदीखाने (स्टोर) का मुखिया नियुक्त कर दिया. वहाँ गुरु नानक ने ईमानदारी से काम करना शुरू किया. काम-काज से जो समय बचता, वह हरि-भजन में लगाते. प्रतिदिन प्रातःकाल बेईं नदी में स्नान कर दो घण्टे ईश्वर का भजन करते. जो वेतन उन्हें मिलता, उसमें अपने निर्वाह योग्य रखकर शेष सब गरीबों और फकीरों में बाँट देते. इन्हीं दिनों उनके गाँव का एक मुसलमान मरासी मदाना भी उनके पास चला आया. वह रबाब (सारंगी की जाति का एक वाद्य-यन्त्र) खूब अच्छा बजाता था. वह उनके पास ही रहने लगा. नित्यप्रति वह रबाब बजाता तथा गुरु नानक भावावेश में हरि-भजन गाते. इसी में जीवन का वास्तविक सुख उन्हें उपलब्ध था. वहाँ मोदी खाने में कार्यरत होते हुये भी यदि कभी वे भावावेश में आ जाते तो सब कुछ छोड़ कर हरि-नाम का गान करते थे. उनका कार्य प्रशंसनीय और ईमानदारीपूर्ण

था, अतः अन्य नौकर-चाकर उनसे ईर्ष्या भी करने लगे थे. एक दिन गुरु नानक आटा तोल रहे थे. वे गिनते बार तराजू में आटा भरते, यह क्रिया जब बारह तक आई, बारह से तेरह की संख्या पर पहुँचते-पहुँचते उन्हें भावावेश हो गया, और वे आगे गिनना भूलकर बार बार तेरह....तेरा....तेरा....मैं तेरा, ही दोहराते रहे; और इस प्रकार आवश्यकता से कहीं अधिक आटा उन्होंने तुला दिया. इस पर ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने नवाब से शिकायत कर दी. यों भी वे साधु, अभ्यागतों, फकीरों में आटा बाँटते रहते थे. अतः परीक्षण आरम्भ हुआ तो किसी वस्तु में कोई कमी न मिली. परन्तु सन्देह के वातावरण में नानक का मन बेचैन उचाट हो गया. २० अगस्त, सन् १५०७ को प्रातःकाल वे जब नदी से नहा कर निकले और जंगल में बैठे, तो कहते हैं उन्हें भगवद्ज्योति का स्पष्टीकरण हुआ और प्रभु ने उन्हें आज्ञा दी कि वे दुनिया को भलाई और सच्चाई के मार्ग पर लावें. इसके कुछ दिन बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी. नवाब ने बहुतेरा चाहा कि वे न जावें, परन्तु वे न माने और सितम्बर के आरम्भ में ही अपना साधु वाला वेश[१] बनाना आरम्भ कर दिया. "न कोई हिन्दू, न कोई मुसलमान" कहकर उपदेश देना शुरु किया. सुलतानपुर के नवाब और काज़ी ने इनके इस विचार की परीक्षा लेने के लिये उन्हें अपने साथ नमाज़ पढ़ने को आमन्त्रित किया. उन्होंने सहर्ष स्वीकार भी किया. परन्तु जब सब लोग सिजदे में झुके, तो वे अपने स्थान से पीछे खड़े रहे. अन्त में पूछने पर हँस कर कहने लगे, "तुम लोग तो स्वयं नमाज़ नहीं पढ़ते थे, मैं तुम्हारे साथ कैसे शामिल होता—काज़ी साहिब का ध्यान बछेड़े के समीप अपने अहाते में था कि वह कहीं गिर न जावे, और नवाब काबुल से घोड़े खरीदने के ख्याल में मस्त थे—फिर कहो मैं किस के साथ नमाज़ पढ़ता?" इस कथन ने दोनों को आश्चर्य चकित कर दिया. उन्हें अपना दोष तुरन्त स्वीकार करना पड़ा. तत्पश्चात् गुरु नानक सुलतानपुर से लौटे तो उनके साथ अपने साथियों बाला(हिन्दू जाट) और मर्दाना(मुसलमान रबाबी) के साथ सुदूर की प्रथम यात्रा पर चल पड़े.[२]

---

१. इस वेश की यह विशेषता थी कि यह किसी विशेष मत का अनुयायी से सम्बन्धित न था. सिर पर कलंदरी ढंग की टोपी या पगड़ी धारण करते थे, ललाट पर हिन्दुओं की भाँति केसर का तिलक लगाते थे, और गले में हड्डियों के मनकों की माला डाल लेते थे. शरीर पर लाल या भगवे रंग की चोला रखते और उस पर एक सफेद चादर ओढ़ते थे.—भारतीय धर्म की सन्त-परम्परा : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २२२.

२. गुरु नानक ने धरम-ग्रन्थ की भाषा था, और उनकी यात्राओं का उद्देश्य उसी ग्रन्थ की प्राप्ति हेतु लोगों को प्रेरित करना था. उन्होंने "मक्का की तीर्थ" में यात्रायें नहीं की. कनिंघम ने लिखा है," (अगले पृष्ठ पर जारी)

१. **यात्राएँ**

प्रथम-यात्रा :- प्रथम-यात्रा आरम्भ करने से पूर्व गुरु नानक अपने माता-पिता से मिलने तलवंडी गये, और वहाँ से यात्रा का वास्तविक श्रीगणेश हुआ. तलवंडी से चलकर गुरु नानक सैयदपुर (वर्तमान ऐमनाबाद) पहुँचे. वहाँ उनके एक अत्यन्त धनी भागो ने उन्हें अपने यहाँ भोज पर आमन्त्रित किया, परन्तु गुरु नानक एक गरीब शूद्र बढ़ई लालो की कुटिया में मेहमान रहे. इस पर लोगों ने गुरु नानक द्वारा जाति-पाँति त्याग का बहुत विरोध किया, परन्तु वे अविचलित रहे. भागो की शिकायत पर उन्होंने स्पष्ट कहा कि लालो की गाढ़े-पसीने की कमाई रोटी, बेईमानी और झूठ के व्यापार में कमाये धन से अधिक शुद्ध होती है. इसमें गरीबों का रक्त और उसमें प्रेम एवं दया का अद्भुत मिश्रण है. लोगों ने गुरु नानक का जाति-विरोधी प्रचार स्वीकार किया. दो-चार दिन वहाँ भजन-कीर्तन कर नानक आगे बढ़े. मार्ग में एक साधारण गाँव में गुरु नानक की भेंट सज्जन नामक एक व्यक्ति से हुई, जो लोगों को चिकनी-चुपड़ी बातें कर अपने यहाँ ठहरा लेता था, और रात में सोने पर उनका धन हरण कर लेता और उन्हें मार कर कुएँ में फेंक देता था. गुरु नानक के सम्बन्ध में भी उसका ऐसा ही विचार था; परन्तु उनके उपदेशों और भजनों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने अपना मार्ग बदल लेने की प्रतिज्ञा की. बाद में गुरु नानक के कहने पर उसने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति गरीबों में बाँट दी, और स्वयं एक भले व्यक्ति की तरह परिश्रम का व्यवसाय करने तथा भजन-स्मरण में जीवन व्यतीत करने की स्वीकृति दी. यह घटना गुरु नानक की महानता को कलियुगी दुष्टता पर अद्वितीयपन्न किये थी.

(पाद) 'In a moment of enthusiasm the ardent inquirer abandoned his home and strove to attain wisdom by penitent meditation, by study and by an enlarged intercourse with mankind'.

Cunningham's History of Sikhs: Ed. by Garrett. p.40.

परन्तु यह बात नानक के सम्बन्ध में उचित नहीं जचती. वे तो गृहस्थ में रहते सदाचारी संयमी जीवन और नाम-स्मरण द्वारा मुक्ति का आयोजन प्रस्तुत करते हैं— फिर घर से बाहर खोजने क्यों जायेंगे? हाँ, उन्हें सत्संग अभीप्सित था, पुनः उन्हें दुनिया को सन्मार्ग दिखाना था—और ये दोनों उद्देश्य भ्रमण से पूर्ण हो सकते थे, अतः उनकी यात्राएँ.

१. देखें परिशिष्ट-२.

इसी प्रकार मार्ग में सच्चे उपदेशामृत-वितरण करते हुए गुरु नानक सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पहुँचे. वहाँ अनेक प्रकार के साधु-सन्तों से कीर्तन और प्रवचन करा. कुछ दिन बाद वे हरिद्वार आये. मेला भरा था और लोग प्रातःकाल गंगा में स्नान कर पूर्व-दिशा की ओर मुँह किये पितरों को जल दे रहे थे. यह देख कर गुरु नानक को उन पर दया हो आई, और उन्हें ठीक मार्ग सुझाने के लिये उन्होंने विचित्र युक्ति सोच निकाली. वे स्वयं भी नदी में घुस गये और पश्चिम दिशा की ओर मुँह किये पानी उलीचने लगे. लोगों ने उन्हें पागल समझा, परन्तु पूछने पर उन्होंने मार्मिक उत्तर दिया. कहा, "मैं पश्चिम में दूर अपनी सूखी खेती को पानी दे रहा हूँ". "यहाँ से खेतों में पानी क्योंकर पहुँच सकता है?" "क्यों, यदि तुम लोगों द्वारा पूर्व में फेंका पानी परलोक में तुम्हारे पूर्वजों को मिल सकता है, तो मेरा पश्चिम में फेंका पानी इसी लोक में मेरी खेती को नहीं मिल सकता?" इन सम्वादों का प्रभाव कुछ लोगों पर बड़ा गम्भीर पड़ा. वहाँ भी प्रभु-महिमा की बातें दुनिया को सुनाते हुए कुछ दिन बाद गुरु नानक आगे चले. दिल्ली की ओर बढ़ने का निश्चय किया गया था, अतः हरिद्वार से पहले पानीपत पहुँचे. वहाँ एक प्रसिद्ध पीर की दरगाह पर पहुँचे तो वहाँ के शेख ने उन्हें "अस्सलाम-अलैकुम" (प्रभु तुम्हें शान्ति दे) कह कर अभिवादन किया. गुरु नानक ने इसका उत्तर "सलाम-आलेख" (अदृश्य के नाम बन्दगी) से दिया. उत्तर सुन कर पीर को बड़ा विस्मय हुआ और वह गुरु नानक की ख्याति को पहचानकर उनका मुरीद बन गया. पानीपत की जनता को भी गुरु नानक ने उपदेश दिया; ईश्वर की एकता, नाम-स्मरण की महत्ता और सदाचारी-जीवन का कल्याण स्वरूप लोगों को समझाया—और अपने मार्ग पर आगे बढ़ गये.

गुरु नानक देहली पहुँचे. वहाँ के लोग इस विचित्र वेष-धारी सन्यासी को देखकर हैरान थे, परन्तु कीर्तन के प्रेमी गुरु नानक घूमते-फिरते, भगवद्भजन गाते, अपना सन्देश सुनाते चले जा रहे थे. उन्हीं दिनों वहाँ के बादशाह सिकन्दर लोधी का हाथी मर गया. गुरु नानक फिरते हुए उस स्थल पर पहुँच गये, जहाँ हाथी मरा पड़ा था. कहते हैं उन्होंने उस हाथी को पुनः जीवित कर दिया. यह देख कर लोगों को बड़ी हैरानी हुई, और यह सूचना बादशाह तक पहुँचाई गई. वह स्वयं आया और उत्सुकता-वश उसने हाथी को पुनः मारकर जिलाने की प्रार्थना की. इस पर गुरु नानक ने हाथी को मरा ही रहने दिया, "मारना/जिलाना अल्लाह का काम है", मैं उसके हुक्म हुक्म में दख़ल पैदा नहीं कर सकता", ऐसा कहकर बादशाह को विचार में डाल दिया.

तत्पश्चात् गुरु नानक ने सिकन्दर लोदी को भी उपदेश दिया और कुरुक्षेत्र, गोरखमठ होते हुये बनारस का मार्ग पकड़ा. बनारस पहुँच कर अनेक साम्प्रदायिक नेताओं से उनका चर्चा हुआ. आडम्बरों और कर्मकाण्ड के विरुद्ध गुरु नानक ने वहाँ ललकार प्रस्तुत की. बहुत से किताबी विद्वानों और पंडितों को सत्यनाम का मार्ग दिखाया; लोगों को उपदेश दिया और महात्मा कबीर की पुण्य-नगरी को छोड़ भारत के सुदूर पूर्व की ओर प्रस्थान किया.

चलते चलते वे कामरूप (असम) पहुँचे. उन दिनों कामरूप और बंगाल ओर में जादू टोने का बहुत रिवाज था. औरतें जादू द्वारा मर्दों को बन्दर की तरह नचाती थीं. कामरूप की तत्कालीन रानी नूरशाह ने गुरु नानक से भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहा. उसने अनेक जादू-टोनों की सहायता से गुरु साहिब को अपनी ओर आकृष्ट कर पथभ्रष्ट करना चाहा, परन्तु सब व्यर्थ. वे अनुभवी महात्मा, प्रभु की विशेष कृपा के वरद्-हस्त की छत्रछाया में सुरक्षित थे; उनपर किसी प्रकार का कोई प्रभाव न पड़ा. अन्ततः तंग आकर स्वयं रानी नूरशाह गुरु नानक के चरणों में पहुँची, और आदेश मांगा. गुरु नानक ने उसे जादू-टोने का व्यवहार का त्याग कर भगवद्-स्मरण का उपदेश दिया. यहाँ से भी आगे जाने का विचार गुरु नानक का था, परन्तु कुछ ही दूर जाकर ऐक नीचे की ओर जगन्नाथपुरी को चल दिये. कहते हैं, वहीं कहीं ऐकान्त में कलियुग से उनकी भेंट हुई. उसने उन्हें पथ-भ्रष्ट करने के लिये अनेक लोभ दिये, परन्तु नानक ने स्पष्ट कहा, "मेरे पास सब कुछ है, कुछ और नहीं चाहिये—चाहिये भी तो, तो प्रभु मेरे अंग-संग है, इच्छा करते मात्र से ढेरों मिल सकता है. तुम्हारी सहानुभूति की भी मुझे आवश्यकता नहीं". इसपर "कलियुग" गुरु नानक को पीड़ित करना चाह कर भी असफल रहा, और अपना मार्ग पर भाग गया.

गुरु नानक जगन्नाथ पुरी पहुँचे. वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिर में भी गये. आरती के समय सब लोग उठकर खड़े हुये, परन्तु गुरु नानक बैठे बैठे ही भजन गाते रहे. लोगों ने उन्हें पागल कहकर उनकी उपेक्षा की, परन्तु बाद में भगवद्वाणी सुनकर वे मुग्ध हो गये. वहाँ गुरु नानक का मिलाप ऐक ऐसे ब्राह्मण से हुआ जो सदैव आँखें बन्द रखता था, और जिसका दावा था कि वह योगबल से संसार की सब बातों का पता बता सकता है. गुरुजी ने उसकी परीक्षा के लिये उसका लोटा छिपा दिया, और उससे सम्बन्ध में पूछा कि वह कहाँ है. ब्राह्मण लोटे का पता न बता सका. इस पर गुरु नानक ने उसे समझाया कि व्यर्थ के आडम्बरों में कोई सम्पूर्णसिद्धि नहीं, ईश्वर की

पुकारा करी, यही लक्ष्य-साधना का स्थान और साधु है. यहीं से गुरु नानक पंजाब की ओर लौट पड़े.

द्वितीय यात्रा

पंजाब लौटकर वे अधिक समय नहीं टिके रहे. कुछ दिन पाकपट्टन में रहने का कार्यक्रम बनाया. यहाँ प्रसिद्ध सूफी फकीर बाबा फरीद के वंशज शेख फरीद द्वितीय के साथ खूब सत्संग हुआ. इन शेख फरीद का असली नाम शेख ब्रह्म था. गुरु नानक उनके साथ रात-रात भर आध्यात्मिक चर्चा करते, सत्संग करते, और आनन्द वातावरण में भजन-स्मरण का अनुपम आनन्द पाते. दोनों महात्मा एक-दूसरे को पाकर अतीव संतुष्ट और प्रसन्न थे. वहाँ से लौटकर गुरु नानक ने हिमालय की तलहटी किसी बिलासपुर राज्य की यात्रा की. मैकालिफ ने उसे हिमालय की तराई में स्थित सुल्तानपुर रियासत बताया है.[1] माना जाता है कि यहाँ से वे किसी श्रीलंका-द्वीप की यात्रा को गये. परन्तु यह बात कुछ जँचती नहीं. हिमालय की तराई में किसी द्वीप की कल्पना भी नहीं की जा सकती. तथापि मैकालिफ ने इस यात्रा का उल्लेख किया है.[2] यहाँ से फिरे तो गुरु नानक तलवंडी की ओर चले. अत्यधिक यात्रा करने के कारण इनका साथी मर्दाना थक गया था—और घर की याद भी सताने लगी थी. इसीलिये उन्हें शीघ्र तलवंडी की ओर चलना पड़ा था. तलवंडी के निकट पहुँच कर गुरु नानक ने गाँव में घुसना उचित नहीं समझा. गाँव के बाहर ही १½ - २ मील दूर एक पेड़ के नीचे गुरु नानक ने आसन जमा दिया, और मर्दाना को उसके घर जाकर उनका कुशल-समाचार लाने को भेज दिया. उसे अपने घर जाने का भी आदेश दिया, परन्तु अपने सम्बन्ध में घरवालों से कुछ भी कहने का निषेध कर दिया.

मर्दाना को देखकर माता तृप्ता प्रसन्नता से फूल उठीं, उसे विश्वास था कि गुरु नानक भी अवश्य आये होंगे. पूछने पर पहले मर्दाना ने कुछ न बताया, लेकिन माता, मिष्टान्न, नये कपड़े और हाथ-कंगन लेकर उसके पीछे पीछे चल पड़ीं. जब वे गुरु नानक के समीप पहुँचे तो नानक ने माता को प्रणाम किया, और माता प्रसन्नता के आँसू बहाने लगीं. माता ने उनसे बारम्बार कहा कि वे यह उदासी वेष छोड़ दें और अपने परिवार के साथ रहें. नये कपड़े और हाथ-कंगन भी धारण करने को कहा. परन्तु गुरु नानक ने यह कहते हुये इंकार कर दिया कि परमात्मा को पाकर अब उन्हें और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं. माता को सन्तुष्ट देखकर गुरु नानक को भावावेश हो आया, और उन्होंने मर्दाना को रबाब बजाने को कहा, और स्वयं एक सुन्दर भजन

1. Macauliffe: Sikh Religion, Vol I. p.93. 2. Ibid.

गये थे. पिता कालू भी वहाँ आये. उन्होंने भी गुरु नानक को घर चलने को कहा, उनको कृषिकार्य में लगने का अनुरोध किया, पहले विवाह से यदि असंतुष्ट हो तो नया विवाह भी करवा देने का वचन दिया; परन्तु गुरु नानक ने घर जाने से साफ इंकार कर दिया. वे वहीं पेड़ के नीचे कुछ दिन ठहरे, गाँव के लोगों को उपदेश दिया, और वहाँ से अपनी तीसरी यात्रा को निकल पड़े.

<u>तृतीय यात्रा</u>

गुरु नानक की तीसरी यात्रा को दो भागों में बाँटा जा सकता है—१.पंजाब के भिन्न प्रदेशों का भ्रमण, २. दक्षिण-भारत तथा लंका की यात्रा. तलवंडी से चलकर वे पंजाब के भिन्न कस्बों दिपालपुर, कंगनपुर, कसूर, पट्टी, [illegible], गोइंदवाल आदि में घूमते हुए अपने बाल्य-सखा से मिलने सुल्तानपुर गये. सुल्तानपुर के लोग गुरु नानक से पहले ही परिचित थे, अतः उन्होंने उनका खूब स्वागत किया. कुछ समय तक वहाँ के लोगों को उपदेश-आदि देकर वे सैयदपुर की ओर बढ़े. वहाँ जाकर गुरु नानक भी दुखी हुए. बाबर की सिपाही सेनाओं ने वहाँ के लोगों का निर्दयता पूर्वक कत्ल कर दिया था, घरों को लूट-खसोटा था, औरतों को अपमानित किया था, शेष सबको कैदी बना लिया था. लालो भी पकड़ा गया था. स्वयं गुरु नानक और उनके साथियों को सिपाहियों ने बेगार के लिये पकड़ लिया. बोझ लाद कर चलने को कहा गया. गुरु नानक शान्ति पूर्वक चल पड़े. जनश्रुति है कि बोझ गुरु नानक के सिर पर हवा में तैरता हुआ जा रहा था, जिसे देख कर सिपाहियों को अचम्भा हुआ. समाचार बाबर को पहुँचाया गया, जिस पर उसने नानक को 'अल्लाह का बन्दा' समझ कर मुक्त कर दिया. गुरु नानक से कुछ माँगने को भी कहा गया—तब उन्होंने सैयदपुर के सभी कैदियों को छोड़ देने का अनुरोध किया. बाबर ने स्वीकार किया और सैयदपुर पुनः बस गया. गुरु नानक ने बाबर को भी प्रभु की एकता और प्रेम का सन्देश सुनाया, तथा उसके वंश को भारत में राज्य करने का आशीर्वाद भी दिया. वे कुछ दिन सैयदपुर में ही रहे, लालो की कुटिया में ही सत्संग होता रहा. भजन-स्मरण से लोगों के दुखी हृदयों को कुछ शान्ति मिली; तब गुरु नानक पसरूर होते हुए सियालकोट पहुँचे और वहाँ एक गाँव में एक सूफी महात्मा मियाँ मिट्ठा से खूब भगवद्-चर्चा और सत्संग हुआ.

वहाँ से रावी के किनारे किनारे चलते हुए गुरु नानक लाहौर पहुँचे. वहाँ

दुनीचन्द नाम के एक करोड़पति का आतिथ्य इन्होंने स्वीकार किया. उसके पिता के श्राद्ध के अवसर पर नानक ने ऐसे कर्म-कांडों के विरुद्ध उपदेश दिया. भोजन न स्वयं परलोक तक जाता देता है, न किसी को वहाँ पहुँचा सकता है. कर्म-कांड मनुष्य के बन्धन के कारण हैं,अतः मानव-मुक्ति में बाधक होता है. इससे बचना चाहिये. गुरु नानक के ऐसे उपदेशों का दुनीचन्द पर खूब प्रभाव पड़ा और उसने सम्पत्ति भले कामों में दान करदी. स्वयं भी गुरु नानक का शिष्य बन कर सादा जीवन बिताने लगा. यहाँ से गुरु नानक रावी के किनारे वाले करतारपुर में आ गये,और कुछ देर वहाँ रहने का निश्चय किया.अब तक गुरु नानक के अनेक शिष्य बन चुके थे. अतः उन्होंने करतारपुर में ही एक साधारण से आश्रम में अपना स्थिर जीवन आरम्भ कर दिया. माता-पिता, पत्नी-बच्चों को भी वहीं बुला लिया,ताकि उन्हें भी कुछ सन्तोष मिल सके. आश्रम में प्रतिदिन गुरुवाणी और आसा-दी-वार का पाठ प्रातः-बेला में शुरू होता. बाद में अनेक भजन गाये जाते. स्वयं गुरु नानक गाते, मर्दाना रबाब बजाता. साथ साथ उपदेश और प्रभु-स्मरण भी चलता. गुरु नानक जब भजन गाते तो प्रतिदिन एक सात-वर्षीय बालक उन्हें सुनने को आ बैठा होता.एक दिन गुरु नानक ने उससे कारण पूछा. उसने बताया कि एक दिन उसने जलती हुई आग में देखा कि छोटी लकड़ियाँ पहले जलती हैं,और मोटी लकड़ियों की बारी बाद में आती है. इससे उसे यह भय होने लगा है कि सम्भवतः मौत भी छोटों को पहले आती और बड़ों को बाद में. इसीसे वह भजन-कीर्तन सुनने आता है. गुरु नानक बालक के मुख से यह गम्भीर उत्तर सुनकर उसे बुड्ढा ही पुकारने लगे. सिक्ख-इतिहास में इस बुड्ढा जी ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है. छठे गुरु तक गुरु-गद्दी के पुरोहित का कार्य इसी बाबा बुड्ढा ने सम्भाला. स्वयं १०० वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई. इसी प्रकार करतारपुर में आश्रम जीवन-व्यतीत करते हुये,गुरु नानक ने इस यात्रा के दूसरे भाग को पूर्ण करने का निश्चय किया. इस बार वे सैदो और सिवो नामक जाटों को साथ लेकर भारत के दक्षिण (दक्कन-प्रदेश) के परिभ्रमण को निकल पड़े.

करतारपुर से चलकर वे सीधे दक्षिण-प्रदेश में पहुँचे. वहाँ घूमते-फिरते,उपदेश देते हुये वे मद्रास की बन्दरगाह पर पहुँचे. वहाँ के लोगों को वचन-प्रसाद वितरण कर निहाल किया और स्वयं वहाँ से नौका द्वारा किसी अज्ञात द्वीप को चल दिये. वहाँ से होते हुये वे लंका पहुँचे. लंका के राजा शिवनाभ को उपदेश दिया. कहते हैं

उसका कारण था, गुरु नानक के पदार्पण मात्र से ही पुनः हरा-भरा हो गया था.

चतुर्थ यात्रा

लंका से लौटने के बाद ही गुरु नानक की चौथी यात्रा आरम्भ हुई. इस बार वे पहले पंजाब के ऊंचे पर्वत-प्रदेशों में गये. वहाँ पहाड़ियों के ऊपर गुरु नानक ने अनेक जोगियों से सत्संग किया. कुछ दिन वहीं रहकर वे कटास होते हुये काश्मीर की ओर चल पड़े. श्रीनगर तक जाने की बातें उनकी जन्म-साखियों में उपलब्ध हैं, काश्मीर में राजा और प्रजा, दोनों को उनका सत्संग प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. वहाँ गुरु नानक जोगियों के प्रसिद्ध केन्द्र सुमेर पर्वत की ओर बढ़े. चोटी तक पहुँचे. वहाँ अनेक जोगियों से उनकी मुलाकात हुई. जोगियों ने गुरु नानक को आदर सम्मानपूर्वक रखा, और कई दिन तक परस्पर तर्क, वादविवाद, और सत्संग होता रहा. वहाँ गुरु नानक ने सिद्ध जोगियों को आत्मज्ञान का रहस्य समझाया और उनसे भेष को त्यागकर वास्तविकता धारण करने का अनुरोध किया. जोगियों द्वारा धारण किये जाने वाले प्रतीकों का अर्थ और मूल्य भी उन्हें बतलाया. इन सब उपदेशों और वार्ताओं को गुरु नानक ने करतारपुर में भी दुहराया, और आज भी वे अनेक पदों में बंटे, सिद्धगोष्ठी के नाम से गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित हैं.

पांचवीं यात्रा

सुमेर-पर्वत से गुरु नानक सीधे पंजाब लौटे, और वहाँ से भारत के पश्चिमोत्तर भाग की ओर से अपनी अन्तिम और प्रसिद्धतम यात्रा का श्रीगणेश किया. उससे पहले वे पाकपट्टन गये और शेख फरीद से सत्संग करने के बाद हसन-अब्दाल पहुँचे. यह स्थान मुसलमानों का धार्मिक केन्द्र माना जाता था. जहाँ गुरु नानक ने पड़ाव डाला, वहीं पहाड़ी पर एक मुसलमान फकीर वली कन्धारी (बाबा वली) रहता था. गुरु नानक ने मरदाना को उससे पानी लेने को भेजा. उसके अधिकार में पानी का एक छोटा कुण्ड था, परन्तु ज्योंही मरदाना ने गुरु नानक की प्रशंसा की थी, वली उनके विरुद्ध होकर, उसने पानी देने से साफ इन्कार कर दिया. यह भी कहा कि नानक यदि इतना ही बड़ा महात्मा है, तो पानी का प्रबन्ध स्वयं क्यों नहीं कर लेता. इस पर कहते हैं कि गुरु नानक ने कुण्ड से नीचे के भाग में छेद कर दिया, जिस से पानी वेग से बहने लगा. वली के क्रोध का पारावार न था, उसने रोष में आकर पहाड़ी के ऊपरी भाग से एक बहुत बड़ा पत्थर वहाँ लुढ़का दिया, जहाँ नीचे गुरु नानक बैठे थे. जन्म साखियों में यह कथा इस प्रकार आगे बढ़ती है, कि जब यह भयानक पत्थर गुरु नानक

को चोट करने ही वाला था, तब गुरु साहिब ने अपने दायें हाथ के पंजे से उसे रोक लिया. पत्थर वहीं का वहीं रुक गया और उस पर आपकी उंगलियों और हथेली का गहरा निशान बन गया. इस हस्त-चिह्न के स्थान पर आज एक बहुत बड़ा गुरुद्वारा है, जिसे पंजा साहिब कहते हैं. भारत-विभाजन के बाद यह स्थान पाकिस्तान में चला गया है.

हसन-अब्दाल से साम्प्रदायिकता और हिन्दू-मुस्लिम विरोधों के विरुद्ध में उपदेश देते हुये गुरु नानक पेशावर के मार्ग मुसलमानों के धार्मिक तीर्थ मक्का[1] पहुंचे. वहाँ उन्होंने ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा एकता की आवाज़ उठाई. हज्ज के लिये आ आये हुये अनेक मुल्लाओं, फकीरों, काज़ियों और मुसलमानों का दर्शन भी उन्हें वहाँ प्राप्त हुआ. मक्का की एक घटना अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसने उनके जीवन में मुसलमानों द्वारा भी उन्हें महत् आदर का पद दिलवा दिया. एक दिन मक्का शरीफ़ की ओर पैर किये गुरु नानक एक चबूतरे पर लेटे हुये थे, कि एक (काज़ी रुकनुद्दीन) हाजी ने इन्हें देखा. इसमें मक्का शरीफ़ का अपमान ख्याल करके वह बड़े क्रोध से ~~नानक को~~ झिंझोड़ कर नानक को जगाने लगा और बोला, "क्या करते हो, जो खुदा के घर की तरफ पैर किये लेटे हो, तुम्हें यह बेअदबी करने का हौसला कैसे हुआ?" गुरु नानक ने शान्तिपूर्वक लेटे लेटे ही कहा," भाई, खुदा का घर कहाँ नहीं? वह तो सब जगह है, यदि तुम समझते हो कि वह किसी विशेष तरफ नहीं, तो तुम मेरे पैर घुमा कर कहीं भी करदो". यह उत्तर सुन कर वह क्रोधी हाजी स्तम्भित रह गया. इस बात की महान् कल्पना उसकी समझ में आ गई, और वह चुपचाप वहाँ से चला गया.

---

१. Frederic Pincott takes this missionary journey of Guru Nanak as an exaggeration and writes, it is related that he [illegible] travelled to Kashmir and even made a pilgrimage to Mecca like an orthodox Musalman. The latter account must have an exaggeration and merely shows how ~~to~~ far his followers thought him ~~going~~ capable of going in his leaning to [illegible] Muhammadanism. Frederic Pincott: Religious Systems of the World. p.301.

मक्का से गुरु नानक मदीना गये, और वहाँ से बगदाद होकर लौट पड़े. मार्ग में कुछ दिनों के लिये मुल्तान भी रुके और सत-संगति तथा भजन-स्मरण करते हुये अन्ततः नानक करतारपुर पहुंचे. रावी के किनारे पर रमणीक स्थान उन्हें जीवन के शेष भजन-कीर्तन में काट देने को बड़ा उचित लगा. और तब उन्होंने यात्राओं का वेष उतार कर सादा परन्तु जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया. १५२० ई० से १५३९ ई० तक का यह करतार पुर निवास उनका आश्रम-जीवन था, जिसमें वे गृहस्थी धर्म को [illegible] रखते और नित्यप्रति कथा,भजन, कीर्तन और हरिगुणगान होता.

<u>आश्रम-जीवन</u>

गुरु नानक अपने जीवन-काल के अन्तिम लगभग १८-२० वर्ष रावी नदी के किनारे नये बसाये गये करतारपुर गाँव में रहे. जहाँ के एक अमीर शिष्य ने वहाँ एक बड़ा गुरुद्वारा बनवा दिया था. नित्यप्रति वहाँ हजारों शिष्यगण इकट्ठे होते थे. प्रातः काल सूर्य उगने से ही जपुजी का मधुर पाठ आरम्भ होता था, बाद में आसा की वार पढ़ी जाती और फिर गुरु नानक स्वयं उपदेश देते थे. भजन-स्मरण-कीर्तन भी होता और शिष्य आनन्द में आकर झूम उठते. वास्तव में जपुजी एवं आसा-दी-वार की रचना भी वहीं सन् १५२२ के बाद,जब मर्दाना की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र अपने पिता का स्थान ले चुका था,की गई. मर्दाना की उपस्थिति में कुछ पदों और मलार की वार की रचना ही विशेष उल्लेखनीय है. प्रातःकाल के सम्पूर्ण कार्य-क्रम के पश्चात् सब सम्मिलित इकट्ठे एक ही परिवार की तरह गुरु के सम्मुख बैठ खाना खाते. संध्या को भी "रहिरास" का पाठ करने के बाद सब इकट्ठे खाना खाते. रात को सोने से पूर्व "सोहिला" का पाठ होता.

सन् १५३१ में गुरु नानक ने बारह-माहा लिखा, जिसमें आत्मा-परमात्मा के मिलन की आध्यात्मिक झाँकी प्रस्तुत की गई है. सन् १५३२ में भाई लहना नाम का एक क्षत्रिय, जो दुर्गा का परम-भक्त था, गुरु नानक का शिष्य बन गया. उसकी गुरु-सेवा और प्रभु-भक्ति इतनी अटल और अनुपम थी, कि अन्तिम समय गुरु नानक ने उसी को अपना उत्तराधिकारी बनाना उचित समझा. सन् १५३९ के आरम्भ में ही गुरु नानक एक बार फिर शिवरात्रि के मेले पर अचल-बटाला गये. वहाँ उन्होंने वह प्रसिद्ध "सिद्धगोष्ठी" रची, जिसका वर्णन हम ऊपर वाणी-भाग में कर आये हैं.

अपने आश्रम-जीवन के दिनों में गुरु नानक ने अपने सभी निकट-सम्बन्धियों

को अपने पास रहने की अनुमति देदी. उनके दोनों पुत्र श्रीचन्द और लक्ष्मी चन्द भी वहीं रहने लगे. परन्तु उन्हें गुरु नानक की लेहना पर विशेष कृपा पसन्द न थी. वे नहीं चाहते थे कि उनके पिता के महान सम्मान का पात्र कोई गैर बने. परन्तु जो प्रभु को मंजूर था, वही तो होने वाला था.

उत्तराधिकारी की नियुक्ति एवं ज्योति-जोत समाना

ज्यों ज्यों गुरु नानक का अन्तिम समय समीप आ रहा था, उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की चिन्ता थी. वे जानते थे कि उनके दोनों पुत्र इस महान उत्तरदायित्व को सम्भालने के योग्य नहीं. शिष्य-मण्डली में ~~अच्छे~~ अनेक अच्छे और आध्यात्मिक ख्याति-प्राप्त शिष्य थे, परन्तु उनमें उनकी दृष्टि भाई लेहना पर थी; जो कि अधिक वफ़ादार और सद्गुरु को पहचानने वाला दिखाई देता था. तथापि लोगों को बताने केलिये, जन-श्रुति है, कि उन्होंने सब की परीक्षा ली. गुरु भक्ति की गहराई नापने केलिये उन्होंने एक दिन आधी रात के समय अपने पुत्रों और लेहना की उपस्थिति में कहा,"देखो कैसा प्रखर धूप चढ़ा है,जाओ नदि पर मेरे कपड़े धो लाओ." इस पर दोनों पुत्र बिगड़ बैठे, और समझने लगे कि उनका दिमाग़ चल गया है. परन्तु सच्चा गुरु-भक्त लेहना उसी समय तत्क्षण उठ कर चल पड़ा. कहते हैं, उसके लिये अद्भुत रात्री प्रखर दिन में बदल गई. एक और ऐसी ही घटना घटी. एक दिन गुरु नानक जंगल में गये. जंगल में एक लाश मिली. गुरु नानक बोले,"इसे खाओ". पुत्र तो यह सुन कर रूष्ट हो गये, परन्तु लेहना गुरु आज्ञा का पालन करने को तैयार, फौरन आगे बढ़ कर खाने लगा. कहते हैं, उसके कफ़न के कपड़े के नीचे से हलवा और मिठाइयाँ निकलीं. ऐसी घटनाओं से गुरु नानक को निश्चय होगया कि भाई लेहना ही वास्तव में उनका उत्तराधिकारी होने के योग्य था. अतः असुज वदी १०/५, संवत् १५९६, अनुसार सितम्बर १५३९ को एक प्रातः उन्होंने अपने सब शिष्यों को इकट्ठा किया और बाबा बुड्ढा की पुरोहिताई में भाई लेहना को विधिवत् उत्तराधिकारी —गुरु— घोषित कर दिया. गुरु नानक ने पाँच पैसे और नारियल भाई लेहना की झोली में डाल कर स्वयं उन्हें प्रणाम किया. —और तब सब शिष्यों ने भी उन्हें प्रणाम कर उनकी गुरुआई स्वीकार करली. गुरु नानक ने उन्हें अपना ही रूप कहा और अपने में से बना होने के कारण गुरु अंगद नाम दिया. (इस अवसर पर यदि कोई नाराज़ था, तो गुरु नानक के दोनों पुत्र.).(बड़े ने तो बाद में अपना जुदा सम्प्रदाय ही चला दिया).

गुरु-पुत्रों को यह उचित नहीं दिखा तो कहा गया. इस तरह नानक गान, पाठ, कीर्तन और धर्म-उपदेश होता रहा. अन्तिम दिन, जब निर्वाण का था गुरु नानक गांव के बाहर चले गये और वहाँ कैल पेड़ के नीचे बैठ कर उन्होंने "सोहिला " का पाठ किया, जपुजी का अन्तिम श्लोक पढ़ा और तब गुरुवाक वाहेगुरु का नाम लेते हुये चादर ओढ़ ली. उनकी ज्योति वाहेगुरु में समा चुकी थी. अगले दिन प्रातः गुरु नानक के शरीर का अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं कर दिया गया. क्योंकि कुछ ही हिन्दुओं ने वहाँ उनकी समाधि और मुसलमानों ने कब्र बनाई. परन्तु कुछ ही समय बाद रावी नदी ने बाढ़ का रूप धर उन दोनों स्मारकों को बहा डाला; शायद इस लिये कि समाधि-पूजा का रिवाज न चल सके.[१]

<u>रचनायें और उपदेश</u>

गुरु नानक प्रायः यात्राओं में पद बनाते और गाते रहते थे. विशेषता यह थी कि वे सब पद भिन्न प्रकार की राग-रागिनियों की संगीत-विभूतियों की सीमाओं में बन्धे होते थे, अतः रचना कोई न थी. जैसे आदि पद गुरु ग्रंथ साहिब नामक संग्रह में संगृहीत हैं उनमें से भी विशेष जपुजी है, जिसका पाठ प्रातःकाल स्नानोपरान्त + किया जाता है. इसमें ३८ पउड़ियाँ हैं और अन्त में एक श्लोक. अपने आप में रहस्यवादी भावना का यह सुन्दर नमूना है. गुरु नानक की रचनाओं में कुछ बातों को विशेष महत्व दिया जाता है—नाम की बात, नाद की बात आदि. "बारह-माहा" भी रहस्यवादी भेद में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है. "सिद्ध-गोष्ठी" में यथार्थ योग पर प्रकाश डाला गया है. अन्यत्र ग्रंथ साहिब में यह भाग अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता. सन्ध्या समय पढ़ी की रचना "आरती" तथा सोते समय पाठ करने का "सोहिला" भी गुरु नानक की विशेष रचनायें हैं. इन सब रचनाओं में ब्रह्म, गुरु, माया, जीव, आत्मज्ञान, नाम और कुछ दूसरे विषयों पर प्रकाश डाला गया. इन्हीं विषयों का संक्षेप इस प्रकरण में स्पष्ट भी किया है.

---

१. मैकॉलिफ ने ऐसा ही लिखा है, और डॉक्टर ग्रीनलेस ने भी इसी आधार पर ऐसे ही व्यक्त किया है. विचार उपयुक्त और उचित है.

गुरु नानक के उपदेशों में तत्कालीन परिस्थिति में साम्प्रदायिकता की छोटी-दीवाल की सीमाएँ तोड़ कर एक प्रभावशाली मूलमता, निकट व देश जाति बलशाली थी. सार रूप में उनके उपदेश इस प्रकार थे---

१. एक ईश्वर की सत्यता में विश्वास और उसके हुक्म के सम्मुख नतमस्तक होना.

२. उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को समान रूप में परम-सत्य परमात्मा की उपासना के लिये पुकारा, और बताया कि उसमें विश्वास, उसकी पूजा तथा उपासना सब आवश्यक है.

३. गुरु नानक ने भारत की परम्परित दार्शनिकता को लोक-प्रिय बनाया और परिस्थिति के सांचे में ढाल कर नवीन रूप प्रदान किया.

४. गुरु नानक ने मुहम्मद साहिब और हिन्दु अवतारों, दोनों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा.

५. जादू, टोनों, कर्म-काण्ड जैसे आडम्बर का विरोध किया. हिन्दू और मुसलमानों में सामंजस्य प्रस्तुत किया. घर-बार का त्याग निषेध ठहराया.

६. गुरु नानक ने अपने शिष्यों को सामाजिक-बुराइयों से बचने का आदेश दिया; तथापि उनके सुधार मुख्यतः सामाजिक न होकर आध्यात्मिक और नैतिक ही थे.

७. गुरु नानक ने अपने शिष्यों का कोई नया जाति या सम्प्रदाय खड़ा नहीं किया.

८. गुरु-कृपा से मन का संयम, ऐसे मन के संयम से नाम-स्मरण में स्थित होना ही की आवश्यकता प्रस्तुत की गई.

और सत्संग, नाम-स्मरण तथा हुक्म-पालन को गुरु नानक ने मुक्ति का केन्द्रीय साधन माना.

परिशिष्ट - १.

<u>गुरु नानक की वाणियाँ - १५७</u>

सहायक ग्रंथ सूची (हिन्दी)

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
कविता-सम्बन्धी.-		
१.	गुरु ग्रंथ साहिब (संवत् १९९२ संस्करण)	प्र० सि० गु० प्र० कमेटी, अमृतसर.
२.	रामचरित मानस	तुलसीदास
दर्शन-सम्बन्धी		
३.	मुण्डकोपनिषद्	प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर.
४.	कठोपनिषद्	"
५.	छान्दोग्योपनिषद्	"
६.	योग-सूत्र	(पतंजलि) "
७.	ब्रह्म-सूत्र	"
८.	श्रीमद्भगवद्गीता	"
९.	भागवत्पुराण	"
१०.	ऋग्वेदिक-संहितायें	"
११.	महाभारत	"
१२.	भारतीय दर्शन	उमेश मिश्र
१३.	भारतीय दर्शन	चट्टोपाध्याय व दत्त
१४.	भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
१५.	हिन्दुओं का जीवन-दर्शन	डा० राधाकृष्णन
१६.	भारत की अन्तरात्मा	"
१७.	वेदान्त-दर्शन	प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर.
१८.	दर्शन-दिग्दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
१९.	गुरमत-दर्शन	ठाकुर देवराज
२०.	गीता में भक्ति-योग	वियोगी हरि
२१.	मानव का विकास	डा० मुंशीराम शर्मा
२२.	स्वा० रामकृष्ण ~~परमहंस~~ वचनामृत भाग ~~प्रथम~~ १,२, .	अनु० निराला
२३.	ज्ञान योग	स्वामी विवेकानन्द
२४.	कर्म योग	"
२५.	भक्ति योग	"
२६.	भक्ति और वेदान्त	"

साहित्य-सम्बन्धी

साहित्य-सम्बन्धी

१७.	सन्त-काव्य-संग्रह	परशुराम चतुर्वेदी
१८.	उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा	"
१९.	सूफी काव्य संग्रह	"
२०.	सूफीमत-साधना और साहित्य	रामपूजन तिवारी
२१.	मध्यकालीन धर्म-साधना	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
२२.	हिन्दी काव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ	डॉ. [illegible] गुप्त
२३.	महाराष्ट्रीय-सन्तों की हिन्दी को देन	डॉ. विनय मोहन शर्मा
२४.	कबीर का रहस्यवाद	डॉ. राम कुमार वर्मा
२५.	सच्ची-वीरता (लेख)	सरदार पूर्ण सिंह
२६.	श्रद्धा-भक्ति (लेख)	राम चन्द्र शुक्ल
२७.	नाथसिद्धों के दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्त	डॉ. जयराम मिश्र
२८.	मध्यकालीन पंजाबी और हिन्दी के सन्त-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन	सुदर्शन सिंह मजीठिया ([illegible] अप्रकाशित थीसिस)

धर्म-सम्बन्धी

२९.	भारतीय ईश्वरवाद	पाण्डेय रामावतार शर्मा
३०.	पंजाबी कुरान शरीफ	नन्द कुमार अवस्थी
३१.	[illegible] कुरान शरीफ	श्री अहमद बशीर

इतिहास-सम्बन्धी

३२.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
३३.	भारत का धार्मिक इतिहास	शिवशंकर मिश्र

पत्र-पत्रिकायें

कल्याण	मासिक
साहित्य-सन्देश	सन्त-साहित्य विशेषांक
[illegible] (दिल्ली)	[illegible] की वार्षिक [illegible]

निबन्ध

कबीर, रविदास, पलटू, मीरा
सहजो और बुल्लेशाह की वाणियाँ
मैथिली शरण गुप्त और महादेवी वर्मा के कुछ पद.

सहायक ग्रन्थ सूची (पंजाबी)

कविता

१.	अकाल-उस्तत	गुरु गोबिन्द सिंह
२.	गुरमत प्रभाकर	भाई काहन सिंह
३.	गुरमत सुधाकर	"
४.	सहर्फी	बुल्लेशाह
५.	वारां	भाई गुरदास जी

दर्शन-सम्बन्धी

६.	गुरमत फिलासफी	ज्ञानी प्रताप सिंह
७.	गुरमत अनुसार कर्म फिलासफी	भाई रणधीर सिंह
८.	धर्म ते सदाचार	प्रो० साहिब सिंह
९.	पूरन मनुख	भाई [illegible] सिंह
१०.	गुरु ग्रंथ सिद्धान्त संग्रह	लाल सिंह
११.	गुरमत सिद्धान्त	[illegible] साहब सिंहजी

साहित्य-सम्बन्धी

१२.	गुरमत साहित रचना भाग १,२.	भाई वीर सिंह [illegible]
१३.	गुरमत निरणय	भाई जोध सिंहजी

इतिहास-सम्बन्धी

१४.	गुरु नानक चमत्कार भाग १,२.	भाई वीर सिंह
१५.	सन्त-गाथा	"
१६.	तवारीख गुरु खालसा	ज्ञानी लाल सिंह

BOOKS IN ENGLISH

S.No.	Name of the Book	Name of the Author
RELIGION		
1.	Sikh Religion Vol.I	Macauliffe.
2.	Religious Systems of the World	Frederic Pincott.
3.	Religious Sects of Hindus	H.H. Wilson
4.	Hinduism	Monier Williams.
5.	Theism in Medieval India	Carpenter
6.	Religion and Society (Radha. Sect.)	Radhakrishnan
7.	The Essential Unity of All Religions	Bhagwan Das
8.	The Gospel of the Guru Granth Sahib	Duncan Greenlees
8A.	The Holy Bible.	
PHILOSOPHY		
9.	Philosophy of Sikhism	Dr. Sher Singh
10.	Sikhism	Teja Singh
11.	Some studies in Sikhism	Jodh Singh
12.	Growth of Sikhism	Teja Singh
13.	The Divine Name and its Practice	[illegible] Singh
14.	Japji	Translation and Commentary by [illegible] Singh
15.	Doctrine of Maya	Prabhu Dutt
16.	Yoga of Saints	V.H. Date
17.	Jivatma and the Brahma-sutras	Abhay Kumar Guha
18.	Idealistic Thought of India	P.T. Raju
19.	Mysticism in Bhagvadgita	Mahendranath Sircar
20.	The Essays on Gita	Sri Aurobindo
21.	Indian Philosophy Vol.I & II	Radhakrishnan
22.	Evolution of Gita	[illegible]
23.	An Introduction to Yoga	Annie Besant
24.	The Cult of Shakti	Dr. Jadunath Sinha
25.	Indian Philosophy	C.D. Sharma

Philosophy Contd.

26.	An Intelligent Man's Guide to Philosophy	Joad, C. E.
27.	Recovery of Faith	S. Radhakrishnan
28.	Philosophy of Religion Vol. I.	Hegel
29.	A critical examination of Philosophy of Religion Vol. I.	Sadhu Shantinath
30.	Philosophy of Religion	Prof. Galloway
31.	Gita Rahasya	B. G. Tilak
32.	Problems of Philosophy	S. C. Chatterjee
33.	Advait Philosophy	K. Shastri
34.	Raj Yoga	Swami Vivekanand

History

35.	History & Philosophy of Sikh Religion	Khazan Singh
36.	History of Muslim Rule	Ishwari Prasad
37.	Cunningham's History of Sikhs	Ed. by Garrett
38.	History of the Punjab	M. Latif

xx. LITERATURE

39.	An outline of Religious Literature of India	J. N. Farquhar
40.	The Nirguna School of Hindi Poetry	P. D. Barthwal

[illegible]

41.	Encyclopaedia Britannica Vol. [illegible]	
42.	Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol. VI. [illegible]	
43.	Emerson's Essays.	